युग-पुरुष महात्मा गांधी
पहला भाग

लेखक
श्री एस० मनोहरलाल
प्रो० भ० प्र० पान्थरी

भूमिका लेखक
आचार्य नरेन्द्र देव
वाइस-चान्सलर लखनऊ यूनीवर्सिटी

प्रकाशक
प्रकाशन-गृह,
टिहरी गढ़वाल ।
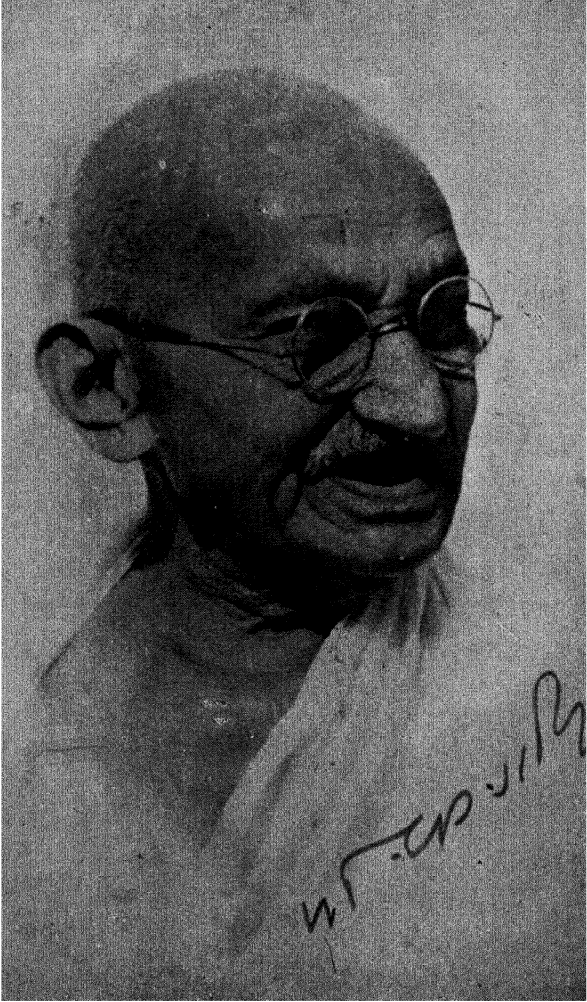
बापू की वाटिका का

यह श्रद्धा पुष्प

बापू की ही बलि वेदी पर

अर्पित !

भूमिका

'युग-पुरुष-महात्मा गांधी' नामक पुस्तकका पहला भाग पाठकोंके सन्मुख है। पुस्तकके लेखक श्री पांथरीजी तथा श्री मनोहरलाल हैं। श्री पांथरीजी इतिहासके विद्यार्थी हैं। इन्होंने इतिहास संबंधी कई पुस्तक लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तकके पहले दो अध्यायोंमें ऐतिहासिक पृष्ट-भूमि लिखी गयी है जिससे महात्मा जी के कार्यको समझनेमें सुविधा हो। पुस्तक दो भागोंमें समाप्त होगी। पहले भागमें सन् १९१४ तक की घटनाओंका उल्लेख है।

महात्माजी सचमुच वर्तमान युगके सर्व श्रेष्ठ पुरुष हैं। भारतीय सभ्यताकी यह सबसे बड़ी देन है। उनकी शिक्षा में प्राचीन और अर्वाचीन दोनोंका अच्छा सम्मिश्रण है। उनकी शिक्षाका महत्व केवल हमारे लिए ही नहीं है, बरंच सारे संसारके लिए है। आज संसार चौराहे पर खड़ा है। उसको एक नए मार्गकी तलाश है, एक नये सन्देशकी भूख है। महात्माजीका दिव्य सन्देश संसारका त्राण कर सकता है।

गांधीजी की अनेक जीवनियां लिखी गयी हैं। महात्माजी

ने स्वयं अपनी आत्मकथा लिखी है। किन्तु वह अपूर्ण है। उनके निधनके बाद गांधी साहित्य में आशातीत वृद्धि होगी। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकारका एक प्रयास है। पुस्तकका दूसरा भाग अधिक महत्वका होगा, क्योंकि सन् १६१४ के बाद ही महात्माजी ने भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना आरंभ किया था। पुस्तक बड़ी सावधानी और परिश्रमसे लिखी गई है। पांथरीजी ने भारतीय इतिहासका अच्छा अध्ययन किया है। उनके और उनके सहयोगी ग्रन्थकारसे ऐसी ही आशा थी।

लखनऊ
२—४—४८ }

नरेन्द्र देव

आमुख

सन् ४२ का जमाना था और भाग्यवश आगरा सेन्ट्रल जेलके बारह तालामें हम दोनों एक साथ बन्द थे। गांधी जयन्ती आयी, हम लोगोंने उसमें भाग लिया। उस अवसर पर गांधीजीके सम्बन्धमें कुछ व्याख्यान आदि भी हुए। अनेक व्यक्तियोंने तरह-तरहसे गांधीजीके सिद्धान्त और कार्योंकी आलोचना की। हमें कुछ एक सज्जनोंकी आलोचनासे लगा कि इसमें गांधीजीके बजाय वक्ताकी निजी भावना अधिक है। अतः हम लोगोंने तभी यह निश्चय किया कि सही रूपसे गांधीजीके भावोंको समझने और समझानेके लिए उन्हींकी आत्मकथा और लेखोंके आधारपर उनका अध्ययन होना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक उसी अध्ययनका प्रयास है।

किन्तु इस पुस्तककी रचनाका आधार शुद्ध श्रद्धा रही है, हमने इसमें पांडित्यका प्रयोग न करके विशुद्ध छात्र-वृत्तिसे काम लिया है, क्योंकि श्रद्धा-प्रेरित निष्पक्ष जिज्ञासासे हमने गांधीजीके जीवनको समझने की यहाँ चेष्टा की है, वह भी इसलिए कि हम उनके जीवनसे कुछ सीख और कर सकें।

गांधीजीके शब्दोंमें 'मेरा जीवन मेरा सन्देश है', यही हमारा ध्रुव विश्वास है, इसलिए उनके सन्देशको समझने और हृदयंगम करनेका हमने 'युग पुरुष' के प्रथम और द्वितीय भागमें प्रयास किया है।

हम इसमें कहाँतक सफल हुए हैं, यह तो विद्वान समाज ही बतला सकेगा। लेकिन यदि इस प्रयाससे गांधीजीका सन्देश कुछ भी प्रचारित हो सका तो हम अपने प्रयासको सफल ही समझेंगे।

एक बात और, 'हमने यह पुस्तक' ४६ में ही पूरी कर दी थी; और आधी छप चुकी थी कि इस बीच गांधीजी की हत्या हो गयी। अतः इस अनिवार्य कारणसे पुस्तक की क्रियाओंमें अन्तर पड़ा है।

प्रस्तुत प्रथम भाग सामने है और द्वितीय भाग भी प्रेस में जा चुका है। आशा है, जल्दी ही प्रकाशित होकर पाठकोंके सामने आ जायगा।

अन्तमें हम अपने कर्नाटक के विद्यार्थी-श्री महाबलेश्वर भट्ट और श्री गजानन शर्माके बहुत आभारी हैं। उन्होंने हमें प्रेस कापी तैयार करने आदि में बहुत सहयोग दिया। श्री भट्टजीने प्रूफ देखने और ब्लाक बनवानेमें भी हमें सहायता पहुँचायी जिसके लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। हमारे मित्र विद्यापीठ पुस्तकालयके अध्यक्ष भाई प्रो० गोरावाला खुशाल जैन भी धन्यवादके पात्र हैं जिनसे हमें पुस्तकके बारे यदा-कदा सुझाव मिलते रहे हैं। पुस्तककी छपायी सफायी और प्रूफ आदिमें बहुतसी भूलें भी रह गयी होंगी, जिसके लिए हमें आशा है, सहृदय पाठक हमें सचेत तथा क्षमा करेंगे।

विनीत—

एस. मनोहरलाल

भगवती प्रसाद पान्थरी

विषय-सूची

		पृ
१.	भारत की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि	२८
२.	ऐतिहासिक प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय पुनर्जागृति	६७
३.	महात्मा गांधी का प्रारंभिक जीवन	७२
४.	अफ्रीका में	१०३
५.	जीवन में नई कोपलें	१११
६.	गांधीजी और बोअर युद्ध	१२५
७.	मातृ-भूमिको	१४५
८.	फिर दक्षिण अफ्रीका में	१६९
९.	सेनापति गांधी	१९२
१०.	सत्याग्रह का आरंभ	२२३
११.	सत्याग्रह पूर्णता पर	२५३
१२.	सफल संग्राम	२९२

भारतकी ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि

अध्याय १

महात्मा गांधीके जीवनका हमारे भारतकी राजनीति और राष्ट्रीय जीवनपर जो प्रभाव पड़ा है, और उससे हमारे नूतन भारतमें जो प्रतिक्रिया हुई, उसे ठीक तरह समझनेके लिये हमें प्रथम अपने इतिहासकी उस पृष्ठि-भूमिको समझना आवश्यक है जिसकी प्रतिक्रिया होने महात्मा गांधीको युग पुरुष या युगावतारके रूपमें प्रकट किया।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि युग 'पुरुष' की सृष्टि करता है और पुरुष 'युग' की। इसलिए यद्यपि यह सही है कि गांधीने आज भारतमें एक नूतन 'युग' गांधी-युगको जन्म दिया है,किन्तु यह भी सही है कि 'गांधी' को जन्म देनेवाला भी भारतीय इतिहासका वह युग है, जिसकी बन्धनोंको मुक्तकर राष्ट्रको स्वतंत्र और स्वच्छंद करनेवाली प्रतिक्रियाने समय-समयपर ऐसे महापुरुषों अथवा व्यक्तियोंको जन्म दिया जो उसके इष्टके साधन हो गये हैं। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि ऐसे कतिपय महापुरुषोंमें ही गांधीका व्यक्तित्व अपना स्थान रखता है। इस प्रकार चूँकि गांधीका व्यक्तित्व उनसे पूर्ववर्ती इतिहासकी प्रतिक्रियाका ही एक स्वरूप है इसलिये उनके जीवन और कार्योंपर प्रकाश डालनेसे पहिले उनके पूर्व इतिहासपर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

भारतीय इतिहासकी प्राचीनता—

संसारके प्राचीन सभ्य देशोंमें सबसे प्राचीन देश हमारा भारतवर्ष है। भारतके पश्चात् अन्य प्राचीन सभ्य देशोंमें चीन, मिश्र, मेसोपोटामिया, क्रीट और यूनान तथा रोमका स्थान है। मिश्र आजसे लगभग हजारों वर्ष पहले बहुतही सभ्य और सुसंस्कृत देश था। प्राचीन समयमें यह सभ्यता हजारों वर्षतक फूलती फलती रही। किन्तु आखिर वह विश्वमें खेल कूदकर फिर अन्तर्धान हो गई, और अपने पीछे स्मृति स्वरूप कुछ पिरामिड, ममी और मन्दिर तथा विशाल इमारतोंके खंडहर छोड़ गई। यद्यपि मिश्र अभी भी है, परन्तु आजके मिश्र वालों और प्राचीन पिरामिडके बनानेवाले मिश्रवासियोंके बीच कोई सांस्कृतिक अथवा जातीय शृङ्खला नहीं है। प्राचीन मिश्र तो मिट चुका।

मेसोपोटामिया अथवा ईराक तथा परशिया भी मिश्रकी भांति अपनी सभ्यताके प्राचीन कालमें न जाने कितने विशाल और प्रभावशाली राज्यों और सभ्यताओंके केन्द्र रहे हैं, किन्तु आज वे सब मिट चुके। उनका प्राचीन गौरव अतीतके गर्त्त में खो चुका है।

यूरोपका सुरम्य द्वीप क्रीट आजसे ३००० वर्ष पूर्व अपनी उमंग भरी सभ्यतामें इठलाया करता था। क्रीटका यौवन और सौंदर्य उसकी वैभवशाली नगरी 'कनोसस'में बिखरा हुआ एक समय बड़ी प्रखरतासे चमका था। कनोसस नगरी अपने दूसरे नाम 'मिनोस'से भी प्रख्यात थी। यह नगरी क्रीटकी सभ्यताका

केन्द्र थी और इस नगरीके नामपरही क्रीटकी सभ्यता संसारमें मिनोयन् कहकर पुकारी जाती थी। करीब २००० वर्षों तक इस सभ्यताका भी संसारके चित्रपटपर अभिनय होता रहा। उसके बाद यूनानी आये और मिनोसको उजाड़ गए।

'मिनोस'को उजाड़कर उसके अवशेषोंपर यूनानियोंने अपनी 'हेलनिक' सभ्यताको प्रतिष्ठित किया। यह घटना आजसे ३००० वर्ष पूर्वकी है। फिर सैकड़ों वर्षोंतक यूनान, स्पार्टा और एथेन्सकी धूम रही। किन्तु वे भी मिट चले। आखिर रोमका अभ्युदय हुआ। यूनान और रोमही यूरोपको सभ्यताके पथपर लाये; लेकिन स्वयं विश्वके रंगमंचसे खिसककर उन्होंने भी नेपथ्यकी राह ली।

यद्यपि भारतवर्षके उपरान्त सभ्य होनेवाले प्राचीन मिश्र, मेसोपोटामिया, ईराक वा परशिया, क्रीट या मिनोस अथवा कनोसस, यूनान और रोम आज संसारके चित्रपटसे अन्तर्धान हो चले हैं, किन्तु भारतवर्ष और चीन आज भी अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यताको लिये हुए जीवित हैं।

भारतवर्षकी सभ्यता आजसे कमसे कम लगभग १०,००० वर्ष पूर्वकी सभ्यता है। इसी प्रकार चीनकी सभ्यता भी आजसे ४००० वर्ष पूर्वकी सभ्यता है। इन दोनों देशोंपर सदियोंसे आक्रमण तथा प्रत्याक्रमण होते रहे,और दोनों मुल्क विदेशी बर्बर आक्रमणकारी और विजेताओं द्वारा लूटे-खसोटे गये। इस प्रकार दोनोंके ऊपर युद्धोंके खूब घात और प्रतिघात हुये। विनाशने हमारे मुल्कमें खूब तांडव किया और आक्रान्तकोंने हमें उजाड़कर वीरान बनानेके कई प्रयत्न किये। किन्तु इतनेपर भी आजतक

हम अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति तथा इतिहासको सुरक्षित रखकर जीवित हैं। हमें मिटानेके लिए सदियोंसे विदेशियोंने जो भी प्रयत्न किये उनके वे सारे प्रयत्न विफल रहे और फलतः भारतवर्ष और चीन आज भी अमिट रूपसे स्थित हैं।

इस प्रकार संसारके प्राचीनतम सभ्य देशोंमें भारतवर्ष सबसे प्राचीन सभ्य देश है। इसकी सभ्यता जैसा कि हम कह आये हैं, आजसे लगभग १०,००० वर्ष तक पुरानी है।

वैदिक युग--

हमारी सभ्यताका प्रारम्भिक युग इतिहासमें 'वैदिक युग'के नामसे प्रसिद्ध है। इस युगकी तिथि आजसे १०,००० वर्ष पूर्व अथवा ईसासे ८,००० वर्ष पूर्वतक मानी जाती है। वैदिक युगका इतिहास हमें बहुत कुछ प्राचीन वेद-ग्रन्थोंसे मिलता है। वेद असलमें हमारे धार्मिक ग्रन्थ हैं। वेद संस्कृतकी 'विद्' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है 'जानना' अथवा 'ज्ञान'।

वेद इस प्रकार ज्ञानके भण्डारके साथ-साथ हमारे प्राचीन आर्य-पूर्वजोंके स्मृति-ग्रन्थ भी हैं। इनसे हमारे अपने पूर्व पूर्वजोंका ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है। वेदोंकी संस्कृति और समाज-व्यवस्था आज भी हममें कायम है, इसलिए यह कहना कि हम उन्हीं आर्योंकी सन्तान हैं और आज हजारों वर्षोंके बीत जानेपर भी हमारा प्रत्यक्षतः अपने वैदिक आर्य-पूर्वजोंसे सम्बन्ध बना हुआ है, बिल्कुल सही है। अतः आजके भारतीय प्राचीन सहस्राब्दियोंसे ही चले आरहे हैं।

आजके भारतके सामाजिक व्यवस्थाकी मूल-योजना भी प्रथमतः वैदिक युगमें ही हुई थी। चार वर्ण और चार आश्रम वैदिक युगकी ही सृष्टि हैं।

किन्तु उस समय चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रके विभाग जन्मपर नहीं, कर्मपर निर्भर थे। इस जाति व्यवस्थाके फलस्वरूप यद्यपि हिन्दू जाति आजतक जीवित रह सकी है, लेकिन आगे चलकर यह व्यवस्था गड़बड़ा गई। चार वर्णोंका बंटवारा 'कर्म'की जगह बादमें विशेषतया जन्मसे होने लगा। फल यह हुआ कि चार वर्णोंकी जगह कितनीही जातियां हम लोगोंमें पैदा हो गईं, जिससे हमारी एकताको बहुत बड़ा आघात पहुंचा। यह एक ऐसी बुराई पैदा हुई जो आजतक हमारे समाजमें प्रचलित है।

वैदिक युगका जीवन बहुत सरल और शान्त था। वैदिक समाज 'सत्य' और 'आनन्द'की खोजमें निरन्तर उच्च 'ज्ञान' अथवा 'चित्त' प्राप्तिके प्रयत्नोंमें लगा रहता था। यही कारण है कि इस युगमें महान् ऋषि, महर्षि और तपपूर्ण ज्ञानी मुनियोंने जन्म लिया और अपनी सन्तानके लिये ज्ञानके अक्षयभण्डार 'वेद' और 'उपनिषद्' अपने पीछे छोड़ गए।

इसके साथही समाज-विज्ञानका भी उनको ऐसाही ज्ञान था। वैदिक कालमें समाजकी रक्षा और राज्य-प्रबन्धके लिये यद्यपि राजा सर्वमान्य हुआ करता था, परन्तु उसको प्रजाकी अनुमतिपर चलते हुए शासन करना पड़ता था। राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था, और यदि स्वेच्छाचारी हो जाय तो उसे गद्दीसे उतार दिया जाता था। इस प्रकार यह

युग हर प्रकारसे हमारे इतिहासका वह विमल युग था, जब कि सारा समाज सुख और शान्तिके साथ अपना जीवन व्यतीत करता था।

रामायण युग—रामावतार

वैदिक युगके बाद हमारे आर्य-इतिहासमें रामायण और महाभारत-युग बहुत महत्व रखते हैं। रामायण युगका समय करीब ४००० ई० पू० माना जाता है। इस युगमें मालूम पड़ता है कि हमारे समाजकी वेद-कालीन आध्यात्मिक भित्तिको तोड़ कर रावणकी भौतिकवादी आसुरी सभ्यता अपनी उग्र हिंसाके द्वारा समाजके सुख और शान्तिको नष्ट करना चाहती थी।

किन्तु अहिंसक अध्यात्मकी जगह हिंसक भौतिकताको कायम करनेमें रावणको सफलता प्राप्त न हो सकी। आर्य महापुरुष रामने रावणके सारे आसुरी प्रयत्नोंको विफल कर दिया। रामके देव-प्रयत्नसे आर्य-जातिपरका यह खतरा टल गया और भौतिकवादके पशुको हमारे समाजके सुख या शान्तिको कुचलनेसे रोक दिया गया। फलतः आध्यात्मके सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंपर हमारे यहां, रावणके 'असुर-राज'की जगह रामका 'स्वराज्य' स्थापित हुआ, जिसने मानवके लिये सुख, शान्ति तथा उन्नतिके विशाल और शुभ द्वार खोल दिये।

महाभारत युग—कृष्णावतार

किन्तु रावणके आसुरी खतरेको टले हुए अभी करीब ७०० वर्षही हुए थे कि पुनः भौतिकवादिताके अनाचारने जन्म लेना

शुरूकर दिया। यह महाभारत युगका समय था। इस युगमें दुर्योधन, जरासन्ध, शिशुपाल और कंस आदि राजाओंके रूपमें पशुता और आसुरी वृत्तियां बढ़ने लगीं। ये राज भौतिकवादिताके गढ़ बन गए। आर्योंकी पुरातन आध्यात्मिक भित्तिको फिरसे उजाड़नेका प्रयत्न होने लगा। मानव समाजसे सत्य और धर्मका पुनः लोप होना शुरू हो गया।

मानवीय कल्याणकारी प्रवृत्तियों प्रेम, शान्ति, अहिंसा और मेलका स्थान, आसुरी प्रवृत्तियां—हिंसा, युद्ध और अनाचारने लेना आरम्भ कर दिया; मानव समाजसे धर्म हटता गया और अधर्मकी बढ़ती होने लगी। सब मनुष्योंको एकही ईश्वरके विभिन्न रूपमें देखने वाली आर्य-सम-दृष्टिका लोप होने लगा और मनुष्योंमें जाति तथा ऊँच-नीचके भेद भाव पनपने लगे। मनुष्यपर फिर अत्याचार होने लगे और समाजमें इस अनीतिके कारण अव्यवस्था और त्रास फैल उठा। इस अनीति और अत्याचारके फलःस्वरूप महाभारत युगकी त्रस्त मानवीय अभ्यर्थना और पुकारने कृष्णको जन्म दिया। फलतः कृष्ण 'युगावतार' बनकर फिरसे आर्य-व्यवस्थाको भौतिकताके पशु वा राक्षससे बचानेके लिये आपहुंचे। कृष्णकी सहायतासे आर्य पांडवोंने दुर्योधनको कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें हराकर भौतिकवादको एक और जबर्दस्त शिकस्त दी। इस विजयके बाद कृष्णने सत्य, अहिंसा, समता तथा स्वतन्त्रताके आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर आर्योंके उजड़ते हुये समाजकी फिरसे पुनर्स्थापनाकी।

भारतीय—प्रजातन्त्र—राज्य

महाभारतके युद्धके बाद दुर्योधन और जरासंधकी बढ़ती हुई साम्राज्यशाहीका अन्तहो गया। उनके बाद फिर भारतवर्षसे कुछ समयके लिये राजतन्त्र उठसा गया। राजतन्त्रके उठतेही हमारे भारतवर्षमें कई छोटे-छोटे प्रजातन्त्र उग आये। इन प्रजातंत्रोंमें मगध, विदेह, काशी, कोशल, वैशाली, पिपलीवाहन, मालव तथा क्षुद्रक आदिके नाम प्रसिद्ध हैं। इन प्रजातंत्रोंमें कोई स्वेच्छाचारी राजा नहीं होता था। शासनका कार्य प्रजाके प्रतिनिधियोंकी सलाह पर हुआ करता था। गाँवोंके शासनके लिये पंचायतें होती थीं जो स्वयं गाँवोंके मामलोंको घरपरही सुलझा लिया करती थीं।

महावीर और बुद्धके अवतार

किन्तु कुछ साल बाद वह समाज-व्यवस्था, जिसे कृष्णने आकर ठीक किया था, फिर बिगड़ चली। इस समय समाज-व्यवस्थाके बिगड़नेका कारण भौतिकवादी साम्राज्यशाही न थी, किन्तु धार्मिक अनीति और अत्याचार थे। ब्राह्मणोंने धर्माधर्मपर अपनी प्रधानता बिठला दी थी। मोक्षका मार्ग ब्राह्मणोंने अन्यके लिये बन्दकर दिया था। धर्मके आध्यात्ममूलक सिद्धान्तोंको पीछे ढकेल दिया गया था, और अहिंसा तथा प्राणियोंकी सेवाके बदले असत्यपूर्ण हिंसात्मक यज्ञ होने लगे थे। जाति-भेद बढ़ गये थे, और मानव अपनी आपसी एकताको खोकर फिर अलग-अलग होकर एक दूसरेसे अत्याचार और अनाचारका बर्ताव करने लगे थे। ई. पू. छठी शताब्दिकी यह दशा थी। अतः युगको फिर

धर्म-संस्थापन करनेवालेकी आवश्यकता हुई और फलःस्वरूप महावीर (५९९–५२७ ई०पू०) और गौतम बुद्ध (५६३–४८३ ई०पू०) ने 'युगावतारों'के रूपमें जन्म लिया। महावीरने जैन धर्म और बुद्धने बौद्ध धर्मकी स्थापनाकी। भगवान महावीर और विशेषकर बुद्ध भगवानने धार्मिक पाखंडों, हिंसात्मक-यज्ञों तथा जाति-भेदोंको मिटाकर मनुष्यकी हिंसात्मक प्रवृत्तियोंको रोकनेका महान प्रयत्न किया। मोक्ष, शान्ति और आध्यात्मिक सुखके द्वार सब जातियों, सब छोटे बड़े एवं तथाकथित ऊँच नीच सब प्रकारके लोगोंके लिए खोल दिये गये। परिणामतः विकृत होता हुआ हमारा समाज पुनः सचेत और सचेष्ट हो उठा, और फिर अपनेको संभालनेके प्रयत्नोंमें जुट गया।

भारतवर्षका विदेशी जातियोंसे सम्पर्कका आरम्भ—

इन अवतारोंके अलावा हमारे प्राचीन भारतीय इतिहासकी दूसरी प्रमुख घटना हमारा विदेशियोंके साथ सम्पर्क है। भारत संसारके सब देशोंसे अधिक उपजाऊ और धनधान्य पूर्ण रहा है। कहावत मशहूर थी कि भारत एक सोनेकी चिड़िया है। किन्तु हमारी यह समृद्धिही हमारे अभिशापका भी कारण बनी। हमारे इसी वैभव और धनको लूटनेके हेतु गौतम बुद्धके समयसे ही विदेशियोंने आक्रमण शुरूकर दिये थे।

परशियन साम्राज्य—

प्रथमतः परशियाके सम्राट् दाराने (५२२-४८६ ई. पू.) हमारे मुल्कपर हमला किया था। ५१८ ई.पू. में ही वह हमारे पंजाब प्रान्तका अधिपति हो गया था। इस समयसे लेकर

करीब डेढ़ सौ वर्षोंतक भारतका उत्तर पश्चिमी प्रान्त परशियाके साम्राज्यका अंश बनाही रहा। भारतके इस प्रान्तको पाकर परशिया अपनेको धन्य समझने लगा। और बात भी ठीक थी, क्योंकि अकेला भारतीय प्रान्त परशियाको सालाना ३०० टेलेन्ट सुवर्ण अर्थात् करीब १२५०० मन सोना दिया करता था। इतना सोना परशियन साम्राज्यके अन्य २० प्रान्त मिलकर भी मुश्किलसे दे पाते थे। यह अपार सोनाही था जिसने परशियन लोगोंको ही नहीं, अपितु कई एक दूसरे विदेशी लुटेरोंको भी हमारे मुल्कपर धावा करनेके लिए समय समयपर न्योता दिया है।

परशियनोंके बाद चौथी शताब्दि ई. पू. में यूनानियोंने भी हमारे इसी वैभवको लूटनेके लिए भारतवर्षपर हमला किया था। अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) इस यूनानी हमलेका नेता था। सन् ३२७-३२६ ई० पू०में वह काबुलके दरवाजेसे हमारे मुल्कमें घुसा। उस समय उत्तर पश्चिममें बहुतसी प्रजातंत्र रियासतें थीं। यद्यपि शासन और व्यवस्थाके विचारसे ये रियासतें बहुतही सुशासित और विकसित थीं, किन्तु इनमें परस्पर कोई मेल न था। अपने राज्य अथवा रियासतके प्रेमके सिवाय इनमें पूर्णदेशीय राष्ट्रीयता न थी। इसलिए विदेशी आक्रमणकारीके खिलाफ वे कोई संयुक्त मोर्चा कायम न कर सके। परिणाम यह हुआ कि सिकन्दरने एक-एक करके सारे प्रजातंत्रोंको विनष्ट कर डाला। किन्तु पंजाबके महाराज पुरुसे विजय हासिल करनेमें उसे काफी मूल्य चुकाना पड़ा था। अतः पुरुके पौरुष और बलसे थककर एवं डरकर अलक्षेन्द्रकी फौजें आगे बढ़नेका साहस न कर सकीं और पंजाबसे ही वापिस हो गईं। लौटते समय अलक्षेन्द्र

अपने जीते हुये भारतीय प्रदेशों (उत्तर पश्चिम भारत और पंजाब) के शासनके लिये कुछ यूनानी शासकोंको यहीं छोड़ गया।

विदेशियोंसे भारतको मुक्त करनेके लिए राज्यक्रान्ति और भारतके राष्ट्रीय साम्राज्यकी पुनर्स्थापना—

अलक्षेन्द्रके लौट जानेके बादही भारतने विदेशी सत्ताके खिलाफ तुरन्त विद्रोह कर दिया। इस विद्रोहके नेता थे 'पिपली वाहन'के इक्ष्वाकु वंशीय चन्द्रगुप्त मौर्य। चन्द्रगुप्त मगधके नन्द वंशीय सम्राट्के सेनापतिके लड़के थे। पहिला विद्रोह चन्द्रगुप्तने नन्दोंके खिलाफ किया था और जब उन्हें पकड़कर फाँसी दी जानेवाली थी, तब वे भागकर पंजाब चले आये थे। पंजाबमें उनकी कौटिल्यसे मित्रता हुई। चन्द्रगुप्त अलक्षेन्द्रके विजयोंसे मर्माहत हो चले थे, और इन विदेशियोंके पंजेसे अपने देशको स्वतंत्र देखना चाहते थे। इसलिए अलक्षेन्द्रके पीठ फेरतेही चन्द्रगुप्तने कौटिल्यकी मददसे भारतीय जनताको विदेशियोंके विरुद्ध उभाड़कर विद्रोह कर दिया। चन्द्रगुप्तका विद्रोह सफल हुआ, और सारे यूनानी शासक हिन्दुस्तानसे भगा दिये गये या मार डाले गये। इसके बाद ३२१ ई. पू.में चन्द्रगुप्तने पाटलीपुत्र परभी अधिकार कर लिया। इस प्रकार उत्तरमें अफगानिस्तान, काबुल, कन्धार, गन्धार तथा पंजाबसे लेकर मगध और नीचे दक्षिणमें करीब मैसूर तक चन्द्रगुप्तकी अकेली सत्ता कायम हो गई। यह चन्द्रगुप्तकी ही विजय न थी, अपितु भारतकी राज्य क्रान्तिकी भी विजय थी, जिसकी सफलताने विदेशियोंको

हिन्दुस्तानसे बाहर कर हमारे खंडित भारतको पुनः मौर्योंके नेतृत्वमें, एकसूत्रमें ग्रथित और संगठित कर दिया। इसी कारण मौर्य-वंश राष्ट्रीय उत्थानके इतिहासमें पहिला सार्वभौम राष्ट्रीय राजवंश माना जाता है।

मौर्य वंश—

भारतके इसी उज्ज्वल वंशने राज-कुल-भूषण सम्राट् अशोक-को भी जन्म दिया था, जिनके सुयश और सुकृतिके सौरभसे आज भी देश महक रहा है। अशोकने अपने शासनको सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोंपर चलाया, और उन सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हुए उन्होंने साम्राज्यलिप्साके हेतु 'युद्ध' भी बन्द करा दिये। लोगोंको तलवारसे जीतनेके बजाय उन्होंने लोगोंके हृदयोंपर प्रेम और धर्मकी विजय स्थापित करनेको महत्व दिया, और इस प्रकार पाशविक विजयकी जगह धर्म-विजय की स्थापनाकी। इस तरह आजसे २२०० वर्ष पूर्वही सम्राट् अशोकने राज-शासनमें सत्य और अहिंसाका सफल प्रयोग करके दिखा दिया, और यह भी जतला दिया कि यदि राजा या शक्तिके ठेकेदार अपने स्वार्थोंको सर्वोपरि न समझें अथवा मोहान्ध न हुआ करें, तो संसारसे 'युद्ध'की विभीषिका और पाशविकताका भी लोप हो सकता है। आज लोग कह दिया करते हैं कि संसारका काम बिना युद्ध और हिंसाके कैसे चल सकता है, किन्तु अशोकका उदाहरण ऐसा कहनेवालोंको क्या चुप नहीं कर देता? अशोक हमारे इतिहासके ही नहीं संसारके तमाम महान कहे जानेवाले

सम्राटोंसे भी यथार्थतः महान थे। उनका साम्राज्य हिन्दुकुशसे आसाम और हिमालयसे लेकर सुदूर दक्षिणमें पांडुचेरी और चोल राज्योंकी सीमातक फैला हुआ था। इस प्रकार स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त और अशोकके प्रयत्नोंसे प्रथमतः सम्पूर्ण भारत एक शासनके द्वारा राष्ट्रीय सूत्रमें संकलित किया गया था। मौर्योंका शासन यद्यपि वाह्यरूपसे साम्राज्यवादीही था, किन्तु उनके शासनके सिद्धान्त वस्तुतः प्रजातंत्रमूलक थे। यह मौर्य साम्राज्य ई. पू. १८७ में पहुंचकर समाप्त हो गया और उसके पश्चात् भारतकी एक राष्ट्रीयता पुनः नष्ट हो चली।

विदेशी शक, यवन और पार्थियन—

मौर्योंके बाद फिर भारतवर्षमें कई छोटे-छोटे राज्य उग आए जैसे शुंग, आन्ध्र, कलिंग, कण्व आदि। इससे भारतकी राष्ट्रीय शक्ति क्षीण हो चली। परिणामतः हमारे देशपर फिर यूनानियों, शक और कुशानों तथा पार्थियनोंके हमले होने लगे। २१२ ई० पू० से १२० ई० सन् तक भारतीय राष्ट्र कई विदेशी और देशी राज्योंके जय-विजयकी क्रीड़ास्थली बना रहा। इन यूनानी, शक और कुशान राजाओंमें मिलिन्द (१८५ ई० पू०) नाहपान (७८ ई० सन्) कनिष्क [१२० ई० सन्] गान्डोफारनीज़ (४५ ई. सन्) आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन विदेशी राजाओंने हमारे बहुतसे प्रदेशपर बाहु-बल द्वारा अपनी भौतिक विजय स्थापितकी थी, किन्तु सांस्कृतिक और बौद्धिक रूपमें विजय हमारी ही रही। फलतः कुछ समयके भीतरही ये सारे शक, यवन और कुशान राजा

हिन्दू धर्मसे पराजित हुए और हिन्दू समाजको आत्म-समर्पण कर उसीमें मिल गये। इस प्रकार जिन शक, यवन और कुशानोंने हमें तलवार द्वारा विजित किया था, वे स्वयं अन्ततः हमारी संस्कृति द्वारा विजित कर लिये गये।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान और गुप्तोंका अभ्युदय—

हम देख आये हैं कि मौर्योंके पतनके पश्चात लगभग १५० वर्षों तक भारत खंडित अवस्थामें पड़ा था। किन्तु इस लम्बे अर्सेके बाद फिर भारतके दिन लौटे।

३४० ई० सन्‌में पुनः गुप्तवंशीय महाराज चन्द्रगुप्तके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रका निर्माण कार्य शुरू हुआ जिसे उनके उत्तराधिकारियोंने योग्यताके साथ पूरा करके छोड़ा। चन्द्रगुप्तके पुत्र समुद्रगुप्त और पोते चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके विशाल प्रयत्नोंसे सारा उत्तरी-भारत जो अबतक खंडित पड़ा था, पुनः एक-राष्ट्र और एक शासनमें आबद्ध कर लिया गया। दक्षिणभारतपर भी गुप्तोंकी विजय और प्रभुता कायम हुई, यद्यपि वहाँके राज्योंको गुप्त-साम्राज्यमें नहीं मिलाया गया। विदेशी शक, और कुशान आदि राजाओंने भी गुप्तोंकी प्रभुताको स्वीकार कर भारतीय राष्ट्रके सामने मस्तक झुका दिया।

इस प्रकार गुप्त-राजाओंने भारतको संकलित कर भारतीय राष्ट्रका पुर्ननिर्माण किया। भारतके जीवनसे विदेशी प्रभाव हटा दिये गए, और उनकी जगह भारतीय जीवनके सब क्षेत्रों—धर्म, संस्कृति, साहित्य और कलामें भारतीयताको ही

अपनाया और विकसित किया गया। फलतः भारतीय ब्राह्मण संस्कृति और भारतीय धर्म फिरसे पनप उठे और भारतके राष्ट्रीय जीवनमें एक नूतन स्फूर्ति और जीवन संचारितहो उठा। भारतकी राष्ट्रीय भाषा, संस्कृति, साहित्य और कलाने गुप्तोंका पूर्ण सह-योग पाकर विकासकी सीमाको भी लांघ दिया। कालिदासकी शकुन्तला और मेघदूत साहित्यिक विकासके माप-दंड बन गए। अजंताकी गुप्त चित्रकारी संसारके लिये ईर्षाकी वस्तु हो गई। आजभी गुप्तोंकी 'अजंता' कलाकी विमल गंगाका स्रोत बनी हुई है। आजके बहुतसे कलाकार, जैसे बंगालके, अजन्ताकी चित्रकारीसे उत्साहित होकर गुप्त कालकी अलौकिक शैली पर चित्र बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। किन्तु अजन्ताकी चित्रशैलीकी वे केवल स्पर्धाही कर सके हैं। राष्ट्रीय साहित्य और कलाके इस स्वर्गीय पुनर्जीवनके साथही साथ गुप्त-कालीन समाजने जो उन्नतिकी वह भी वैसीही अनुपम और अलौकिक थी। चीनी यात्री फाहियानने, जो गुप्तोंके समयमें भारतवर्ष आया था, और करीब ४०५ से ४११ तक यहाँ रहा, गुप्त शासनके बारेमें लिखा है कि उनका शासन बहुतही सभ्य और सुसंस्कृत था। अशोकीय शासनकी तरह गुप्त शासनके मूल सिद्धान्तभी अहिंसा-मूलक और सत्यपर आधारित थे। राजा प्रजाके सेवककी तरह काम करता था। जनताको हर प्रकारकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी। किसीपर कोई प्रतिबंध न था, और समाजका हरएक व्यक्ति उच्च आदर्शोंका माननेवाला था। गुप्त शासनकी सुयोग्यता और सफलताका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है

कि उस समय न्यायालय बहुत कम थे, और चोरी, डकैती तथा अनाचार एवं व्यभिचारका करीब-करीब लोपही हो गया था। फाँसीकी सजा तक उड़ा दी गई थी। अतः गुप्त-युग निःसन्देह हमारे भारतवर्षका राष्ट्रीय स्वर्णयुग था।

अन्तिम राष्ट्रीय आर्य पुष्यभूति वंश—

दो सौ वर्ष भारत गुप्तोंके राष्ट्रीय स्वर्ण-युगमें खेलता और खिलता रहा। इसके बाद उनके शासन और युगपर यवनिका गिरती है। और तदनन्तर छठवीं शताब्दिके अंतिम चरणमें आकर भारतवर्षके राजनैतिक मंचपर फिर राष्ट्रीय पुष्यभूति वंश प्रवेश करता है। पुष्यभूति वंश प्राचीन आर्यवंशोंमें सबसे अंतिम वंश है। इस वंशमें हर्षवर्धन सबसे बड़ा और महान सम्राट हुआ है। उसने ६०६ से लग भग ६४७ ई० सन् तक राज्य किया। हर्षवर्धन प्राचीन प्रभावशाली और शक्तिमान आर्य राजाओंमें आखिरी प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट हुए, जिनके आधिपत्यमें उत्तरी भारत अथवा आर्यावर्त्त एक राष्ट्रके रूप में संगठित रहा। हर्षयुगमें भी गुप्तों की भांति भारतीय राष्ट्रने खूब विकास किया था।

आर्य राष्ट्रका विनाश—

हमारे राष्ट्रीय इतिहासका यह आखिरी अध्याय था। इसके बाद सन् ६४७ में हर्षवर्धनकी मृत्युके साथ हमारी राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय शासन, छिन्नभिन्न हो गये। सारा भारतीय राष्ट्र टुकड़े-टुकड़ोंमें बँटकर पुनः उसी दशाको

पहुंच गया जिसमें वह चन्द्रगुप्त मौर्यके पूर्व अलक्षेन्द्रके आक्रमणके समयमें था। सारे भारतवर्षमें पुनः कई छोटे छोटे रजवाड़े उग आये जिनमें चौथी शताब्दि ई० पू० के प्रजातंत्र रयासतोंकी भांति न तो कोई मेल था, न कोई पारस्परिक सहयोग, और न भारतको एक राष्ट्र मानकर उसकी सुरक्षा और सुशासनके लिए चिन्ता। हमारे इतिहासके इस पुनरावृत्तिके युगको राजपूत-युगके नामसे कहा जाता है।

राजपूत-युग—

राजपूत-युगसे विदेशी आक्रमणोंकी पुनरावृत्ति भी शुरू हो गई। इस युगके विदेशी आक्रमणकारी मुसलमान थे। मुसलमानोंके आक्रमणोंके समय सारा भारतवर्ष कई राजपूत रियासतोंका थाला बना हुआ था, जो राज्य-लिप्सा और ईर्षामें पड़े हुए परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते थे। ऐसी हालतमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने सरलतासे एक-एक करके तमाम राजपूत राज्योंको परास्त कर डाला, क्योंकि पौरुष और शक्तिसे पूर्ण होनेपर भी पारस्परिक मेल वा ऐक्य और एक-राष्ट्रीय भावनासे हीन होनेके कारण वे विदेशी आक्रमणकारियोंके विरुद्ध किसी प्रकारका सफल संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा कायम न कर सके थे। परिणामतः मुसलमान विजयी हुए और आर्योंका गौरवान्वित भारतवर्ष अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनताको खो बैठा।

मुस्लिम आक्रमण—

मुसलमानोंके आक्रमण ७ वीं और ८ वीं शताब्दीमें अरबोंके नेतृत्वमेंही शुरू हो गये थे; किन्तु इस्लामी आक्रमणोंका

अधिक जोर १० वीं और ११ वीं शताब्दीमें प्रारम्भ हुआ, जब तुर्कोंने सुबुक्तगीन(९८६-८७)और महमूद गजनवी(१००१-१०२५) के नेतृत्वमें हिन्द पर लगातार आक्रमण करने शुरू किये। लेकिन ये आक्रमण लूट खसोट तक ही सीमित रहे, और हमारे मुल्कपर स्थायी रूपसे किसी प्रकारका शासन कायम करनेकी इन आक्रमणकारियोंने चेष्टा न की।

मुस्लिम शासनकी स्थापना—

लेकिन १२ वीं सदीके अन्तमें भारतकी हिन्दू राजशाही का अन्त हो चला। दिल्ली, अजमेर और सांभरके प्रतापी महाराज पृथ्वीराजके नेतृत्वमें भारत संगठित होने और एकराष्ट्र कायम करनेकी सोच ही रहा था कि यकायक मुहम्मद गोरीने आकर सारा स्वप्न तोड़ डाला। सन् ११९२में तराईके मैदानमें मुहम्मद गोरीकी छद्म भरी चमचमाती तलवारने पृथ्वी-राजका अन्तकर डाला और दूसरे ईर्षालु राजपूत राजा अलगसे तमाशा देखते रहे। किन्तु यह अवसान अकेला पृथ्वीराजका अवसान न था, अपितु यह भारतीय राष्ट्र और उसके स्वातंत्र्यका भी अवसान था, क्योंकि पृथ्वीराजके बाद भारतवर्ष इतना अशक्त और कमजोर हो गया कि वह तराईमें खोई हुई अपनी स्वतन्त्रताको युगों तक नहीं लौटा सका—तराई या तरावड़ीकी हार हिन्दू-राष्ट्रकी हार थी, जिसने हिन्दके साम्राज्यका तख्त पूर्णरूपसे मुसलमानोंके हाथमें सौंप दिया।

आर्योंकी गौरवोन्वित राजनगरी हस्तिनापुर-अब राजपूत हिन्दुओंके हाथसे निकल कर दिल्लीके नामसे मुसलमान

शासकोंकी राजधानी और चेरी बनी। मुहम्मद गोरीने दिल्लीके तख्तपर अपने प्रेमपात्र एक गुलामको आसीन किया और इस प्रकार हम गुलामोंके गुलाम बनकर अपनेही मुल्कमें दूसरेके आश्रित हो गये।

मुस्लिम गुलाम वंशकी स्थापनाके साथ १३ वीं सदीके प्रारम्भ से लेकर फिर निरन्तर एकके बाद दूसरे मुसलमान शासक भारत-के राष्ट्रके मालिक होतेही चले गये। १३ वीं सदीसे १६ वीं तक गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, और लोदी हिन्दुस्तानके भाग्य विधाता रहे।

इस प्रकार १३ वीं शताब्दीसे १६ वीं शताब्दी तक मुसल-मानोंके आक्रमणोंकी धूम रही। मुसलमान आक्रमणकारी पहले-पहल जब यहाँ पहुंचे तो उन्होंने हिन्दू कौमहीको नष्ट कर देना चाहा था और इस हेतु उन्होंने हिन्दू धर्म और संस्कृति पर जोरोंसे आघात भी किये थे। किन्तु जब इन आक्रमणकारि-योंने हिन्दुस्तानमें रहकर शासन करना प्रारम्भ किया, तब उन्हें मालूम हो गया कि हिन्दू कौमको नष्ट करना तो दूर रहा, वे बिना उनकी मददसे हिन्दुस्तानपर शांतिसे शासनभी नहीं कर सकते। प्रत्यक्षतः शासन-व्यवस्थाको चलानेके लिये मुस्लिम शासकोंको हर मंजिलपर हिन्दुओंके सहयोगकी आवश्यकता थी, जिसके बिना उनका हरगिज काम न चल सकता था।

मुस्लिम और हिन्दुओंमें परस्पर मेल—

यह सच है कि हिन्दुओंके शक्तिशाली और प्रभावशाली राज्य दिल्ली, कन्नौज, ग्वालियर, अनिहिलवाड़, देवगिरि आदि,

मुसलमानों द्वारा खत्म कर दिये जा चुके थे; परन्तु तबभी भारतवर्षमें कुछ एक हिन्दू राज्य दिल्लीकी मुस्लिम शाहीकी अवहेलना करनेको हमेशा मौजूद रहे। अतः इन हिन्दु अधिपतियोंको अपने कब्जेमें रखने तथा मुल्कके शासनकी व्यवस्था करनेके हितही मुस्लिम शासकोंको हिन्दू जनताके सहयोगकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। इसके अलावा मुस्लिम शासकोंको अपनी फौजके लिएभी हिन्दुस्तानकी जनताका सहारा अपेक्षित था।

फलतः यहांके शासक होनेपर विदेशी मुस्लिम विजेताओंको धीरे-धीरे हिन्दुस्तानको ही अपना मुल्क मानना पड़ा, और हिन्दुओंके सहयोगकी उन्हें नित्य अभ्यर्थना करनी पड़ी। दूसरी ओर हिन्दुओंने जब मुसलमानोंको सुनिश्चित रूपसे यहां बसा देखा तो उन्होंने भी मुसलमानोंको जहांतक हो सका अपनेमें मिला लेनाही श्रेयस्कर समझा। ये ही कारण थे कि अब हिन्दू और मुसलमानोंमें कुछ ऐसे प्रकारके सुधारक पैदा हुए, जिन्होंने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मोंको मिला कर, विरोधकी जगह प्रेम स्थापित करनेकी चेष्टाएं कीं। इन सुधारकोंने दोनों धर्मोंके समान तत्वों और समान सिद्धान्तों पर जोर दिया; और इस प्रकार धर्मोंके अन्तरभूत सिद्धान्तोंकी समता दिखाकर दोनों धर्मोंकी एक-आदर्शता और एकरूपता प्रकट की। यह प्रयत्न शताब्दियों तक चलता रहा। किन्तु इस प्रयत्नमें हिन्दू तथा मुस्लिम सुधारकोंको आशातीत सफलता नहीं मिल सकी। कारण यह था कि कतिपय धर्मान्ध मुसलमान शासकोंके अत्याचार-पूर्ण तथा असभ्य व्यवहारोंसे हिन्दू-जनतामें मुसलमानों और उनके धर्मके प्रति एक असह्य घृणा और उपेक्षा

पैदा हो गयी थी। मुसलमान शासक हिन्दुओंकी शक्ति और ताकतसे चिढ़तेभी थे, और नहीं चाहते थे कि हिन्दू किसी प्रकार शक्तिशाली बनकर उन्नत हों; क्योंकि हिन्दुओंकी शक्तिके बढ़नेसे वे अपने लिए खतरा महसूस करते थे। ऐसी स्थितिमें मेल एक स्वप्न था! किन्तु तब भी साधारण जनतामेंसे उठने वाले सुधारक (जैसे रामानन्द, कबीर, गुरु नानक, चैतन्य, जायसी आदि) हिन्दू मुस्लिम जनतामें मेल स्थापित करानेका बराबर प्रयत्न करतेही रहे और कुछ हद तक उसमें आखिरकार सफल भी हुये! यह इन्हीं सुधारकोंके प्रयत्नका फल था कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियां एक दूसरेके निकट सम्पर्कमें आ सकीं। इस सम्पर्कके परिणामसे ही मुस्लिम युगके भारतीय साहित्य, कला—ललित एवं स्थापत्य, और सामाजिक व्यवहारोंपर हमें मुस्लिम धर्मका प्रत्यक्ष प्रभाव देखनेको मिलता है।

मुगल-युग—

मुस्लिम राजशाहीका स्वर्ण काल मुगलोंके अभ्युदयके साथ प्रारम्भ होता है। मुगल-युगका प्रारम्भ सन् १५२६ ई० में हुआ, जब कि काबुलके बादशाह बाबरने लोदी सम्राटको पानीपतकी लड़ाईमें परास्त कर, दिल्ली और आगरा पर कब्जा किया था। इसी समय दिल्लीके लोदी सुल्तानोंको निर्बल देखकर मेवाड़के महाराजा राणा सांगा भी हिन्दू साम्राज्यकी पुर्नस्थापना और अपने प्राचीन आर्य गौरवको फिरसे लौटा लानेके प्रयन्तमें लगे हुए थे। किन्तु राणासांगाका प्रयत्न सफल न हो सका। हिन्दुस्तान को मुस्लिम सत्तासे छुड़ानेके लिये राणासांगाने लोदियोंके विजेता बाबरसे जबर्दस्त लोहा लिया, परन्तु दुर्भाग्यवश कन्हवाकी लड़ाई

में (सन् १५२७ में) वह बाबरसे हार गया। राणासांगाकी इस हारसे अब असंतुष्ट भारतको मुसलमानोंको हिन्दुस्तानसे निकाल कर राष्ट्रीय साम्राज्यको स्थापित करनेकी अपनी अभिलाषा अपने विदीर्ण हृदयमें ही दबाकर छिपा लेनी पड़ी, और मजबूरी बस मुसलमानी शासकोंके साथ सहयोगी बन कर रहनेको तैयार हो जाना पड़ा।

विजयी बाबर हिन्दुस्तानका पहिला मुगल साम्राट् हुआ, किंतु मुगल साम्राज्यको सुसंगठित और सुदृढ़ बनानेका कार्य भार उसके पौत्र अकबरके जिम्मे पड़ा।

अकबरके प्रयत्नोंने हिंदू और मुसलानोंमें एकता स्थापित करनेका वह महान् प्रयत्न शुरू किया—जो इससे पहले किसी मुस्लिम शासकने न किया था। अकबरपर मध्यकालीन सुधारकों का भी काफी असर था। साथही राजनैतिक दृष्टिसे भी उसे यह भली प्रकार ज्ञात हो गया था कि हिंदुस्तानमें मुस्लिम मुगल साम्राज्य की इमारत हिंदुओंकी शक्तिशाली दीवारके सहारेके बिना टिक नहीं सकती। उसे यहभी महसूस हुआ कि हिंदुस्तानमें, बिना हिंदुस्तानियोंके सहयोगके और बिना हिन्दुस्तानको अपनी मातृ-भूमि समझे विदेशीय मुस्लिम विजेताके रूपमें स्थायी शासन नहीं कायम किया जा सकता। इसलिये अकबरने सोचा, और सही ही कि यदि मुगलिया खानदान हिन्दुस्तानके साम्राज्यका निश्चिन्तता से भोग करना चाहता है तो उसे मुगलिया खान्दानको हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय वंश या खानदानका रूप देना होगा और हिन्दू तथा मुसलमानोंके बीचके पृथकत्वकी खाईंको पाट देना पड़ेगा।

फलतः अकबरने अपनी शासन-व्यवस्थासे बहुत हद तक धार्मिक भेद-भाव उठा दिये। हिन्दुओंको भी मुसलमानोंकी तरह दरबार और शासनमें ऊंचे-ऊंचे ओहदे दिये जाने लगे। हिन्दुओंका समान रूपसे मान और विश्वास किया जाने लगा। विधर्मी होनेके नाते मुसलमान शासक अबतक हिन्दुओंसे जो घृणात्मक 'जजिया' कर लिया करते थे, उसेभी अकबरने हटा दिया। सामाजिक रूपसे भी अकबरने हिन्दू और मुसलमानोंके हृदयोंको निकट लानेका यत्न किया। राजपूत राजाओंकी लड़कियोंसे विवाह करनेमें यही उसका उद्देश्य था। कट्टर इस्लाम धर्मको साम्राज्यकी व्यवस्थामें दस्तनदाजी करनेसे पीछे ढकेल दिया गया, और उसकी जगह अकबरने एक स्वतंत्र सर्वदेशीय धर्म 'दीन-इलाही' की स्थापनाकी।

इन प्रयत्नोंका फल यह हुआ कि हिन्दू जो मुगल साम्राज्य की स्थापनासे असंतुष्ट हो रहे थे, और मुसलमानी शासनको हमेशासे विदेशी शासन समझ कर उससे घृणा किया करते थे, अब यह अनुभव करने लगे कि अकबर विदेशी मुगल नहीं, हिन्दूही है, हिन्दुस्तानी है, और मुगलसाम्राज्य मुस्लिम साम्राज्य नहीं, राष्ट्रीय साम्राज्य है।

इस प्रकार मध्य कालीन सुधारकोंका हिन्दू और मुस्लिम एकताको स्थापित करनेका कार्य अकबरने बहुत हदतक पूराकर दिखाया। उसके प्रभावसे हिन्दू और मुसलमान दोनों अब अपने को भाई-भाई और एकही भारत-माताके पूत अनुभव करने लगे। दोनों अब हिन्दुस्तानको अपना राष्ट्र और मुल्क समझकर दर्द और सहयोगके साथ हर प्रकारसे उसकी उन्नतिके लिये काय करने लगे।

किन्तु अफसोस अकबरके मरतेही उसके उत्तराधिकारियोंने पुनः मुगल साम्राज्यके राष्ट्रीय स्वरूपको बिगाड़ना शुरू कर दिया। अकबरके तीसरे उत्तराधिकारी धर्मान्ध औरंगज़ेबने तो सम्राट होतेही (१६५९-१७०७) मुगल साम्राज्यका रहा सहा राष्ट्रीय स्वरूप बिलकुलही खत्म कर डाला। हिन्दुओं पर फिर अत्याचार होने लगे। जजिया कर फिरसे लगा दिया गया और हिन्दुओंको पीड़ित करनेके और भी कई तरीके काममें लाये गये।

हिन्दुओंको अब फिर मालूम पड़ने लगा कि वे विदेशीय हुकूमतके शिकार हो रहे हैं। उनको अपना मुल्क हिन्दुस्तान मुस्लिम-शासनके खूंखार पंजेमें जकड़ा और छटपटाता दीखने लगा। परिणामतः अब उन्हें अपनी अन्तर-दृष्टिके सामने अपनी जाति और धर्म तथा देशका सर्वनाश प्रत्यक्षतः नाचता दिखाई पड़ने लगा।

फलतः हिन्दू जातिने अपनी तथा अपने धर्म और देश की रक्षा करनेके लिये मुगलिया हुकूमतके खिलाफ सर्वत्र विद्रोहका झंडा खड़ा कर दिया। पंजाबमें गुरू गोबिन्द सिंहके झंडेके नीचे सिक्ख संगठित हुए। राजपूताना में, राजपूत-क्षत्रिय संभल उठे। दक्षिणमें शिवाजीके नेतृत्वमें मराठोंका दल बल पकड़ने लगा। गोबिन्द सिंह और शिवा आदिने हिन्दुओंको राष्ट्रीय धर्म और राष्ट्रीय-प्रेम एवं राष्ट्रीय-स्वतंत्रताका पाठ पढ़ाकर जागरुक और सजगकर डाला। मुगल आफतमें आ फंसे। दक्षिणमें मराठे और उत्तरमें सिक्ख उनके राज्यकी दीवारोंपर कसकर चोटें मारने लगे। परिणामतः मुगल साम्रज्यकी इमारत डोल उठी। औरङ्गज़ेबका तख्त हिल उठा।

सिक्ख और मराठोंके घातकप्रहारोंसे मुगल-शाली क्षुब्ध हो उठी। व्याकुल होकर हिन्दुओंकी इन दो राष्ट्रीय ताकतोंको खत्म करनेके लिये औरंगजेब जीवन भर प्रयत्नमें लगा रहा, किन्तु अन्ततः उससे कुछ करते न बन पड़ा।

मराठोंसे आखिर समय तक युद्ध करनेके बाद थककर वह चुपचाप अहमद नगरको लौट आया, और वहींपर कुछ समय उपरान्त सन् १७०७ में उसकी मृत्यु भी हो गई।

औरंगजेबके मरनेके बाद सिक्ख और मराठा उत्तरोत्तर अपनी शक्ति बढ़ाते चले। मुगल साम्राज्यकी दीवारें हिलती चली गयीं। मुगलोंके ढहनेके साथ दूसरी ओर मराठा शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। मराठोंकी यह शक्ति बढ़तीही रही, जब तककि सन् १८१९ में अंग्रेजी-साम्राज्य शाहीने मराठा संघके नेता पेशवाका अन्त न कर दिया। इसी तरह सिक्ख शक्ति भी मुगलोंको कुचलती हुई बढ़ती चली गई, जब तक कि सन् १८४८ में अंग्रेजी शक्तिने पेशवाकी भांति उनका भी खात्मा न कर डाला।

क्षीण होते हुए मुगल साम्राज्यपर इसी समय विदेशी परशियनों और यूरोपियनोंने भी क्रूरतासे प्रहारकर उसे चूरकर डाला। सन् १७३९ ई० में परशियाके राजा नादिरशाहने और सन् १७५६ और १७६१ में अहमदशाह दुर्रानीने मुगलोंकी दिल्ली पर बड़े घातक हमले किये। दूसरे हमलेके समय अहमदशाह मुगलोंके साथ मराठा शक्तिको भी कुचलता गया।

हिन्दुस्तानकी इस शोचनीय दशाका विदेशी यूरोपियन व्यापारियोंने खूब फायदा उठाया। आन्तरिक कलह और विदेशी

प्रहारोंसे खंडित और द्रवित हुए हिन्दुस्तानको लूटने-खसोटने और उस पर कब्जा करनेका उन्हें बड़ा सुन्दर अवसर दिख-लाई दिया।

यूरोपियन जातियाँ औरंगजेबके पूर्वसेही हिन्दुस्तानमें व्यापारके बहाने पहुँच चुकी थीं। औरंगजेबकी प्रचण्डताके सामने तो वे कुछ करनेका साहस न कर सके थे, लेकिन उसके मरनेके बाद हिन्दुस्तानको अशक्त और असंगठित पाकर उन्होंने अपनी साम्रज्यशाही योजनाके अनुसार हिन्दुस्तानको दबानेका उपक्रम शुरू कर दिया।

इस प्रकार एक ओरसे फ्रेंच और दूसरी ओरसे अंगरेज व्यापारी अपनी अपनी हुकूमत हिन्दुस्तानमें कायम करनेके लिये परस्पर लड़ने भिड़ने लगे। फ्रेंच जनरल डुप्ले और अंगरेज जन-रल क्लाइवमें खूब युद्ध हुए। इस संघर्षमें अंगरेज विजयी हुए, और फ्रेंच हिन्दुस्तानके राजनैतिक रंगमंचसे निकाल बाहर कर दिये गए।

फ्रांसिसियोंके निकल जानेपर अंगरेजोंका कोई दूसरा यूरो-पियन प्रतिद्वन्दी न रह गया। उन्होंने अब हिन्दुस्तानियोंकी आपसी फूट और कलहका फायदा उठाकर कभी मुस्लिम राज्योंको अपनी ओर करके हिन्दू राज्योंको दबाया, और कभी हिन्दू राज्योंसे मिलकर मुस्लिम राज-शक्तिको गिराया। इस प्रकार रोमके सीजरोंकी 'भेद और शक्ति' की नीतिसे काम लेते हुए क्लाइवने सन् १७५७ में बंगालको अपने अधिकारमें कर लिया। मुगल बादशाहोंकी शक्ति बंगालसे हटा दी गई, यद्यपि नाम मात्रसे अंग्रेजी-कम्पनी-सरकार मुगल बादशाहको अपना बादशाह

स्वीकारकर उसे कुछ कालतक दीवानी देती रही। किन्तु जैसे जैसे हिन्दू और मुस्लिम आपसमें लड़कर अपनी शक्तियोंको क्षीण करते गये अंगरेज अपनी भेद-नीति द्वारा एकको दूसरेसे भिड़ाकर अपना काम निकालते गये। इस प्रकार हिन्दुस्तानकी बढ़ती हुई ताकतोंमें पहले अंगरेजोंने सन् १८१९ में मराठोंको खतम किया और उसके बाद रही सही सिक्खोंकी हिन्दू-शक्तिका भी सन् १८४५ में अन्तकर डाला। इन शक्तियोंके खतम होतेही सारा हिन्दुस्तान अब उनके कब्जेमें चला आया; यद्यपि नाम भरके लिये मुगल बादशाह अभी भी दिल्लीके किलेमें मौजूद था।

अंगरेजोंने अपनी हुकूमतके कायम होनेपर हिन्दुस्तानको बुरी तरहसे लूटना और खसोटना शुरू किया। हुकूमत करने वाली अंगरेजी कम्पनीका मुख्य ध्येय व्यापार था, और उसका अर्थ था लूट। इस प्रकार हिन्दुस्तानकी खूब लूट होने लगी। हिन्दुस्तानी राज-वंश भी एक-एक कर नष्ट किये जाने लगे। जिन हिन्दुस्तानी राजवंशोंसे मैत्री जोड़ कर अंगरेजों ने अपनी शक्ति स्थापितकी थी उन्हें भी अंगरेजोंने जीवित न रहने दिया। कंपनीके गवर्नर-जनरल हेस्टिंगज और वेलेजली आदिने कई हिन्दुस्तानी राज्योंको उखाड़ फेंका और कईको अपना गुलाम बनाया। उसके बाद रहे सहे कई एक हिन्दुस्तानी राज वंशोंको डलहौजी ने (१८५५ ई०) हड़प कर खतमकर डाला।

अंगरेजोंके विरुद्ध प्रति-क्रिया—

अंगरेजी कम्पनी-राजकी इस लूट मारसे जनता तो क्षुब्ध

थी ही, साथही मुस्लिम और हिन्दू राज वंशभी अपने मुकुटों को अंगरेजी बूटों द्वारा ठुकराया जाते देखकर क्रुध हो उठे। सारे देशमें विद्रोहकी आग धधक गई। परिणामतः सन् १८५७में हिन्दुस्तानी राजवंशोंने हिन्दुस्तानी जनता और सिपाहियोंको साथ लेकर अंगरेजोंको अपनी मातृ-भूमिसे निकाल देनेका सङ्कल्प कर डाला। इस सङ्कल्पमें हिन्दू और मुसलमान समान रूपसे सम्मिलित हुए। विदेशी गुलामीके खिलाफ हिन्दू और मुसलमानोंने मिलकर संयुक्त और राष्ट्रीय मोर्चा तैयार किया। अंगरेजोंके साथ भारतका यह पहला स्वातंत्र्य संग्राम था। इस स्वातंत्र्य संग्रामके नेता बहादुरशाह, नाना साहब, पेशवा, झाँसीकी रानी और तांतिया टोपी आदि थे।

किन्तु ये क्रांतिकारी अपनी शक्तिको सुचारु रूपसे सङ्गठित न कर सके, और इसलिए वे अंगरेजोंकी सङ्गठित शक्तिका ठीक तरहसे मुकाबला न कर पाये। इसके अतिरिक्त पूरे राष्ट्रने भी समुचित रूपसे उस स्वातंत्र्य संग्राममें मदद न पहुंचाई, वरन् बहुतोंने तो मुल्कके साथ गद्दारी करके अंगरेजोंको ही मदद दी।

फलतःअंगरेजी कंपनी-सरकारकी विजय हुयी, और भारतीय मुकुट धूलमें जा गिरा। सन् १८५७ की इस विजयसे ब्रिटिश हुकूमत पूर्णतया भारतवर्षमें कायमहो गयी।

इसी समय कंपनी सरकारके हाथोंसे भारतीय शासनकी बागडोर इङ्गलैंडके ताजके हाथोंमें चली आई और हम ब्रिटिश महारानीकी गुलाम रय्यत बने।

अंगरेजी हुकूमतका कठोर जुआ अब दृढ़तासे हमारे कंधों पर था।

ऐतिहासिक प्रतिक्रिया और राष्ट्रीय पुनर्जागृति

अध्याय—२

अंग्रेजोंने जिस तरह भारतवर्षपर अपना शासन और प्रभुता कायमकी वह हम देख चुके हैं। उन्होंने हमारी आपसी फूटका लाभ उठाकर अपनी सफल भेद-नीतिसे भारतीय सामन्तशाही को खतम कर दिया था। किन्तु इस समय सामन्तशाहीका खतम होना वास्तवमें अनिवार्य भी हो गया था। १८ वीं और १९ वीं सदीमें औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप, विश्व जिस परिवर्तनकी ओर जा रहा था उसमें मध्यकालीन सामन्तशाही का टिका रहना मुश्किल था। अतः भारतवर्षकी सामन्तशाहीका अन्त करनेमें अंग्रेजोंने एक प्रकारसे आनेवाले युगका ही हाथ बंटाया।

इस औद्योगिक क्रान्तिका जन्म—जिसने एक शताब्दिके भीतर राष्ट्रीय जीवनके प्रवाहको बदल दिया, इङ्गलैंडमें हुआ था। औद्योगिक क्रान्तिने नई किसमकी कलसे चलने वाली मशीनें पैदा कर उद्योग-धन्धोंमें आश्चर्य पूर्ण परिवर्तन पैदाकर दिये थे। हाथकी जगह अब मशीनोंसे अधिक सुलभताके साथ कई गुना अधिक काम तैयार होने लगा। फल-स्वरूप उद्योगोंके महान् केन्द्र जिन्हें फैक्टरी कहते हैं—स्थापित होने लगे। इन फैक्टरियोंके मालिक बड़े-बड़े पूंजीवाले थे।

पूंजीवालोंने अब नई मशीनों द्वारा खूब रुपया पैदा किया। तभीसे कतिपय सामर्थ्यशाली पूंजीपति बनने लगे, और संसारमें 'पूंजीवाद' ने अपना सिक्का जमाया !

व्यापारिक वस्तुओंके अतिरिक्त मशीन युगने नये-नये विस्मयकारी युद्धके अस्त्र-शस्त्रोंको भी पैदा किया। इङ्गलैंड में इस क्रान्तिका जन्म उसी समय हुआ जब कि उसके व्यापारी भारतीय राष्ट्रको हड़पनेमें लगे हुए थे। अतः नई क्रान्तिके दिये हुये हथियारोंको पाकर अंगरेजी व्यापारियोंको पुराने ढंगसे लड़नेवाले भारतीयोंपर कब्जा करना बिलकुल आसान हो गया। मशीनों द्वारा अपरिमित उत्पादन खपानेके लिए उन्हें अपरिमित बाजार भी चाहिये था जिसमें वे स्वच्छन्दता से व्यापार कर सकें, और यह तभी संभव था जब वे नये हथियारोंके द्वारा शांतिमय एशियाई प्रदेशोंको हड़प लेते। बढ़ती हुई पूंजीवादकी यह तृष्णा थी और इसे यूरोपवालोंने एशियाई मुल्कोंको चूसकर तृप्त करनेका प्रयत्न किया। फलतः इस प्रयत्नमें हमारा भारतवर्ष उनका प्रथम ग्रास बना।

अतृप्तिपूर्ण-तृष्णाके अलावा पूंजीवादने संकुचित राष्ट्रीयता और जातीय अभिमानको भी जन्म दिया। अतः इस संकुचित राष्ट्रीयता और देश-प्रेममें विश्वास रखने वाले यूरोपके प्रत्येक मुल्क अपने राष्ट्र और अपनी जातिके अलावा दूसरों को तिरस्कृत निगाहोंसे देखने लगे।

लेकिन हमारे लिये यूरोपकी इस राष्ट्रीय अहमन्यताका फल अच्छाही हुआ। उनकी ज्यादतियों और एकदेशीयता को देखकर हमारे एशियाई प्रदेशोंमें भी राष्ट्रीय भावनायें

जाग उठीं। एशियाने भी अंगड़ाई ली और विजातीय यूरोपियनोंसे सतर्क हो उठा।

किन्तु खेद है कि भारतवर्षने इतनी देर करके संभलनेका प्रयत्न किया—जब समय निकल चुका था। अतः १८५७ का विशाल प्रयत्न स्वतंत्रताके संग्रामकी एक असफल कहानी बनकर ही रह गया।

लेकिन चीन जो बहुत दिन तक हमारीही भांति यूरोपियन पूंजी और साम्राज्यशाहीका शिकार रहा उचित समयपर होश संभाल लेनेसे बहुत कुछ बच गया। परन्तु जापान अपनेको यूरोपकी दासतासे मुक्त रखनेमें पूर्ण रूपसे सफल रहा।

१८ वीं सदीकी व्यापारिक लूट—

बहुत प्राचीन कालसे ही हमारे और रोमके बीच व्यापारिक सम्बन्ध था। रोम आदि पाश्चात्य देशोंके अलावा चीन, अरब तथा अन्य एशियाई मुल्कोंसे तो ईसाके पूर्व सैकड़ों वर्षोंसे लेकर १५ वीं सदीतक हमारा व्यापार चलता ही रहा।

इस प्रकार ईसाके किई शताब्द पूर्वसे भारतीय व्यापारके साथ-साथ यहांकी संस्कृति, कला और धर्मभी यूरोप और एशियामें पहुंच कर शताब्दियों तक उन देशोंको सांस्कृतिक प्रकाश देते रहे थे। यही वह समय था जब भारतने अपनी सांस्कृतिक विजयके द्वारा वृहत्तर—भारत (Greater India) की स्थापनाकी थी।

सांस्कृतिक विजयका यह प्रवाह अशोकके समयसे बड़ी तेजीसे प्रारम्भ होकर थोड़ी बहुत रुकावटोंके साथ गुप्तयुग तक जारी रहा। किन्तु सातवीं शताब्दिसे इस प्रवाहमें कुछ रूकावट पैदा हो गई थी। और यद्यपि एशियाई मुल्कोंसे हमारा यह सांस्कृतिक सम्बन्ध १२ वीं और १३ वीं शताब्दि तक चलता ही रहा किन्तु यूरोपसे हमारा संबंध विच्छेद हो चुका था। एक प्रकारसे भारतवर्षने गुप्तोंके बाद यूरोपसे मानों आंखेंही फेर ली थीं।

अन्तमें १५ वीं शताब्दी ई० सन्में आकर पुनः साम्राज्य तृष्णासे पीड़ित यूरोपसे जबर्दस्ती हमारा सम्पर्क प्रारम्भ हुआ। इस सम्पर्कका श्रीगणेश करनेवाला वास्कोडिगामा था जो पुर्त्तगाल से चलकर सन् १४९८ में प्रथमतः कालीकट और कानानोर में उतरा था।

इस समय यूरोपकी तृषित आंखें हमारे असंख्य धन दौलत को देखकर ललचा उठी थीं। वास्कोडिगामाके समयसे हम देखते हैं कि क्रमसः किस प्रकार पोर्त्तगीज, डच, फ्रेंच और अंगरेजी कम्पनियां व्यापारके बहाने हमारे धनको उड़ानेके लिये यहां घुसी चली आईं। इस व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धामें अन्ततः अंग्रेज ही विजयी हुए और १८ वीं सदीमें भारतवर्षपर स्वाधिकार स्थापित कर मनमाना व्यवहार करने लगे।

प्लासीके युद्धके समय यानी सन् १७५७ से लेकर पूरी १८ वीं सदी भर अंग्रेज कंपनी व्यापारके बहाने खूब लूट मचाती रही। इसके अलावा सन् १७५७ और १८५७ के सौ संघर्ष-पूर्ण वर्षोंके भीतर अंग्रेजी कंपनी अपने नये हथियारों,

चालबाजियों और कूटनीतिके सफल हथकंडोंके द्वारा देशी रजवाड़ोंमें घुस-घुस कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करती चली गई। इन सौ वर्षोंके अंगरेजी सम्बन्धके बारे श्री एच० एम० हिन्डमन लिखता है—

"During the whole of the period... (1757-1857), Conquest by force of arms and annexation by that means, or by chicane, pressed steadily forward." (The Awakening of Asia, by H. M. Hyndman p. 205)

अर्थात् "सन् १७५७ से १८५७ के भीतर हथियारोंके जोरपर अथवा छल कपटके द्वारा विजय और अपहरणका कार्य दृढ़तासे चलता रहा"। इसप्रकार छल-कपट और पशु-बलसे हमारे स्वातंत्र्यको खतमकर अंगरेजोंने अपने बृटिश-शासनकी स्थापनाकी थी, यद्यपि अंग्रेजी साम्राज्यशाहीके समर्थकोंका कहना तो यह है कि भारतमें अंगरेजी राजकी स्थापना विजयकी तृष्णासे नहींकी गई, किन्तु जनताकी इच्छासे ही उसकी स्थापना हुई थी (India by Sir V. Chirol, pp. 78-79).

अतः अपहरण नीतिके द्वारा देशी रजवाड़ोंमेंसे बहुतसे नष्ट कर दिये गए थे और उनको अंगरेजी साम्राज्यमें मिला लिया गया था। इन विजित और पराजित रजवाड़ोंसे खूब धन और दौलत अंग्रेजी कंपनीके हाथ लगा। इस असंख्य लूटके रुपयेको दो भागोंमें बांटा गया। एक हिस्सा विलायत औद्योगिक केन्द्रोंको बढ़ानेके लिये भेजा गया और दूसरा हिस्सा बचे-खुचे अपराजित देशी और सीमान्त राज्योंको ध्वस्त करनेके काम पर खर्च किया गया। इन अपराजितोंको जीत लेनेपर फिर उनको भी लूटा गया। इस लूटका धन, सोना व चांदी कुछ तो

विजय करने वाले गवर्नर जनरलोंको पारितोषिकमें वितरित हुआ और बाकी इङ्गलैंड भेजकर जमा किया गया।

इस भांति भारतवर्षको लूटकर कितना धन १८ वीं सदीके अन्त तक इङ्गलैंड पहुंचाया गया कोई ठिकाना नहीं। श्री एच० एम० हिन्डमनके अनुसार "यह धन कोलम्बस और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा जितना अमेरिकासे यूरोपको लाया गया उससे कहीं अधिक था।" (The Awakening of Asia, by H. H. Hyndman, p. 205)

इस भारतीय रुपयेसे इङ्गलैंडने अपने उद्योग-केन्द्रों और धन्धोंको खूब बढ़ाया। अंगरेजी उद्योग—कोयला, लोहा और सूतके कारखाने हमारी पूंजीको पाकर इतने शक्तिशाली हो चले कि कोई अन्य मुल्क १८वीं सदीके व्यापारमें उनका सामना न कर सकता था। इस प्रकार जिस भारतवर्षके बलपर अंगरेजोंको व्यापारिक प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसी भारतको पुनः उनके व्यापार द्वारा इतना पीड़ित होना पड़ा जितना कि वह उस समय भी नहीं हुआ था जब अंगरेजोंने सीधी लूट मचाकर उसे आर्थिक-क्षति पहुंचाई थी। (Ibid p. 202)

भारतीय उद्योग-धन्धोंका अन्त—

ब्रिटिश राजके इस व्यापारिक प्रभुत्वने अन्ततः हमारे आर्थिक जीवनको ही नष्ट कर डाला। यह आर्थिक सर्वनाशका कार्य १७ वीं और १८ वीं शताब्दीसे ही प्रारम्भ हो गया था। इस समयके भीतर अंगरेजी सरकारने एक ओर तो भारतीय कैलिको वा मलमल पर इङ्गलैंड ले जानेकी रोक लगाई; और दूसरी ओर अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमें अथवा उन्नीसवीं

शताब्दीमें भारतीय धनको पाकर अपने कारखानोंको इतना बढ़ा लिया कि इंगलैंड सस्तेसे सस्ते मूल्यपर अपना माल दुनियाको देने लगा। इसका परिणाम स्वभावतः भारतीय जुलाहोंके लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। अंगरेजी व्यापारसे भारतीय घरेलू उद्योगोंकी रक्षाके लिये अंगरेजीही सरकार होनेसे कौन ऐसे नियम बनाता जो उनके असंयत व्यापार और मशीनोंके प्रहारको रोक सकते और भारतीय जुलाहों एवं व्यापारको विनष्ट होनेसे बचा लेते। श्री हिन्डमनके शब्दोंमें "बेरोक-टोक प्रतियोगिता, और अंगरेजी साम्राज्यके अन्तर्गत अंगरेजी मालमें स्वतंत्र व्यापार, इस समयका व्यापारिक धर्म बन गया था" (The Awakening of Asia p. 23)

इस सबका परिणाम जो होना था वही हुआ अर्थात् भारतीय उद्योग-धन्धे सब खतम हो गये और हजारों आदमी बेकार हो चले। उनके पाससे जीवनके सम्पूर्ण साधन छीन लिये गये और उन्हें चुप-चाप मरनेके लिये छोड़ दिया गया।

ब्रिटिश शासन—

ब्रिटिश शासनका रूप कंपनी युगमें नितान्त स्वार्थपूर्ण रहा। उनके शासनका ध्येयही एक मात्र भारतीय धन और जनका शोषण था। कंपनी युगके इस शासनको सुधारनेका कार्य लार्ड कार्नवालिसके सुपुर्द हुआ और उसने भारतमें अंगरेजी शासनकी जो व्यवस्था स्थापितकी, वह थोड़ा-बहुत उलट-फेरोंके साथ अन्त तक उसी प्रकार कायम रही।

किन्तु जनताके हितके लिये भी क्या कुछ किया गया ? श्री हिन्डमनके शब्दोंमें—"यदि कुछ किया है—तो १३२ वर्षोंमें १७८६

से लेकर १६१६ तक, अंगरेजी शासकोंने पार्लियामेण्ट, प्लैटफार्म और प्रेस द्वारा, भारत, इंगलैंड और संसारको यह विश्वास दिलानेकी कोशिश की है कि ब्रिटिश-राजने भारतवासियों को अनगिनत लाभ प्रदान किये हैं, और भारतवासी स्वयं स्वायत्तशासन या स्वराजके अयोग्य हैं। लेकिन भारतकी शान्त और अशिक्षित जनता यह अच्छी तरह जानती है कि ब्रिटिश राजका यह केवल दम्भ है"।

राष्ट्रीय प्रतिक्रिया——

परन्तु अंगरेजी-शासनसे कुछ लाभ भी अवश्य हुआ। यह लाभ था अंगरेजोंके द्वारा भारतका पश्चिमी सभ्यताके सम्पर्कमें आना। इस सम्पर्कका परिणाम यह हुआ कि भारतीयोंमें भी पुनः राजनैतिक जागृति, एकता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी भावनायें पैदा हुईं, जिनकी प्रतिक्रियाके फलसे स्वराज्यके आन्दोलनने विकास पाया।

इस राष्ट्रीय जागृतिमें निःसन्देह पहला हाथ अंगरेजी शिक्षाका था। भारतीयोंको अंगरेजीकी शिक्षा देनेमें ब्रिटिश सरकारने मूलतः अपनाही स्वार्थ सोचा था। अंगरेजी सरकारको एक तो अंगरेजीके जानकार हिन्दुस्तानी क्लर्कोंकी आवश्कता थी, और द्वितीय, अंग्रेजी शिक्षाके द्वारा वे भारतीय साहित्य और भाषाको एवं हिन्दुस्तानी संस्कृतिको नष्टकर भारतीयोंको यूरोपीय रंगमें रंग देना चाहते थे; क्योंकि ऐसा करनेसे वे समझते थे कि भारतीय हृदय और मनसे भी पराभूत होकर अंगरेजी राजके पक्के हिमायती हो जायेंगे और इस प्रकार भारत हमेशा उनके शोषणके लिये कब्जेमें रह सकेगा। किसी देशको निरन्तर गुलाम

बनाये रखनेके लिये निःसन्देह सांस्कृतिक विजयकी योजना बहुत जरूरी हुआ करती है। किन्तु अफसोस, अंगरेज राजनीतिज्ञ इस कुटनीतिज्ञतामें सफल न हो सके। अंग्रेजी शिक्षाका परिणाम हमारे बजाय उल्टा उन्हींके लिये घातक सिद्ध हुआ।

अंग्रेजी शिक्षाके परिणामसे भारतमें एक ऐसा छोटा शिक्षित वर्ग पैदा हुआ जिसने राष्ट्रीय जागृतिके आन्दोलनको रास्ता दिखलाया। अंग्रेजी शिक्षाने इस नये वर्गको और उनके द्वारा सामान्य भारतीयोंको मिल्टन, बर्क, मिल, मैकोले और हर्बट स्पेन्सर आदि अंगरेजी विचारज्ञोंकी स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और स्वराजकी उच्च भावनाओंसे बहुत प्रभावित किया। इन भावनाओंसे प्रेरित होकर भारतीय भी अब अपने मुल्कको एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें देखनेकी अन्दर ही अन्दर कामना करने लगे। अतः ब्रिटिश-राजके बन्धनों और गुलामीकी जञ्जीरोंसे अपनेको कसा और बंधा हुआ पाकर उनका हृदय ब्रिटिश-राज से क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट हो चला और अपनेको मुक्त करनेके लिये विद्रोही बन बैठा।

भारतीयोंके असन्तोषकी यह आग अन्य उपकरणोंने मिलकर और भी प्रज्वलित की। अंगरेजी शिक्षाके अलावा अंगरेजी और यूरोपीयन विद्वानोंने भारतीय इतिहास और पुराने साहित्य का खोजपूर्ण अध्ययन कर भारतको उसकी संस्कृति, साहित्य और भाषाकी महानताका भी बोध कराया। परिणाम यह हुआ कि जो अंगरेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीय पश्चिमी प्रतिभासे खींचकर यूरोपकी ओर अग्रसर हो रहे थे वे अब अपनी संस्कृति और देशकी ओर लौटने लगे। परिणामतः उनके हृदयोंमें अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा और विचलित हुए सांस्कृतिक गौरवको पुनः

स्थापित करनेकी बलवती भावनायें जाग उठीं; किन्तु विदेशी राजके रहते ऐसा होना सम्भव न देखकर उनका हृदय ब्रिटिश-सत्ताके विरुद्ध और तीव्रतासे भड़क उठा।

धार्मिक आन्दोलन—

ब्रिटिश राजके विरुद्ध सुलगती हुई आगको प्रज्वलित करनेमें धार्मिक सुधारकों और आन्दोलन-कर्त्ताओंका भी काफी योग रहा है। पश्चिमकी विचार-धारासे प्रभावित होकर ये नये सुधारक भारतीय-हिन्दू धर्मकी रूढ़िवादितको विशुद्ध कर उसे प्रगतिकी ओर बढ़ा ले गये।

यह नया धार्मिक आन्दोलन १९वीं सदीमें श्री राजाराम मोहन रायसे प्रारम्भ होता है। राजाराम मोहन राय 'पहिला महान् अर्वाचीन भारतीय' था।[1] इस महान् व्यक्तिने सती-प्रथाको खतम करनेमें अंग्रेजी सरकारको बहुत मदद दी थी। वे एक उच्च-कोटिके विद्वानभी थे। धर्मके वाह्य उपकरणों और आडम्बरोंके वे विरोधी थे। वे सामाजिक कुरीतियोंको सुधारना और शिक्षा द्वारा नारीका उद्धार करना चाहते थे। जातिके बन्धन और छुआ-छूतके वे विरोधी थे। अतः इन ध्येय और सुधारोंको आगे बढ़ानेके लिये उन्होंने एक धार्मिक संघकी स्थापनाकी जो 'ब्रह्मो-समाज'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्मो समाजके कार्यको उनके पश्चात देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेनने आगे

---

1. Landmarks In Indian Constitutional and National Development, by, Gurumukh Nihal Singh—p. 175.

बढ़ाया। इनमेंसे देवेन्द्रनाथने विशुद्ध भारतीय धर्म वा संस्कृतिको ब्रह्मो-समाजका आधार बनाया; लेकिन केशवचन्द्रने ब्रह्मो-समाजको ईसाई धर्मके आधारपर चलाया।

बंग-देशीय ब्रह्मो समाजकी तरह दक्षिणमें भी धार्मिक सुधारोंके लिये 'प्रार्थना समाज' कायम हुआ जिसके सञ्चालक—जस्टिस रानडे, सर आर. जी. भन्डारकर और सर नारायण चन्द्रावरकर आदि व्यक्ति थे।

किन्तु धार्मिक संस्थाओंमेंसे जिसने भारतको स्वातन्त्र्य प्रेम, राष्ट्रीय प्रेम, तथा राष्ट्रीय धर्म, साहित्य और संस्कृतिका पाठ पढ़ाया—वह 'आर्य समाज' था। आर्य समाजके संस्थापक महर्षि दयानन्द हुए हैं। १८७५ में उन्होंने पहिले बम्बईमें आर्य समाजकी स्थापना की और फिर १८७७ में उसे लाहौरमें स्थापित किया। आर्यसमाजका आधार 'वेद' थे। अतः आर्यसमाज पूरी तरह भारतीय धर्म था। स्वामी दयानन्दका सबसे महान् सन्देश था—"वेदोंकी ओर बढ़ चलो"! इस सन्देशने उत्तरी और पश्चिमी भारतको बहुत प्रभावित किया और काफी बड़ी संख्यामें लोग आर्य समाजके अनुयायी बनने लगे। श्री एंड्रूज और गिरिजा मुकरजी लिखते हैं, "ब्रह्मो समाजके प्रमुख सदस्योंकी भांति दयानन्द अंग्रेजी पढ़े हुए थे, लेकिन उन्होंने प्रचार आदि कार्य हिंदी में ही किया। इससे उत्तरी भारतकी जनताको उन्हें समझनेमें बहुत सरलता हुई, और आर्य-समाजने 'जन आन्दोलन'का रूप ले लिया। उनके अनुगामी उनके धर्मके भारतीय स्वरूपसे बहुत आकर्षित हुये। 'वेदोंकी ओर बढ़ चलो'के मन्त्रने उन लोगोंको अत्यधिक आकृष्ट किया जो उस समय पश्चिमके धार्मिक सिद्धान्तोंको

चुनौती देना चाहते थे।[1]" १८८३ में स्वामी दयानन्दकी मृत्यु होनेपर कर्नल ओकलॉट (Col. Oclott) ने उनको, 'एक महान् देशभक्त', घोषित किया था। वे दयानन्द स्वामीही थे जिन्होंने स्वराजकी घोषणाकर "भारत भारतीयोंका है" की प्रथम पुकार उद्घोषितकी थी।

धार्मिक संस्थाओंमें थियोसोफिकल सोसाइटीने भी भारतके राष्ट्रीयताके आन्दोलनको आगे बढ़ानेमें काफी सहायता पहुंचाई। इस संस्थाने भारतीयोंको उनके प्राचीन गौरवकी महिमा बताकर उन्हें अपने पुरातन धर्म, संस्कृति और सभ्यताको बचाने और बढ़ानेके लिये प्रेरित किया।

धार्मिक सुधारकोंमें श्री रामकृष्ण परमहंस और उनके प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानन्दका भी बहुत बड़ा स्थान है। इन महापुरुषोंने अपने प्रभावसे भारतीयोंको हिन्दुत्वकी तरफ खींचा और प्राचीन आदर्शोंसे उन्हें प्रभावित किया। श्री रामकृष्ण परमहंसने सेवा पर बहुत अधिक जोर दिया। उनकी सेवाका यह कार्य आज भी 'रामकृष्ण सेवा-सङ्घों'के द्वारा भारतके बहुतसे प्रान्तोंमें चल रहा है।

परमहंसके महान् शिष्य स्वामी विवेकानन्दने भारतको 'आध्यात्म'की महिमा समझाकर भारतीयोंको आश्वस्त किया, तथा उन्हें 'आध्यात्म द्वारा संसारको जीतनेका सन्देश दिया'। साथ ही उन्होंने—राष्ट्रीयताके सन्देशका भी भारतीयोंमें प्रबलतासे प्रचार किया।

---

1. The Rise and Growth of the Congress In India by C. F. Andrews & Girija Mukerjis' PP 34-35.

अतः १९ वीं सदीमें भारतमें कई प्रकारसे धार्मिक आन्दोलन चले जिन्होंने भारतको राष्ट्रीय प्रेमका मार्ग दिखलाया, और भारतीयोंको उनके महान अतीतकी महिमा बतलाकर उनमें राष्ट्रीय प्रेम तथा देश-भक्तिकी प्रबल भावनायें पैदा करदीं।

धार्मिक आन्दोलनोंके साथ-साथ अंगरेजी सरकारकी अनीतिपूर्ण नीतिने भी भारतीयोंको राष्ट्रीय ढंग पर संगठित होनेमें खूब मदद पहुंचाई। अंग्रेजी शिक्षाके प्रसारसे इस समय (१९ वीं सदी) भारतमें अंग्रेजी पढ़े लोगोंका एक वर्ग पैदा हो चुका था। लेकिन पूरी तरहसे शिक्षित होनेपर भी इस वर्गने अनुभव किया कि ब्रिटिशराज हर प्रकारसे उनकी उन्नतिके मार्गमें बाधक है। शिक्षित वर्गकी तरह व्यापारी वर्गको भी यही अनुभव हुआ कि सरकारकी आर्थिक नीतिका लक्ष उन्हें न उभरने देनेका है। अतः इस नीतिके फलसे शिक्षित और व्यापारी दोनोंही वर्ग असन्तुष्ट हो चले। साथ ही अंगरेज रंगकी स्पर्धाके कारण काले भारतीयोंको अपनेसे बहुत ही नीचा और अयोग्य समझते थे। अतः इस जातीय अभिमानने हिन्दुस्तानियोंको और भी क्षुब्ध कर डाला, और भारतीय प्रजा और अंगरेज शासकोंके बीच एक गहरी खाईं पैदा हो गई। हमारे लिये अंगरेज नौकरशाहीकी इस दुर्नीति और जातीय अभिमानका परिणाम अच्छा ही हुआ क्योंकि उनके इस जातीय-गौरव और दुर्व्यवहारने हमारे दिलोंमें भी राष्ट्रीयता और जातीयताके भाव प्रबलतासे उगा दिये।

हम कह आये हैं कि अंग्रेजी पढ़ा वर्ग इस समय बढ़ता जा रहा था, किन्तु 'काले' होनेके कारण उच्च सरकारी पदों का मार्ग उनके लिये बन्दसा था। महारानी विक्टारियाके चार्टर

में यद्यपि जातीय समानताका राग अलापा गया था, किन्तु लार्ड लिटनने यह स्पष्ट रूपसे घोषित कर दिया था कि चार्टरके वचनोंकी पूर्ति नहींकी जा सकती। फलतः शिक्षित वर्गका असंतोष बढ़ता ही गया और १८७७—१८७८ में भारतमें इन्डियन सिविल सर्विसके लिये कलकत्तेमें पहिला संगठित आन्दोलन हुआ।[1] यद्यपि यह आन्दोलन सिविल सर्विसके लिये किया गया, किन्तु उसका ध्येय अन्तिमतः हिन्दुस्तानकी जनतामें एकता और संगठनकी भावनाओंको सजग करना था। इस आन्दोलनको प्रेरणा देनेवाली संस्था 'इन्डियन ऐसोसियेशन' थी। यह संस्था श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके द्वारा बंगालमें २६ जुलाई १८७५ में कायमकी गई थी। इस संस्थाका ध्येय था—(१) राजनैतिक प्रश्नोंके लिये शक्तिशाली जनमत एकत्र करना, (२) एक सामान्य राजनैतिक ध्येयके लिये भारतीय जनताको संगठित करना, और (३) हिन्दू मुस्लिम एकताको बढ़ाना। इन ध्येयोंको आगे बढ़ानेके लिये निःसन्देह एसोसियेशनने काफी कार्य किया। इटलीके वीर मैजिनीकी राष्ट्रीयता और देशभक्तिकी भावनाओंसे प्रभावित और प्रेरित होकर इन्डियन एसोसियेशनने भारतकी राष्ट्रीय एकता पर भी खूब जोर दिया और अपने प्रोग्राममें राष्ट्रीय एकीकरणके ध्येयको प्रमुखता दी।[2] यह संस्था कांग्रेसके अभ्युत्थान काल तक बराबर उत्साहके साथ काम करती रही। यह उसीके प्रयत्नोंका फल था कि इन्डियन

---

1. Indian Constitutional and National Development. Gurumukh Nihal Singh p. 179.

2. The Rise and Growth of the Congress, by C. F. Andrews and Girija Mukerji p. 113.

सिविल सर्विसका आन्दोलन चला और योग्य भारतीय भी सिविल सर्विसमें लिये जाने लगे। वैधानिक आन्दोलनकी यह प्रथम विजय थी। सन् १८७८ में इन्डियन एसोसियेशनने दूसरा वैधानिक आन्दोलन उठाया। यह आन्दोलन लार्ड लिटनके १८७८ के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टके विरोधमें हुआ, जिसने भारतीय पत्रोंकी बहुत सारी आजादी छीन ली थी। इस आन्दोलनके फलसे ही लार्ड रिपन (१८८०—८२) के शासनकालमें 'वर्नाक्यूलर ऐक्ट' हटा लिया गया था।

कलकत्ताका उदाहरण—

कलकत्ताके इन्डियन एसोसियेशनसे प्रेरित होकर मद्रास, बम्बई और पूनामें भी राष्ट्रीय-उत्थानके विभिन्न ध्येयोंको लेकर संस्थायें स्थापित हुईं। सन् १८७८ में 'मद्रास महाजन सभा' कायम हुई। सन् १८८५ में तय्यबजी, फिरोजशाह मेहता और के० टी० तेलंगके प्रयत्नोंसे बम्बईमें 'बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन' कायम हुआ। सन् १८७०में पूनामें 'सार्वजनिक सभा' स्थापितकी गई जिसने श्री रानडे और श्री जोशीके अधिनेतृत्व में राष्ट्रीय हितके कई एक काम किये। यह सभा राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाली एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती थी। पत्रिकाके ज्यादातर लेख श्री रानडेके ही लिखे होते थे। श्री जेम्स किलोकके अनुसार इस सभाने पश्चिमी भारतको जागृत करनेमें बहुत बड़ा काम किया और राजनैतिक आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं पर जनमतको तैयार करने और बनानेमें योग दिया।[1]

---

1. Mahadeva Govind Ranade , by Killock p.25,

राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना—

जब कि विभिन्न प्रान्तोंमें इस प्रकार भारतीय समस्याओं को सुलझानेके लिए अलग-अलग सङ्गठन बन रहे थे, उसी समय राष्ट्रीय पत्रिकाओंने इन प्रान्तीय सङ्गठनोंको एक सूत्रमें ग्रथित कर उन्हें एक राष्ट्रीय प्रकारमें ढालने की चर्चा भी शुरू-कर दी थी।

इसी बीच, इलबर्ट बिलकी एक आंखें खोलने वाली घटना भी हो पड़ी। लिटनके बाद लार्ड रिपन (१८८०-१८८३) वाइसराय हुये थे। लार्ड रिपन 'एक उदात्त अंग्रेज थे, उनमें सहजरूपसे न्यायके प्रति प्यार था। अतः वे १८५८ की महारानी विक्टोरिया की घोषणाको कार्यान्वित करते हुए जातीय भेद याने गोरे और काले वर्णका भाव हटाकर भारत और यूरोपके दोनों देशोंकी जनताको समानताके स्तर पर ले आना चाहते थे[1]।' अतः समानताकी भावनाओंसे प्रेरित होकर उनके शासनमें इलबर्ट नामसे एक बिल पास हुआ, जिसके अनुसार भारतीय न्यायाधीशों (Judges)को प्रेसीडेन्सीके नगरोंके अतिरिक्त, देशी जिलोंमें भी अंगरेज नागरिकोंके फैसले करनेका अधिकार दे दिया गया था। इस बिलके पास होनेपर अंगरेजोंने बहुतही हो हल्ला मचाना शुरू किया। अंगरेज अपनेको शासक वर्गका समझते थे,इसलिये 'काले' मजिस्ट्रेटके सामने खड़ा होनेमें उन्होंने अप्रतिष्ठाका सवाल उठाया। अंगरेज नौकरशाही भी तिलमिला उठी। अंगरेजोंने प्रतिष्ठा के साथ यह भी जाहिर किया कि यदि 'गोरे'का न्याय करनेका अधिकार 'काले'को दे दिया गया तो ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव

---

1. Indian National, Congress—1909–p. 952.

हिल जायगी[1]। अंग्रेज और यूरोपियनोंका यह जातीय अभिमान और अहङ्कार था। यूरोपियनोंने इलबर्ट बिलके विरुद्ध जगह-जगह विरोध-प्रदर्शनके लिये डिफेन्स एसोसियेशन कायम करने शुरू किये और अपने संगठनोंको चलानेके लिये चन्दे भी इकट्ठे किये। सफेद जातिके विशेषाधिकारोंको सुरक्षित रखनेके लिये इस प्रकार खूब जोरोंसे आन्दोलन चला।' डिफेन्स एसोसियेशनने' इंगलैंड और भारत दोनों जगह इलबर्ट बिलका ऐसा विरोध किया कि अन्तमें लार्ड रिपनकी भारतीय सरकारको उसे वापिस ले लेना पड़ा। इस घटना और यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनके संगठनका परिणाम अन्तमें हमारे राष्ट्रीयजागरणके लिये अच्छाही साबित हुआ। गोरी जातिके इन व्यवहारोंको देखकर राष्ट्रकी आंखें खुलीं। अब तक प्रान्तोंमें ही भारतीय अपना सङ्गठन करने पर लगे थे; किन्तु अब यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनने उन्हें चेता दिया कि यदि उन्हें अंगरेजी सरकारसे टक्कर लेना है तो एक राष्ट्रीय सङ्गठन कायम किया जाना चाहिये। फलतः सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने १८८३ में यूरोपियन डिफेन्स ऐसोसियेशनके मुकाबलेमें राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय फन्ड (कोष) चलानेके निमित्त एक राष्ट्रीय कान्फ्रेंस बुलाई।

इसी समय (यानी १८८३) एक उदात्त अंगरेज एलान आक्टेवियन ह्यूमने भी भारतके राष्ट्रीय सङ्गठनको बनाने और प्रेरित करनेमें बड़ी मदद पहुंचाई। श्री ह्यूम पहिले एक उच्च सरकारी पद पर रह चुके थे। १८८२ में सरकारी नौकरीसे इतीफा देकर वे शिमलामें बस गये थे। वे एक बड़े दूरदर्शी

1. Renascent India by H. C. E. Zacharias p. 109-110·

राजनीतिज्ञ थे। ब्रिटिश राजकी दुर्नीति और नौकरशाहीके जातीय अभिमानका परिणाम उन्हें स्पष्ट दिखलाई दे रहा था। वे देख और समझ चुके थे कि यदि भारतकी वर्तमान असंतोषकी सुलगती हुई आन्तरिक आगको शान्त न किया गया तो देश भरमें फिर १८५७ की भांति ही जगह-जगह क्रान्तिके विस्फोट भड़क उठेंगे। ह्यूमको खुफिया विभागकी कई रिपोर्टोंसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि कृषकवर्गमें असंतोष बढ़ता जा रहा है, और मुल्क में षड्यंत्रकारी गुप्त संगठन पैदा हो रहे हैं। ह्यूम इस स्थितिको रोकना चाहते थे। उन्होंने अंगरेज नौकरशाहीको इस स्थितिकी भयंकरता समझानी चाही, लेकिन १८५७ की सफलतासे ब्रिटिश नौकरशाही निश्चिन्त हुई बैठी थी, इसलिये उन्होंने ह्यूमके कथन पर कोई ध्यान न दिया।

अतः ह्यूमने अब अपना रुख बदला और हिन्दुस्तानी नेताओंसे संबंध जोड़ा। उन्होंने एक खुले पत्रमें कलकत्ता विश्व-विद्यालयके ग्रेजुएटोंको ललकारते हुये कहा—'मेरे जैसे विदेशी भारतवर्ष और उसके बच्चोंको प्यार कर सकते हैं, किन्तु उनमें राष्ट्रीयताकी प्रेरणा नहीं भर सकते, इसलिये वास्तविक रूपसे मुल्कके लिये उसीके निवासियोंको कार्य करना चाहिये!' ह्यूमने इस प्रकार कलकत्ताके ग्रेजुएटोंको भारतके 'बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक पुनरुत्थानके हेतु' एक संगठन कायम करनेकी प्रेरणा दी।[1]

---

1. Alllan Octavian Hume, C. B, Father of the Indian National Congress, by Sir W. Weederburn, London, 1913, p. 52.

ह्यूमकी इस प्रेरणा और बनर्जीके राष्ट्रीय संगठन और राष्ट्रीय कोष स्थापनाकी चेष्टाके परिणामसे आखिर १८८५ में राष्ट्रीय संगठनके हित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनाकी गई। हमारी आजकी राष्ट्रीय कांग्रेसका यही स्रोत है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनाके सम्बन्धमें ह्यूमने तत्कालीन वाइसराय श्री डफरिनसे भी मंत्रणाकी थी और वाइसरायने इस बातको स्वीकार भी किया था कि "यह अच्छा होगा यदि मुल्कमें कोई ऐसा संगठन हो जिसके द्वारा सरकार मुल्कके जनमतसे परिचित रह सके।"[1] इस प्रकार ह्यूमने भारतीय सरकारका भी राष्ट्रीय कांग्रेसके निर्माणमें सहयोग प्राप्त कर लिया था। परिणामतः भारतीय सरकारने नवजात कांग्रेसके आरम्भिक विकासमें किसी प्रकारकी रुकावट न पैदाकी, वरन् बम्बईमें जब कांग्रेसका प्रथम बार अधिवेशन हुआ तो बहुतसे सरकारी अफसरोंने भी उसमें हिस्सा लिया था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पहिली सभाका होना पहिले (२२ से ३० दिसम्बर १८८५) पूनामें निश्चित हुआ था, किन्तु पूनामें यकायक हैजाका प्रकोप फैलनेसे सभाका स्थान बादमें बम्बईमें रखा गया। कांग्रेसकी इस पहिली सभामें हिन्दुस्तानके तमाम हिस्सेसे लगभग ७२ प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे। उस समयसे आज तक कांग्रेसकी बैठक हर साल किसी मुख्य नगर या गांवमें होती ही रहती है।

कांग्रेसकी पहली सभाके सभापति रमेशचन्द्र बनर्जी चुने गये थे। सभापतिके पदसे दिये भाषणमें उस समय बनर्जीने कांग्रेसके ध्येय और लक्ष्य इस प्रकार प्रकट किये थे—(१) मुल्कके

---

1. Wedderburn p. 60.

तमाम कार्यकर्त्ताओंमें आपसी मेल जोल बढ़ाना; (२) राष्ट्रीय एकताको बढ़ाना; (३) जनमतको सङ्घठित करना; तथा (४) इस बातके लिये प्रयत्न करना जिससे "भारतीयों को अपने मुल्कके शासनमें यथोचित स्थान प्राप्त हो सके आदि।"

प्राथमिक कांग्रेसके ये ही विनम्र ध्येय थे। किन्तु इन विनम्र ध्येयोंके होते हुये भी ब्रिटिश सरकार जल्दी ही कांग्रेसके आंतरिक राजनैतिक भावोंको समझ कर उसके मार्गमें अड़चनें पैदा करने लगी। लार्ड डफरिन, जिसने स्वयं कांग्रेसकी स्थापनामें सलाह दी थी वही अब कांग्रेसके बढ़ते हुये प्रचारको देखकर उसे "राजद्रोही और अल्प वर्गीय सभा कहने लगा।" फलतः १८८८ से जब इलाहाबादमें कांग्रेस अधिवेशन हुआ, सरकार हर प्रकारकी रुकावटें कांग्रेसके मार्गमें डालती चली गई।

किन्तु इन रुकावटोंके बावजूद ह्यूम कांग्रेसके कार्यको आगे बढ़ाते गये। भारतीय कांग्रेसके ध्येयको प्रचारित करने के लिये ह्यूमने १८८८ में इंगलैंडमें एक एजेंसी स्थापितकी जिसके पहिले मंत्री श्री डब्लू-डिगबी हुए। यह एजेंसी १८८९ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी एक कमेटीके रूपमें बदल दी गई। इस कमेटीके प्रचारके परिणामसे ही श्री ब्राडलाफ (Bradlaugh) ने १८८९ में बम्बईकी कांग्रेसमें भाग लिया था। इस वक्त की कांग्रेसने भारतमें प्रतिनिधित्वपूर्ण शासनकी शुरुआतके लिए एक स्कीम रखी थी, जिसे ब्राडलाफने पार्लियामेन्टमें एक बिल द्वारा पेश करनेका बचन दे दिया था। तदनुसार ब्राडलाफने १८८९ में एक बिल पेश भी किया। ब्राडलाफके बिलको पेश हुआ देखकर गवर्नमेंटने अपनी सर्व-प्रियता खो जानेके

इसने स्वयं भी एक बिल पार्लियामेंटमें पेश कराया, जो ब्राडलाफके बिलसे बहुत घट कर था। दुर्भाग्यवश १८९९ में ब्राडलाफकी मृत्यु हो गई, और गवर्नमेंटके बिलको पास होनेमें कोई दिक्कत न पड़ी। फलतः गवर्नमेंटका बिल १८९२ में शाही आज्ञासे १८९२ का इण्डिया कौंसिल ऐक्टके नामसे पास हो गया।

१८९२ के इण्डिया कौंसिल ऐक्टके अनुसार, जो कि कांग्रेस के आन्दोलनका ही फल था—पहिले पहल 'चुनाव'का सिद्धांत व्यवहारमें आया और कौंसिलके सदस्योंको 'वोट' देनेके अलावा वार्षिक-बजट पर विवाद करनेका हक भी दे दिया गया।

किन्तु कांग्रेस इस ऐक्टसे ही संतुष्ट होकर नहीं बैठ गई। कांग्रेस तो शासनमें "भारतका पूरा प्रतिनिधित्व, और कौंसिलके सदस्योंकी सीमित शक्तियोंका प्रसार चाहती थी," और यह १८९३ के कांग्रेसके अधिवेशनमें दादा भाई नौरोजीने स्पष्ट घोषित भी कर दिया था। दादा भाई नौरोजीने पहिले पहल 'स्वराज' को भारतका ध्येय भी घोषित किया। इस ध्येयकी प्राप्तिके लिये इन कांग्रेस नेताओंने—वैधानिक-आन्दोलन, और भारतीयोंका ब्रिटिश प्रजातन्त्रवादियोंके साथ मिलकर कार्य करना—ये दो मार्ग बतलाये।

कांग्रेसने इस प्रकार अपने इतिहासके पहिले बीस वर्षोंमें अपना सुचारू रूपसे संगठन किया और राष्ट्रमें एकता कायम कर दी। फलतः ब्रिटिश राजके मुकाबलेमें खड़ा होनेके लिये उन्हें अब अपनेपर भरोसा होने लगा और ब्रिटिश प्रजातंत्रवादियोंके सहयोगकी भी उन्हें कोई विशेष जरूरत न रह गई। निःसन्देह कांग्रेस दृढ़तासे बढ़ती चली जा रही थी।

किन्तु कांग्रेसके विकासके बनिस्पत उससे भी तीव्र गति से राष्ट्रीयता, और विदेशी हुकूमतसे स्वतंत्र होनेकी भावनाओंने विकास किया। भारतमें अब वैधानिक आन्दोलनके प्रति असंतोषकी आवाजें प्रकम्पित होने लगीं। युवक समाज भारतके वैधानिक आन्दोलनकी धीमी गतिसे ऊकता सा उठा। वे सोचने लगे कि वैधानिक आन्दोलनके अलावा क्या कोई ऐसा क्रांतिकारी मार्ग नहीं हो सकता जिसके अनुसरणसे अधिकारों की प्राप्ति तत्वरता और तेजी से हो सके। क्या अंगरेजी सरकारसे किसी दूसरे मार्गसे भी काम लिया जा सकता है? क्या अंगरेजी शक्ति वाकई लोहेकी दीवार है जिससे टक्कर लेना केवल अपना सिर फोड़ना है? वस्तुतः अंगरेजी-शक्तिको अजेय और अपार समझनेका कारण दुर्दमनीय गुलामी और गोरे राज की कठोर निरंकुशता थी। अंगरेजोंने निःसन्देह भारतीयोंको इस बुरी तरहसे दबा रखा था कि हिन्दुस्तानी अपने दिलोंमें अपने आपको गोरे अंगरेजोंसे अकथनीय रूपसे तुच्छ समझने लगे थे। अंगरेजोंके कठोर आधिपत्य तथा १८५७ के विद्रोहका जिस भीषणतासे अंगरेजी सरकारने भारतीयोंसे बदला लिया था, उससे हिन्दुस्तानी ब्रिटिश-राजसे अभी तक अपरिमित रूपसे संत्रस्त हुए बैठे थे। ब्रिटिश सरकारने आर्मस्-ऐक्ट द्वारा भारतीयोंको निःशस्त्र भी कर रखा था। इससे भी वे अत्यन्त भीरु और कायर बन गये थे। अतः ऐसी अवस्थामें हिन्दुस्तानियोंको ब्रिटिश राजकी मुखालफत करने की हिम्मत हो भी कैसे सकती थी? भारतही नहीं एक प्रकारसे पूरा एशिया ही तब गोरे प्रभुत्वको असमान्य और अजेय मान बैठा था। किन्तु इसी बीच १८९४ में एक ऐसी घटना हुई जिसने काली

जातिकी आंखें खोल दीं। १८९४ में अबीसीनियाके काले एशियाई राज्यने अडोआके युद्धमें यूरोपके गोरे इटालियन आक्रमणकारियोंको बुरी तरहसे परास्त कर उन्हें अपने मुल्कमें घुसनेसे रोक दिया। इस घटनाको देखकर नवजागृत भारत भी सोचने लगा कि यदि अबीसीनियाकी काली जाति गोरे इटालियनोंको ढकेल सकती है, तो क्या हिन्दुस्तानके काले गोरे अंगरेजोंको नहीं निकाल बाहर कर सकते ? उन्हें अब कांग्रेस की नरम और वैधानिक रीति वा नीति निष्फलसी जंचने लगी। वे सोचने लगे कि इस नीति पर चलनेसे राष्ट्रको १० वर्षोंमें बड़े प्रयत्नोंके बाद आखिर एक मामूली कौंसिल ऐक्टके सिवा और क्या मिल सका ? अतः नवीन-भारतने क्रान्तिके मार्गपर अग्रसर होनेका निश्चय किया। इस आग्नेय—मार्गकी ओर बढ़ने वाले प्रान्तोंमें महाराष्ट्र और बंगाल सबसे आगे रहे।

महाराष्ट्रमें इस समय बाल गंगाधर तिलकके नेतृत्वमें राष्ट्रीयताके विचार बड़ी तेजीके साथ फैल रहे थे। तिलक एक महान् देश भक्त थे, जिनका महाराष्ट्रकी जनतापर अत्यधिक प्रभाव था। जन-मान्य होनेके कारण उन्हें देशने 'लोक मान्य' की उपाधि भी प्रदानकी थी। सारे भारतमें तिलक, लोकमान्य और चितपावनके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त कर गये थे। तिलक देशभक्त होनेके साथ ही एक महान् पंडित और ऊँचे कक्षके राजनितिज्ञ भी थे। जनतापर उनका पूरा-पूरा प्रभाव था; अतः इस दृष्टिसे "वे ही भारतके पहिले राजनैतिक नेता थे, जिनकी आवाजकी पहुँच जनता तक थी।" निःसन्देह तिलकसे पूर्ववर्त्ति नेताओंमें से कोई ऐसा न हुआ था जिसकी आवाज़ पढ़े-लिखे समाजके बाहर

जन साधारणतक पहुंच सकी हो। इस जन-नेता और प्रचण्ड राजनीतिज्ञने बड़ी भीषणताके साथ अंगरेज-शाहीके विरुद्ध प्रचार शुरू किया। और देशमें जागृतिकी एक व्यापक लहर पैदा कर दी!

अपने युगके वे सचमुच 'गांधी' थे, अन्तर केवल यही था कि गांधीजीकी तरह वे शांत और मृदुल न थे, और हिंसक क्रांतिमें विश्वास रखते थे। इसलिये यदि तिलकको 'तीक्ष्ण गांधी' कहा जाय तो अनुचित वा अनुपयुक्त न होगा। विशेषतया तिलकके प्रचारसे महाराष्ट्रमें राष्ट्रियताने खूब जोर पकड़ा। महाराष्ट्रके युवक ब्रिटिश-शासनके लौह-पंजेसे अपने को छुड़ानेके लिये तड़फड़ा उठे। अंगरेजोंके प्रति उनके हृदयों में कोपकी भीषण ज्वाला दहकने लगी। इसी समय १८९७ में पूनामें प्लेग फैला और उसे दबानेके लिये अंगरेजी सरकारने वहाँकी ब्रिटिस रेजीमेन्टको आज्ञा दी। लेकिन बीमारीको दबानेके बजाय ये नृशन्स और आततायी सैनिक वहाँकी जनताकोही दबाने और रौंधने लगे। उनके इस दुर्व्यवहारका नव-चेतनासे पूर्ण भारतका युवक-हृदय कैसे सह सकता था? अतः वहाँके भारतीयोंने प्रतिहिंसासे उत्तेजित होकर पूनाके कलक्टर और ब्रिटिश-रेजीमेंटके एक लेफ्टिनेन्टकी हत्या कर डाली।

भारतीयोंके इस दुस्साहससे भारत सरकारका हृदय काँप उठा। उन्हें प्रतीत होने लगा कि भारतीय अन्दरही अन्दर सशस्त्र क्रांतिकी मंत्रणा कर रहे हैं। वे सोचने लगे कि १८५७ की क्रांति के नेता नाना साहब-'चितपावन' थे, और तिलक भी 'चितपावन' कहलाते हैं, इसलिये हो न हो तिलकके इशारेपर ही (यद्यपि इसके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न था) ये राजनैतिक

हत्यायें हुई हैं। फलतः संत्रस्त और भयभीत सरकार द्वारा तिलक पकड़ लिये गये और उन्हें १८ महीनेकी सख्त सजा दे दी गई। किन्तु हिंसासे हिंसा क्या कभी दब सकी है? तिलक को सजा देकर ब्रिटिश-सरकारने उन्हें और क्रांतिको दबा डालना चाहा था, किन्तु इससे क्रांतिकी ज्वाला और भी तीव्रतर हो उठी और तिलक बन्द होनेसे वस्तुतः जनताके और भी निकटस्थ चले आये। जनताकी दृष्टिमें तिलक राजनैतिक शहीदोंमें अग्रगामी साबित हुए। क्रांतिकी लहर दबनेके बजाय बंगालमें भी फूट निकली।

लार्ड कर्जन और बंग-भंग आन्दोलन—

सन् १८९८ से १९०५ तक भारतका शासन सूत्र लार्ड कर्जन के हाथमें रहा। कर्जन एक पक्का साम्राज्यवादी व्यक्ति था। अब तकके अंगरेज वाइसरायोंमेंसे कर्जनही वह व्यक्ति है जिसे "ब्रिटिश औरंगजेब" कह सकते हैं। औरंगजेबकी भाँति उसका शासन भी अनियंत्रित, दकियानूसी और आतंक पूर्ण रहा। पर उसकी दुर्दमनीय नीतिने भारतीय असन्तोषकी ज्वालाको भड़का कर, ब्रिटिश राजकी नींवको हिलानेमें ही अधिक काम किया। अपने मनमें शायद वह यही सोचता रहा होगा कि गुलाम भारतीयों को दबाना कोई कठिन कार्य नहीं है; क्योंकि भारतीय गुलामोंमें भला कौनसी ताकत है जिससे वे उसके शासनकी बुराइयोंका प्रतिरोध कर सकते हैं? कर्जनकी ये धारणायें उसके कई एक अनैतिक कार्यों और जनमतकी पूर्ण उपेक्षा करने की नीतिसे प्रत्यक्ष हैं।

कर्जनने पहला आघात 'भारतीय शिक्षा' पर किया था। १९०४ में उसने एक ऐसा ऐक्ट पास कराया जिसके परिणामसे

भारतीय विश्व-विद्यालय व शिक्षा-संबन्धी संस्थाएं शिक्षा-प्रसार और प्रचार के केन्द्र होनेके विपरीत 'नौकरी-पूजकों' या 'पद-आखेटकों' के निर्माणके केन्द्र बन गये। उसका ध्येयही यह था कि भारतमें ऐसी शिक्षाका प्रसरण बिलकुल रुक जाय जिससे राजनैतिक जागृतिके पैदा होनेका भय हो[1]।

इससे भी भीषण कार्य कर्जनका १९१२ का 'दर्बार' था। उस समय जबकि जनता एक ओर भूखों मर रही थी, कर्जनने जनताके सारे विरोधोंकी अवहेलना कर लाखों रुपया दरबारके 'तमाशे' और आतिशबाजी फूँकने तथा उत्सव मनानेमें बहा दिये[2]। कर्जनके इन कृत्योंसे भारतीयोंके दिलपर पूरी तरह अंकित हो गया कि ब्रिटिश शासनका लक्ष्य और ध्येय एकमात्र 'आर्थिक शोषण' और 'प्राचीन हिन्द' का मान-मर्दन करना है[3]।'

अतः उसके इन कार्योंसे भारतकी मनोदशा बिगड़ चली और लोगों के दिल अंग्रेजी शासनसे क्षुब्ध हो उठे। ऐसी स्थिति में कर्जनने 'बंग-भंग' की घोषणा कर हिन्दुस्तानी हृदय और मस्तकपर एक और वज्र-प्रहार किया। यह घटना उसी समयकी है, जब एशियाकी एक छोटीसी शक्ति जापानने, यूरोप के दानव-स्वरूप रूसको तुसिमाकी लड़ाईमें हराकर गोरी जातियोंको कँपा दिया था। एशियाई जापानकी इस विजयने अन्तरीप से लेकर हिमालय तक भारतकी धमनियोंमें भी एक नूतन बल

---

1. Renascent india, Zacharias, p. 13
2. Congress, 1903, Ghose, pp. 745, ff.
3. Economic History of British india, by Ramesh Chandara Dutt.

और रक्तका संचार कर दिया ! जापान की विजयने भारतके क्षुब्ध और संत्रस्त हृदयमें यह आशा और विश्वास पैदा कर दिया कि एशियाई और कृष्ण-वर्णके होने पर भी गोरी अंगरेज जातिका यदि शक्ति हो तो अवश्य मुकाबला किया जा सकता है। पं० जवाहरलालके शब्दोंमें "जापानकी विजय एशियाको ऊपर उठाने वाली थी। इस विजयने भारतीयोंके मनसे अंगरेजोंसे अपनेको छोटा समझनेकी भावना बहुत घटा दी.....। परिणामतः राष्ट्रीय भावनायें बंगाल तथा महाराष्ट्रमें तेजीसे फैल उठीं[1]।"

इस प्रकार जापानी विजयसे प्रभावित होकर, भारतीय जनताका हृदयभी अंगरेजी दुर्नीतिका सामना करनेके लिये बल पकड़ गया। अतः जब बंगालपर अपनी कूट-नीतिका चाकू चला कर कर्जनने बंग-भंग करनेकी तजवीज रखी तो सारा बंगाल उसके विरोधमें कांप उठा। बंग-भंगके द्वारा कूटनीतिज्ञ कर्जन बंगाली जातिकी एकताको भंग करना चाहता था। उसकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि पूर्वीय बंगाल और आसामको हिन्दू और मुस्लिम दो प्रान्तोंमें बांटकर उनमें प्रतिद्वन्दता उत्पन्न करदी जाय। लेकिन उसके इन घातक ध्येयोंको बंगालही नहीं सारा भारत एक दम ताड़ गया। फलतः समस्त भारतमें बङ्ग-भङ्गके प्रति विरोधकी जोरदार पुकार गूँज उठी। सारे बङ्गालमें बङ्ग-भङ्गके विरोधमें करीब ५०० सभायेंकी गईं। किन्तु कर्जनकी निरंकुश सरकारने आंखें मूंद लीं और कान बहरे कर दिये। बङ्गाली जनताने तब एक जबर्दस्त अर्जी ६०,००० व्यक्तियोंके दस्तखतोंके साथ पार्लियामेन्टको भेजी। लेकिन उसका भी कोई

---

1. Glimpses of the world History, 44 p.

फल न निकला। आखिर १९०५ में हिन्दुस्तानने यकायक २० जुलाईके सरकारी गजटमें पढ़ा कि सरकारने बङ्ग-भङ्ग स्वीकार कर लिया है, और जनताकी आवाज पूरी तौरपर ठुकरा दी गई है।

कर्जनने जिस धृष्टताके साथ जनताकी अवहेलनाकी, उससे बंग-भंगके जन-आन्दोलनकी गति-विधि और भी तीव्र और उग्रतर हो चली। पहलेके आन्दोलनोंमें केवल सभा करके प्रस्ताव ही पास किये जाते थे, किन्तु बंग-भंगने आन्दोलनका वह रूप ही बदल डाला। कलकत्तेमें चीनके उदाहरणको लेकर ७ अगस्त १९०५को एक आम सभा हुई जिसमें यह तै हुआ कि जब तक बंग-भंग रद्द न कर दिया गया, जनता अंगरेजी मालको न खरीदेगी। अंगरेजी मालके बाईकाट और स्वदेशीको अपनानेका यह नारा देशको प्रथम बार इसी समय दिया गया था। बंग-भंगके आन्दोलनने निःसन्देह भारतमें एक नूतन चेतनता और जागृति की धारा प्रवाहित कर दी।

कर्जनकी सरकारकी ज्यादतियोंसे खीजकर बंगालके बाई-काटके निश्चयको १९०५ की कांग्रेसने भी स्वीकार किया। लाज-पत रायने मालवीयजीके बाईकाटके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुये देशको नया सन्देश देते हुए कहा "भारतको अब भिखारी-पनसे ही सन्तुष्ट नहीं रहना है....। यदि उन्हें वास्तवमें अपने मुल्क की चिन्ता है, तो स्वतन्त्रताके लिये उन्हें अब स्वयं संघर्ष करना होगा।" अतः कांग्रेसकी नरम नीतिको लोग अब नीची निगाहोंसे देखने लगे और तिलक जैसे तीक्ष्ण राजनीतिज्ञकी चाहना करने लगे। लेकिन कांग्रेसने अपने वैधानिक प्रयत्नोंको जारी रक्खा और गोखलेको भारतकी तरफसे बंग-भंगको उठा लेनेकी माँग करने के लिए इङ्गलैंड भेजा। किंतु भारतमंत्री श्री मोरलेने गोखलेको पत्थर-सा कठोर जवाब देते हुए कहा—"बंग-भंग एक निश्चित

फैसला है, और उसे मेटा नहीं जा सकता।" इसी समय गोखलेने भारतके लिये स्वायत्त शासनकी भी माँग रखी थी, और उत्तरमें मोरलेने बिगड़ कर कांग्रेस प्रतिनिधि गोखलेकी भर्त्सना करते हुए कहा था, "इस (स्वायत्त शासन) की माँग करना, चंद्रमाके लिये चिल्लाना है[1]।"

मोरलेके इन व्यवहारोंसे भारतीय जनताको अब यह समझनेमें कुछ बाकी न रही कि भारतका हित कांग्रेसकी भिखमंगी और नर्म नीतिसे नहीं हो सकता। और भारत अंगरेजोंके विरुद्ध अपने पैरों पर खड़े होकर ही कुछ कर सकता है।

कांग्रेस ऐक्यका टूटना १९०७—

भारतने अपना कल्याण अब उत्साह और क्रांतिसे परिपूर्ण बंगालके क्रांति पुरुष अरविंद घोष और महाराष्ट्रके महापुरुष तिलकके नये क्रान्तिकारी मार्गके अनुकरणमें अनुभव किया। फलतः सन् १९०७ में सूरतकी कांग्रेसमें दो विभाग हो चले—नर्म और गर्म अथवा शांत और उग्र! उग्र दलकी नई पार्टीमें बंगाल और महाराष्ट्रके उग्रवादी या क्रांतिकारी शामिल थे। इस नई पार्टी या दलके प्रधान नेता तिलक तथा विपिन चन्द्रपाल और अरविंद घोष थे। तिलक अपने अनुयायियोंको निर्भीक बननेका मंत्र दिया करते थे। वे जनताकी ही शक्ति द्वारा ब्रिटिश राजको जनताके सामने झुकनेके लिये विवश कराना चाहते थे। और उन्हें अपने इस ध्येय पर भरोसा भी था।

नर्म दल अथवा पुरानी कांग्रेसमें इस समय पुराने नर्म दली नेता श्री मालवीय, दिनेश वाचा, फिरोजशाह मेहता,

1. Renascent India, p. 145.

सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और लाजपतराय थे। और इनका नेतृत्व करने वाले सुविख्यात नर्म दली गोपाल कृष्ण गोखले थे।

कांग्रेसपर आधिपत्य तब नर्मदलका ही था, इसलिये तिलकके गर्मदली कांग्रेससे बाहर कर दिये गये। किन्तु नर्म-दल अपनी झुकावकी नीतिसे सार्वजनिक प्रियता खो बैठी और जनताने तिलकही का स्वागत किया। फलतः कुछ समयके लिये कांग्रेस शिथिल होकर पृष्ठ-भूमिमें पड़ गई।

कांग्रेसके इस प्रकार टूट जानेसे ब्रिटिश सरकार खुश थी। कांग्रेसमें भेद पड़नेसे निःसन्देह 'स्वराज्य-संग्राम' की शक्तियाँ बिखर गई थीं। सरकारने अवसर देख अब दु-धारी तलवारसे काम लिया; नर्म-दल वालों को शीतल करनेके लिए उनके सामने टुकड़े फेंके गये, और गर्म-दलियोंको ठंढा करनेके लिये बन्दूक साधी गयी।

इधर बगालमें निरंकुश वाइसरायके कारनामोंसे जो असन्तोष पैदा हुआ उसने अब बम्ब-बाजी और 'हत्याओं' का रूप ले लिया था[1]। ये घटनायें सूरतमें कांग्रेसके भङ्ग होनेके कुछ ही समय बाद से शुरू हो गई थीं। अतः ब्रिटिश सरकारने गरम दल वालोंको दबानेका यह अच्छा अवसर समझा। श्री तिलक, विपिन चन्द्र पाल और अरविन्द घोष तुरन्त पकड़ लिये गये। तिलक को ६ मासकी सजा हुई और उन्हें माण्डले भेज दिया गया। विपिन चन्द्र पालको भी ६ महीने की सजा हुई, लेकिन घोषको एक सालके बाद बरी कर दिया गया। इसी समय

1. International Poltics, by. Frederiek L. Schuman. p. 396.

मुस्लिम गरम दली नेता हसरत मोहानीको भी एक सालकी सजा हुई थी। इन नेताओंके पकड़े जानेसे जनतामें भयकी जगह असंतोष और भड़क उठा। फलतः १९०९ में वाइसराय मिण्टो पर बम डाला गया और नासिकमें कलक्टरकी हत्या करदी गई।

इन उपद्रवोंसे डर कर ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानको शांत करनेके लिये कुछ 'सुधार' देनेका निश्चय किया। किन्तु ये सुधार किसी सच्ची नीयतसे नहीं दिये जा रहे थे। बंग-भङ्गके समयसे नये पूर्वीय बंगाल और आसामके मुस्लिम प्रान्तका गवर्नर बराबर हिन्दू और मुसलमानों में भेद पैदा करता जाता था और खुले शब्दोंमें हिन्दुओंका विरोध करते हुए मुसलमानोंको "सरकारके प्रिय पात्र" घोषित कर उन्हें हिन्दुओंसे अलग होनेके लिए प्रेरित करता रहता था। इसीसे १९०६ में जब मिण्टोने सुधारकी योज़ना बनाई तो मुसलमानोंने आगा खाँ के नेतृत्वमें एक डिपुटेशन भेजकर सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व' (communal representaticn) की मांग पेशकी। सरकार हिन्दू-मुस्लिम भेद तो चाहती ही थी, अतः मिण्टोने सहर्ष इस मांगके पक्षमें अपनी 'हाँ' जाहिरकी, जिसका घातक परिणाम आज तक भारत उठा रहा है। सरकारकी भेद-नीति निःसन्देह विजयी हुई, और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य टूट चला। मुसलमान अब कांग्रेसको राष्ट्रीय के बजाय हिन्दू संस्था कहने लगे। फलतः १९०६ में आगाखाँ ने मोहसिन उलमुल्ककी प्रेरणा पर मुस्लिम अधिकारोंकी रक्षा और अपने खोये हुए बादशाही जमानेके वैभव को पुनः प्राप्त करनेके उद्देश्यसे हिन्दू कांग्रेसके विरोधमें मुसलमानोंकी 'मुस्लिम लीग' नामसे एक अलग संस्था कायम कर डाली।

१९०९ में आखिर भारतीय असंतोषकी ज्वालाको रोकनेके लिये गवर्नमेन्टने कुछ सुधार दिए जो मिण्टो-मोरले सुधारके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सुधारोंके अनुसार भारतीयोंको वाइसरायकी कौंसिल तथा प्रान्तीय शासकोंकी कौंसिलोंमें जगह दी गई, और व्यवस्थापक सभाओंको प्रसारित किया गया। इनके अलावा मुस्लिम लीगकी मांगपर भयानक साम्प्रदायिक जातीय प्रतिनिधित्व भी सुधारमें भारतको मिला। इस जातीय प्रतिनिधित्वको स्वीकार कर सरकारने निश्चय ही प्रजातन्त्र विरोधी सिद्धान्तको स्वीकार किया था। सभाओंका रूप सुधारोंके बाद भी अप्रजातन्त्रात्मक ही रहा, क्योंकि उन्हें शासनमें कोई अधिकार दिया गया था, और उनकी शक्ति केवल 'विवेचना और आलोचना' तकही सीमित रखी गई थी। शासनकी पूरी शक्ति वैसे सरकारने अपने हाथोंमें ही थामके रखी। अतः प्रधानके शब्दोंमें मिण्टो-मोरले सुधारोंसे भारतीय जनताको लेशमात्र भी शासन में जिम्मेदारी प्राप्त न हो सकी थी।

किन्तु इन सुधारोंसे कांग्रेसका नर्म-दल खुश हो उठा। इन सुधारोंका विरोध करनेके बजाय उन्होंने उनका स्वागत किया! केवल गर्म-दलही सुधारोंका विरोध कर सकता था, लेकिन उसके नेता तब सींकचोंमें बन्द थे, और नेतृत्व-विहीन अनुयायि कुछ करनेमें असमर्थ थे। परिणामतः भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन शिथिल पड़ गया। केवल बंगालमें बङ्ग-भङ्गका आन्दोलन चलता रहा और सौभाग्यसे अन्ततः सफल होकर ही शांत हुआ। १९११ में जार्ज पंचमको वाध्य होकर अपने मुखसे घोषणा करनी पड़ी थी कि बंग-भंगको खतम कर उसे पुनः एक कर दिया जायगा। इस के साथ-साथ जार्जने राजधानीको कलकत्तासे हटाकर

दिल्ली लेजाने की घोषणा भी की थी। इस समय हार्डिञ्ज यहाँ पर वाइसराय थे।

१९११ का साल हमारे राष्ट्रीय इतिहासका एक सौभाग्यशाली साल था। बंग-भंगका आन्दोलन इसी साल सफल हुआ था, और इसी साल हिन्दू तथा मुसलमानोंने मिलकर स्वराज प्राप्तिके लिये आपसी ऐक्ट कायम करनेकी गरजसे एक कान्फ्रेंस भी बुलाई थी। इस कान्फ्रेंसमें वेडरबर्न (Wehderburn), बनर्जी (Banejiee), मालवीय, रहीमतुल्ला, हसनइमाम, जिन्ना और अली भाइयोंने भाग लिया था। मुहम्मद अली लीगके गर्मदली (Leftwing) नेता थे। इस दलने ही मुस्लिम लीगको जातीयता और राज-भक्तिके अंधकूपसे बाहर आनेको प्रेरित किया था। फलतः १९१३ में अपने बाम पक्षसे प्रभावित होकर लीगने आगे के लिये अपना ध्येय "दूसरी जातियोंसे मिलकर भारतके लिये स्वायत्त-शासन की प्राप्ति" स्वीकार किया। कांग्रेसने खुश होकर लीगके इस प्रस्ताव और निर्णय का बहुत सरगर्मी एवं उत्साहसे स्वागत किया था।

इस घटनाके परिणामसे आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिमों में एक-पैक्ट भी कायम हुआ जो लखनऊ पैक्टके नामसे प्रसिद्ध है।

इसी बीच दुर्भाग्य से कांग्रेसके दो बड़े नेता गोखले और फिरोजशाह मेहता स्वर्ग सिधार गये। अतः कांग्रेस उनके नेतृत्वसे बंचित होकर कुछ समयके लिये शिथिल सी पड़ गई। यह मौका हमारे राष्ट्रके इतिहासमें बड़ा नाजुक था। और मुल्ककी राजनैतिक हाल डांवाडोल थी।

अतः १९१४ में जब यूरोपमें पहिला महायुद्ध छिड़ा भारत बड़ी ही कठिन अवस्थामें था।

महायुद्ध और भारत—

१९०७ में हमारे देशमें गर्म-दली आन्दोलनने काफी जोर पकड़ा था, किन्तु १९११ में बंग-भंगके रद किये जानेपर यह आन्दोलन स्वयं शान्त हो गया था। रहा नर्म-दल। वह १९०९ में मिण्टो-मोरले सुधारसे खुश हो उठा था। और रही सही विरोधी शक्तियां तिलक आदि के जेलमें होनेसे बिलकुल दब गई थीं। फलतः १९१४ में यूरोपीय युद्धके छिड़ने पर भारतके राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतन्त्रताके संघर्षकी लहरें शक्तिहीन हो रही थीं।

इस शक्तिहीनताको खतम करनेके लिये नर्म और गर्म दलोंके पारस्परिक मत-भेद तथा हिन्दू-मुस्लिम अनैक्यका दूर किया जाना बहुत जरूरी था। सौभाग्यसे इस बार गर्म और नर्म दलोंको जोड़नेमें श्रीमती ऐनी बेसेन्टने प्रशंसनीय कार्य किया। श्री बेसेन्टने सन् १९१३ में इसी उद्देश्य को लेकर भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था। इसी समय सन् १९१४ में तिलक भी मांडलेसे सजा काट कर लौट आये थे।

बेसेन्ट और तिलकने अब साथ मिलकर १९१५ में 'होमरूल लीग' स्थापित की और जोरोंसे उसका प्रचार भी आरम्भ कर दिया। इन नेताओंने पहले कांग्रेस पर ही इस नये आन्दोलनको उठानेका जोर दिया, किन्तु जब ९ महीनेकी अवधिके बाद भी कांग्रेसने होमरूल लीगके सन्बन्धमें कोई जवाब न दिया तो श्री बेसेन्टने पृथक होकर होमरुल लीग की अलगसे स्थापना कर डाली। यह होमरूल लीग मद्रास प्रान्तमें बड़े जोरोंसे फैली। इसी समय महाराष्ट्रमें जोजेफ बैपटिस्टा और तिलकके प्रयत्नोंसे महाराष्ट्र-होमरूल लीग भी स्थापित हुई और

थोड़े ही समयके भीतर सारे बम्बई प्रान्तमें उसका प्रभाव छा गया। इस प्रकार गर्म दल वालोंकी कांग्रेसके विरूद्ध अपनी एक अलग निजी संस्था ही कायम हो गई।

श्री बेसेन्टके प्रयत्नोंसे १९१६ की कांग्रेसमें सब प्रकारके राजनैतिक विचार रखने वालोंको अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार भी प्राप्त हुआ। श्री विपिन चन्द्र पालके कथनानुसार १९१६ की कांग्रेसने श्री बेसेन्टके नये जागृत राजनैतिक नेतृत्व को स्वीकार किया।[१] इस कांग्रेसने तिलक, जिन्हें १९०७ में कांग्रेससे निकाल दिया गया था, का भी बड़े जोरोंसे स्वागत किया। तिलकने इस कांग्रेसमें 'स्वायत्त शासन' की मांगका प्रमुख प्रस्ताव पेश किया था।

इसी समय लखनऊमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी बैठक भी हुई और उन्होंने भी तिलककी तरह 'स्वायत्त शासन' की मांग का प्रस्ताव पास किया।

लखनऊमें, हिन्दू मुसलमानोंके बीच इस समय आपसी अनैक्यको दूर करनेका सौदा भी कर लिया गया। इस सौदेके अनुसार मुसलमानोंने 'स्वराज' के ध्येयको स्वीकार किया और हिन्दुओंने 'साम्प्रदायिक निर्वाचन' (communal Electorates) की मांग स्वीकार की। हिन्दू-मुस्लिमके बीच का यह जातीय सौदा या सन्धि 'लखनऊ पैक्ट' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसी समय महायुद्धके छिड़नेपर लार्ड हार्डिञ्जकी सरकारने भारतको संसारके राष्ट्रोंमें बराबरी और समानताका पद दिलाने

1. Mrs. Besant; a psychological Study. Madras,1917, p. 201.

का वायदा देकर भारतीयोंको यूरोपीय युद्धमें सहायता देनेके लिये फुसलाया और बहकाया। भारतके लोगोंने इस वायदेका विश्वास किया और हर प्रकारसे इंगलैंडकी मदद करनेको तैयार होगये। भारतको सचमुच यह आशा हो चली थी कि उसे इसबार अवश्य ही ऊँचे दर्जेके राजनैतिक सुधार प्राप्त होंगे। किन्तु युद्ध चलता गया और अन्त तक सुधार होते न दिखलाई दिये। फलतः भारतके राजनैतिक दल फिरसे अशान्त होने लगे[1]।

भारतकी नौकरशाही, भारतीय आकांक्षाके प्रति उदासीन थी। अतः उनका अनियंत्रित शासन भारतके असन्तोषको बढ़ाताही चला गया। सन् १९१४ में टर्कीसे युद्ध छिड़ने और कुत (अप्रैल २९, १९१५) के शत्रुओंके हाथमें पड़ने पर, इंगलैंडको भी इस नौकरशाहीकी अनियंत्रितता और अयोग्यताका पता लग गया। टर्की के युद्धका पूरा संचालन भारतीय सरकारके जिम्मे था। किन्तु जिस प्रकार युद्धका संचालन किया गया उससे भारतकी नौकरशाहीकी अयोग्यता पूरी तरहसे साबित हो गई। भारतीय नौकरशाहीकी इस अयोग्यताका प्रमुख कारण १९१७ में पार्लियामेन्ट्री मेसोपोटामिया कमीशनकी रिपोर्टमें भारतीय नौकरशाहीका जन-मतका विरोधी होना बतलाया गया, और इस बात पर जोर दिया गया कि "भारतीयोंको नागरिकताके पूरे अधिकारोंके साथ अपने मुल्कके शासनमें हाथ बंटाने और नौकरशाहीको नियन्त्रण में रखनेके लिये भरपूर अधिकार दिये जाने चाहियें"[2]।

इस रिपोर्टके फलसे १९१७ में सर आस्टिन चेम्बरलेन

---

1. Renascent India, p, 189.
2. Ibid; p 122.

भारत-मंत्रीके पदसे हटा दिये गये और उनकी जगह मांटेग्यू भारत-मंत्री बनाये गये।

मंत्री पदपर आकर मांटेग्यूने २० अगस्त सन् १९१७ को पार्लियामेन्टमें भारतके प्रति सरकारकी नई नीतिकी घोषणा करते हुये प्रकट किया कि सरकारकी इच्छा भारतको 'जिम्मेदार शासन' देनेकी है, और इसके लिये इंगलैंड कोई प्रयत्न बाकी न रखेगा। इस घोषणाको सुनकर भारतको फिर उम्मीद बंधी और सुलगता हुआ असंतोष शांत पड़ गया।

'जिम्मेदार शासन' की योजना सफल बनानेके लिये कुछ सुधारोंको देनेका निर्णय कर मांटेग्यू स्वयं भारत आये और नवम्बर सन् १९१७ से १९१८ की मई तक यहाँका दौरा करते रहे। यहाँ आने पर नये सेक्रेटरीको मालूम हुआ कि वाइस-राय चेम्सफोर्डसे लेकर निम्न अंगरेज पदाधिकारी तक एक भी अंगरेज ऐसा नहीं जो भारत को किसी प्रकारके सुधार देनेके पक्षमें हो।

मांटेग्यूके आनेके कुछ समय पहिले होमरूल लीगके नेतृ श्री बेसेन्ट भी जेलसे रिहा कर दी गई थीं। अतः १९१७ की कलकत्ता कांग्रेसकी वे ही सभानेत्री चुनी गई थीं। बेसेन्ट और तिलकने अवसर देखकर यहाँ आये हुये भारतमंत्री मांटेग्यूको कांग्रेसमें आनेके लिये निमन्त्रण दिया। मांटेग्यू बहुत तत्परतासे कांग्रेसमें शामिल होनेके लिये तैयार थे, किन्तु नौकरशाहीने उन्हें ऐसा न करने दिया[1]। आखिर बेसेन्टने मांटेग्यूसे सुधारोंके बारेमें स्वयं मिलकर कांग्रेसकी ओर से स्पष्टतया यह जतला दिया कि सुधारोंकी कोई योजना तभी मान्य होगी

1. An Indian Diary, p. 122.

जब भारतको 'होमरूल' और 'आर्थिक' अधिकार देना स्वीकार किया जायगा! मांटेग्यूने 'होमरूल' के ध्येयको तो स्वीकार कर लिया, किन्तु आर्थिक अधिकार देने को तैयार नहीं हुए। कांग्रेसका गर्म दल इससे असन्तुष्ट हो उठा, लेकिन नर्म-दल मांटेग्यूकी सुधार योजनाको ठीक समझते हुये १९१७ की कलकत्ता कांग्रेससे अलग हो गया। फलतः १९१७ में कांग्रेस पर, गर्म-दल या बामपक्षका जिससे ९ वर्ष पहिले वे निकाल दिये गये थे, नर्मदलसे बिना किसी संघर्षके पूरा अधिकार हो गया। इस प्रकार १९१७ का साल कांग्रेसमें बामपक्षकी विजयके साथ खतम हुआ।

इसी बीच मांटेग्यूने भी अपनी रिपोर्ट पूरी की और चेम्सफोर्ड तथा अपने दस्तख़तोंके साथ उसे लेकर इंगलैंड चला गया। जुलाई १९१८ में यह मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-रिपोर्ट पार्लियामेंट में पेश की गई। रिपोर्ट में निम्न सुधारोंको दिये जानेकी सिफारिश की गई थी—

(१) स्थानीय सभाओं (local bodies) पर जनताका अधिकार रहे; (२) प्रान्तीय सभाओंमें जिम्मेदारी बरती जाय; (३) केन्द्रीय सरकारपर असर डालनेके लिये साधन बढ़ाये जांय; (४) भारतीय सरकारपरसे पार्लियामेंट और भारत-मंत्रीका अधिकार हल्का कर दिया जाय आदि।

इस रिपोर्टके प्रकाशित होते ही कांग्रेसके तत्कालीन नेताओं— बेसेन्ट और तिलकने उसका विरोध किया। तिलकने मुल्क को कांग्रेस और लीगकी बनाई 'स्वराज' योजनापर टिके रहनेका निर्देश दिया। इसपर विचार करनेके लिए बम्बईमें तुरन्त कांग्रेसका विशेष अधिवेशन बुलानेका निश्चय भी कर लिया गया।

किन्तु दूसरी तरफ नर्म-दल वाले मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोट द्वारा घोषित सुधार के प्रस्तावोंके इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे। अतः उन लोगोंने बम्बईमें बुलाये गये कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें भाग न लिया, वरन् बम्बईमें कांग्रेसके विरुद्ध अपनी अलगसे एक कान्फ्रेन्स बुलाई और इंडियन 'लिबरल फेडरेशन' नामसे एक नया संगठन कायम कर दिया।

फलतः १९१८ में कांग्रेसका राजनैतिक ऐक्य पुनः खतम हो चला! नर्मदल, जो महायुद्धके पूर्व कांग्रेसमें एक शक्तिशाली दल था, युद्ध-कालमें कमजोर पड़ चुका था। इसलिये युद्धके अनन्तर जब उन्होंने अलगसे अपनी 'लिबरल फेडरेशन' नामसे एक नयी संस्था कायमकी तो नर्मदल अल्पमतमें हो गया।

कांग्रेसकी जब ऐसी स्थिति थी और मत-भेदोंमें पड़कर भारतीय राजनैतिक दल एक दूसरेसे विलग होते जा रहे थे, महात्मा गांधीने भारतके राजनैतिक मंचमें प्रवेश किया। उनके प्रवेशने कांग्रेसमें एक नई स्फूर्ति, नया जीवन और नई चेतना पैदा कर दी। संक्षेपमें गांधीजीके कुशल और नूतन नेतृत्वने कांग्रेस-में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया—और राष्ट्रकी बिखरती हुई शक्तियाँ तथा टूटते हुए दल उनके शुभ प्रयत्नसे पुनः देशकी एक मात्र 'महासभा' कांग्रेसमें आकर मिल गये। परिणामतः गांधीके नेतृत्वको पाकर कांग्रेस भारतकी पूर्णतया एकमात्र राष्ट्रीय और राजनैतिक संस्था बन गई। अतः यह कहना उचित और मान्य होगा कि कांग्रेसके इस परिवतन, परिवर्द्धन और क्रांतिकारी विकासका इतिवृत्तिही महात्मा गांधीके जीवनका इति-हास है, जिसको आगे आने वाले अध्याय और स्पष्ट कर सकेंगे।

महात्मा गांधी का प्रारम्भिक जीवन

अध्याय ३

जन्म—

महात्मा गांधीका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी है। उनका जन्म आश्विन वदी १२ संवत् १९२५ अर्थात् २ अक्तूबर १८६९ ईसवीको पोरबन्दर अथवा सुदामापुरीमें हुआ था। उनके पिताका नाम कबा गांधी था। कबा गांधीकी चार पत्नियाँ थीं। अन्तिम पत्नी पुतली बाईसे उनके एक कन्या और तीन पुत्र हुये—जिनमें सबसे छोटे हमारे महात्मा गांधी थे।

पिता-माता—

गांधी परिवार यद्यपि मूलतः काठियावाड़के पुरातन पंसारी या बनिया जातमें से है, किन्तु पुश्तोंसे यह गांधी परिवार राज-नैतिक कार्यही करता रहा। महात्मा गांधीके दादा और पिता वर्षों तक पोरबन्दरके यहाँ दीवानपद पर रहे। उनके पिता लगभग २५ वर्षों तक पोरबन्दरके राणाके दीवान थे। पोर-बन्दरके अलावा राजकोट और काठियावाड़की अन्य रियासतोंमें भी कबागांधी या कर्मचन्द्र गांधीने दीवानगिरी की थी। कबा-गांधी अपनी न्याय-प्रियताके लिये बड़े प्रसिद्ध थे। दीवान होने पर भी उनमें बड़प्पनका उन्माद न था। राज्यके वे बड़े वफादार थे। एक बार पोलिटिकल एजेन्टके द्वारा राजकोटके महाराजका

राजकोट की पाठशाला में

[सन् १८७७] [पृष्ठ ६९]

अपमान किये जानेपर वे रोषसे तिलमिला उठे थे। स्वामीके अपमानको न सह सकनेसे उन्होंने खुलकर पोलिटिकल एजेन्ट का विरोध तक किया जिसके लिये उन्हें कुछ घंटे हवालातमें भी रहना पड़ा था। एजेन्ट उनसे उनकी धृष्टताके लिये माफी मँगवाना चाहता था। किन्तु कबागांधी सर झुकानेवालोंमें न थे। आखिर लाचार होकर ब्रिटिश एजेन्टको ही झुकना पड़ा और कबागांधी हवालातसे मुक्तकर दिये गये।[1] अन्याय और असत्यके सामने सर न झुकानेकी यह प्रवृत्ति उनके सबसे कनिष्ठ पुत्र-मोहनदास कर्मचन्द्र गांधीमें खूब खिली।

महात्मा गांधीकी माता बहुतही सती और साध्वी स्त्री थीं। वे पक्की हिन्दू नारी और धर्म कर्ममें रत रहने वाली थीं। वे बहुधा कठिन व्रत और उपवास किया करती थीं। धार्मिक होनेके साथ वे पूर्णतया व्यवहार कुशल भी थीं। राज दरबार की सभी बातें वे जानती थीं। वे अपने पत्नी और मातृपदके कर्त्तव्योंको वहुत निष्ठाके साथ किया करती थीं। वे हमेशा इस ओर प्रयत्नशील रहतीं कि उनके लड़के लड़की सत्चरित्र और नेक हों। निःसन्देह माताकी यह कामना पूरी होकर रही। उनके कनिष्ठ पुत्र मोहनदास कर्मचन्द गांधीके दिलपर उनकी साधुता, स्वच्छता और धार्मिकताकी ऐसी छाप पड़ी, जिसने कालान्तरमें उनके इस कनिष्ठ लड़केको 'महात्मा'के पदको पहुंचा दिया।

शिक्षा—

मोहनदास गांधीका बचपन पोरबन्दरमें ही बीता। शिक्षा के

१ आत्मकथा, अनु. हरिभाऊ उपाध्याय, भाग १, अध्याय १, पृष्ठ ४।

लिये पहिले उन्हें पोरबन्दरके एक पाठशालामें भर्ती किया गया। किन्तु कुछही समय बाद पिताके राजकोट चले आने पर वे भी राजकोट चले आये और वहाँकी एक पाठशालामें भर्तीकर दिये गये। मोहनदास गांधी तब ७ वर्षके थे। कुछ वर्ष पाठशालामें रहनेके उपरान्त उन्हें १२ वर्षकी अवस्थामें हाईस्कूलमें रख दिया गया। किन्तु उनका स्कूलका जीवन विशेष प्रतिभाशाली न रहा! वे उस समय इतने झेंपू थे कि स्कूलके दूसरे लड़कोंसे संकोचवश मिलना तक पसन्द न करते थे। लेकिन उनके चरित्रमें जो सत्यानुराग आज सबको विमोहित और स्तम्भित किये हुए है, तबभी मौजूद था! दूसरे लड़कोंकी नकल करके अपनी गलती सुधारना या दूसरेके कन्धेको पकड़कर ऊपर उठना वे कभी पसन्द न कर सके।

बालक मोहनदासके सत्यानुरागको बढ़ानेमें हरिश्चन्द्र नाटक ने बहुत काम किया। इस नाटकको देखनेपर बालक मोहनदास इतने प्रभावित हुए कि उन्हें रातदिन हरिश्चन्द्रके ही सपने आने लगे। वे सोचा करते "हरिश्चन्द्रकी तरह सत्यवादी सब क्यों न हों?" उनकी सत्यपर अब दृढ़निष्ठा और भक्ति हो चली और यह धारणा पक्की हो गई कि 'हरिश्चन्द्रके जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्यका पालन करना ही सच्चा सत्य है।' तब से मोहनदास अपने आचरणका बहुत विचार रखने लगे। यदि उनके आचरणमें, सदाचारमें कभी कोई त्रुटि रह जाती या कोई भूल हो पड़ती तो वे रो तक पड़ते थे!

विवाह और इंगलैंड यात्रा—

मोहनदासने मुश्किलसे १२ वर्ष पार किये थे और अभी हाई-

राजकोट के हाईस्कूल में

[सन् १८८३]

[पृष्ठ ७०]

स्कूलमें ही पढ़ रहे थे कि माता-पिताने उनका विवाह भी कर दिया। विवाह होनेके बाद सन् १८८७ में उन्होंने मैट्रिक भी पास कर लिया। मैट्रिक पास करलेने पर मोहनदासको बैरिस्टरी पढ़नेके खातिर इंगलैंड भेजनेकी तजबीज हुई। उनके इंगलैंड प्रवास में माताने अड़ंगा दिया। किन्तु आखिर जैन साधु बेचरजी स्वामीकी सलाहसे बालक मोहनदाससे तीन बातों—मांस, मदिरा और स्त्री-संगसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा लेकर माँ ने उन्हें विलायत जानेकी इजाजत दे दी! मोहनदासने माँ को दिये इन तीन बचनों का, लन्दनके भोग और विलासके उन्मत्त वातावरणमें रहते हुए भी पूरी निष्ठाके साथ पालन किया। लन्दन युनीवर्सिटीकी मैट्रिक परीक्षा पास करलेने पर मोहनदासने 'इनर टेम्पल' में कानूनकी पढ़ाई शुरूकी, और १० जून १८९१ में वहाँ की पढ़ाई सफलतापूर्वक समाप्तकर बैरिष्टर हो गये। ११ तारीखको उन्होंने इंगलैंडके हाईकोर्टमें ढाई-शिलिंग देकर अपना नामभी रजिस्टर करा लिया, लेकिन वहाँ ठहरे नहीं और १२ तारीखको ही हिन्दुस्तानके लिये रवाना होगये!

लन्दनमें कानूनका अध्ययन करनेसे मोहनदासको कोई आन्तरिक संतोष न मिल सका। लेकिन वहाँ रहते समय उन्होंने अपने तथा विदेशियोंके धर्म ग्रन्थोंका जो अध्ययनकर पाया उसने उनके जीवनके प्रवाहकी दिशाही निश्चित कर डाली।

इंगलैंडमें थियोसोफिस्ट मित्रोंकी प्रेरणासे ही गांधीजीने प्रथमबार 'गीता' को पढ़ा। इससे पूर्व गांधीजीके दिलमें पादरी लोगोंके प्रचारसे यह विचार घर किये हुए था कि हिन्दू धर्म केवल अन्धविश्वासोंका एक गढ़ है, लेकिन गीताके अनुशीलन

ने उनकी इस धारणाको मानों टूक-टूक कर डाला। गीता के उद्बोधन से गांधी अपने धर्मके प्रति जागरूक हो उठे। इसी समय उन्हें ऐडविन ऐरनार्ड द्वारा अनूदित बुद्धचरित और 'न्यू टेस्टामेन्ट' को भी पढ़नेका अवसर मिला। इन तीनोंका गांधीजी पर बड़ा गहरा असर पड़ा। गीता, बुद्ध और ईसाके बचनोंने उन्हें निष्काम कर्म और त्यागकी भावनाओंसे उद्बुद्ध कर डाला। गांधीको प्रतीत हो गया और उनके दिलमें यह बात बिलकुल समा गई कि 'त्याग में ही धर्म है'। यही कारण है कि उनके आगेके जीवनमें हमें सर्वत्र यही त्याग और कर्म की निर्मल और उज्वल धारा अविरल और अबाध गतिसे बहती हुई दिखलाई देती है।

लन्दन में—कानून के छात्र

[सन् १८९०]   [पृष्ठ ७२]

अफ्रीकामें

अध्याय ४

भारत आगमन—

विलायतसे १८९१ की जुलाईमें मोहनदास गांधी बम्बई पहुंचे ! भारत पहुंचते ही उन्हें अपनी माताके निधनका दुःखद समाचार मिला ! इस कुसमाचारसे उनके कोमल हृदयको बहुत व्याघात सा लगा !

इस दुःखके शान्त होने पर गांधीजी ने जीवनके क्षेत्रमें प्रवेश करनेके लिए बम्बई और काठियावाड़के हाईकोर्टोंमें वकालतका काम करना तय किया ! किन्तु इस पेशेसे वे कोई विशेष आमदनी नहीं कर सके। झूठका वे सहारा नहीं लेना चाहते थे और बिना झूठके वकालत जोरोंसे चल नहीं सकती थी ! फलतः व्यावहारिक रूपसे कुछ समय तक वे अपनी वकालतके धन्धेमें सफल न हो सके !

इसी बीच भाग्यवशात् गांधीजीको दक्षिण अफ्रीका जानेका निमंत्रण मिला। काम था, दक्षिण अफ्रीकामें व्यापार करनेवाले एक काठियावाड़ी मुसलमान व्यापारीके मुकदमें की पैरवी करना ! गांधीजीने इस निमंत्रणको सहसा स्वीकार किया, क्योंकि उस समय उनकी स्व-इच्छा भी नई दुनिया देखने और नये अनुभव करनेकी हो रही थी ! माताजीके स्वर्गवास होनेसे

भी उनका मन उचटा हुआ था और इसलिये वे जैसे-तैसे हिन्दुस्तानको छोड़ना चाह ही रहे थे। फलतः मुकद्मेका काम लेकर १८९३ में गांधी पहली बार अफ्रीका पहुंचे।

नया अनुभव—

अफ्रीका जाते समय गांधीजीकी इच्छा मुकद्मेके समयसे अधिक वहाँ रहनेकी न थी। किन्तु अफ्रीका पहुंचने पर भारतीयोंकी वहां जो दुर्दशा उन्हें देखनेको मिली, उसने उन्हें अनिश्चित काल तक वहाँ रहने और उन कठिनाइयोंमें हिस्सा बँटानेके लिए बाध्य कर दिया ! नैटालमें उन्होंने अनुभव किया कि वहाँके गोरे उन्हें एक अछूतके जैसा समझते हैं ! गोरोंके प्रत्येक बर्ताव उन्हें विस्मयकारी मालूम दिये ! डरबनकी अदालतमें प्रवेश करने पर वहाँके मजिस्ट्रेटने जब धृष्टता पूर्वक गांधीजीको पगड़ी उतारनेको कहा, तो वे अभिमानसे काँप उठे और अदालत छोड़कर बाहर निकल आये ! उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि भारतीयों और भारतीय आचार-विचारोंके गोरे क्यों इतने विरोधी हैं ! अतः मजिस्ट्रेटके अनैतिक व्यवहारका उन्होंने अखबारोंमें भी विरोध किया !

इस प्रकार गोरोंके विरोधमें खड़े होनेवाले गांधी पहले भारतीय थे। उनके इस साहस ने तीन ही चार दिनमें दक्षिण अफ्रीकामें उनकी ख्याति फैला दी ! इसी समय एक और ऐसी घटना हो पड़ी जिसने गांधीजीके आन्तरिक विप्लवको उभाड़कर आध्यात्मिक विरोधका मार्ग इंगित किया ! गांधी डरबनसे प्रिटोरिया जा रहे थे। रेलका सफर था और वे पहले दर्जेमें बैठे हुए थे। लेकिन मेरित्सबर्ग पहुंचने पर रेलवे कर्मचारियों

ने उन्हें पहले दर्जेसे निकल जानेको कहा क्योंकि वे भारतके निवासी और काले थे! पर सरल और विद्वेषहीन गांधी समझ न सके कि पहले दर्जेका टिकट होते हुए किस तरह उनके बैठने पर आक्षेप किया जा रहा है? उन्हें इसमें सरासर अनीति मालूम दी! अतः उन्होंने इस अनीतिके सामने झुकना अस्वीकार कर उतरनेसे इनकार कर दिया, किन्तु रेलवेके अफसरने सिपाहियोंकी मददसे उन्हें बाहर निकालकर ही चैन लिया।

इसी तरह ट्रांसवाल पहुंचने पर जब गांधीजीने घोड़ा-गाड़ी की यात्रा शुरू की तो वहाँ भी उन्हें हिन्दुस्तानी होनेके कारण अपमान सहना पड़ा। उन्हें कुली समझकर गाड़ीमें पहले तो हांकनेवालेके पास जगह दी गई, और बादमें जब गाड़ी पार्डीकोप पहुंची तो एक गोरे अधिकारीने गांधीजीको उस जगहसे भी हटकर अपने पैरोंके पास बैठनेको कहा। अपमानकी यह हद थी। गांधी इस भारी अपमानको न सह सके और उन्होंने अपनी जगह छोड़नेसे कतई इनकार कर दिया। अभिमानी गोरा किसी भारतीयकी अवज्ञाको कैसे सह सकता था। अतः उसने लातों और हाथोंसे गांधीजीको पीटना शुरू कर दिया, और यदि गाड़ी के दूसरे मुसाफिर बीच-बचाव न करते तो गोरा उस दिन गांधीजीको गाड़ीसे गिराकर ही चैन लेता।

इस प्रकार रंग-द्वेषके फलसे मार्गमें अनेक कष्ट उठानेके बाद गांधीजी प्रिटोरिया पहुंचे। गोरोंके इन आघातों और अनीतियों से उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। उन्हें प्रत्यक्ष हो गया कि गोरे रंग-द्वेषके कारण भारतियोंको दक्षिण अफ्रीकामें कैसे-कैसे कष्ट

उठाने पड़ते हैं। तो क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं हो सकता? यह विचार आते ही गांधीने निश्चय कर लिया कि चाहे जो भी कष्ट और दुःख सहने पड़ें, वे अवश्य इन अन्यायों और अनीतियोंका विरोध करेंगे।

प्रिटेरियामें—

प्रिटोरियामें पहुंचने पर गांधीजीको और नये अनुभव हुए। सरल-गांधी उस समय गोरी जातियोंके रंग-द्वेषसे बिलकुल अपरिचित थे। इसलिये अफ्रीकामें रंग-द्वेषके अपमान-जनक अनुभवोंने प्रारम्भमें उन्हें इतना परेशान किया कि यदि भारतीयोंके साथ उनका सम्बन्ध न हो गया होता और काले-वर्ण वालोंके प्रति होने वाले इन अन्यायोंका विरोध करनेकी उनमें भावना जागृत न हुई होती तो वे फौरन ही अफ्रीकासे उल्टे पांव घर लौट आते।

परन्तु जिन भावनाओंने उन्हें लौटनेसे रोका, उन्होंने उनमें आत्म-संयम और विनम्रता भी पैदा कर दी। गोरोंके होटलोंमें स्थान न मिलनेसे अब उन्हें कोई खेद न था। उनका आत्म-संयम इतना बढ़ गया था कि गोरे संतरी द्वारा फुटपाथ पर पीटे और लातों से ठुकराये जानेपर भी उनमें प्रतिहिंसाका भाव न पैदा हुआ। यह घटना प्रेसीडेन्ट क्रूगरके मकानके पास ही हुई थी। गांधीके एक यूरोपियन मित्रने उन्हें उस दुष्ट संतरीपर मुकदमा चलानेको सलाह भी दी थी, पर अहिंसाकी प्रतिमूर्ति गांधीने 'प्रतिहिंसा' से काम लेना स्वीकार न किया। अपनी जातिपर होनेवाले इन

अपमानोंको सहना वे सीख चुके थे। वे समझ गये थे कि यह अनीति जाति मूलक है, इसलिये समष्टि रूपसे ही उसका विरोध किया जा सकता है। उन्हें अब हरदम यही चिन्ता सताने लगी कि गोरोंके रंग-द्वेषसे भारतीय मान और प्रतिष्ठाकी कैसे रक्षा की जाय, और कौनसा उपाय काममें लाया जाय, जिससे भारतीयोंकी हीनावस्थाको बदला-जा सके।[१]

धर्मोंका अध्ययन—

प्रिटोरियामें रहते गांधीजीको विभिन्न धर्मोंके अध्ययनका भी मौका मिला। उन्हें मालूम हो गया कि प्रत्येक धर्ममें कुछ-न-कुछ अच्छा जरूर है। उनके इस अनुभवने उन्हें प्रत्येक धर्मके प्रति श्रद्धालु बना दिया। यही कारण है कि हिन्दूधर्मके परमभक्त और अनुयायी होते हुए भी वे दूसरे धर्मोंके प्रति समादर-भाव रखते हैं। राम और कृष्णकी तरह ईसा और मुहम्मद भी उनके लिये समान श्रद्धा और आदरके पात्र हैं।

उनकी इस सम-दृष्टिने ही गांधीको विश्व-बन्धुत्वकी भी प्रेरणा दी है। टॉलस्टायकी 'गोस्पल इन ब्रीफ' और 'ह्वाट टु डू' पुस्तकोंके अध्ययन ने उनकी विश्व-बन्धुत्वकी भावनाको और भी प्रज्वलित किया। फलतः वे उत्तरोत्तर विश्व-प्रेमके पुजारी बनते चले गये। विश्व-प्रेम और आत्म-निरीक्षणके भावोंने उनके आगत जीवनका मार्ग भी निर्दिष्ट कर डाला। आत्म-निरीक्षण द्वारा गांधीको यह मालूम हुआ कि सही और सच्चा धम तथा ईश्वरकी पूजा या उपासना प्राणिमात्रकी सेवामें सन्नि-

१ आत्मकथा, भा. २. पृ, १४५–१४६

हित है। फलतः उन्होंने जीव-मात्रकी सेवा को अपने जीवनका एकमात्र लक्ष और ध्येय निर्धारित कर लिया। इस सेवा-धर्मके द्वारा गांधी आत्म-दर्शन करने एवं ईश्वरको प्राप्त करने का विश्वास भी रखते थे।[1]

भारतीय सम्पर्क और मंडलकी स्थापना—

सेवा–धर्मके बोधित्वको प्राप्त कर गांधीजीको अब कुछ सोचने–विचारनेको न रह गया! उनका जीवन पीड़ितों के उद्धारके लिये है यह वे तयकर ही चुके थे! वे यह भी कटु अनुभव कर चुके थे कि गोरे–वर्णोंके लोग अपने रंग-द्वेष और हुकूमतके मोहमें फंसकर अफ्रीकामें रहने वाले भारतीयोंके साथ किस प्रकार जघन्यता और अनीतिका व्यवहार कर रहे हैं। भारतके अलावा एशियाकी अन्य काली जातियोंके प्रति भी गांधीजीने यूरोपियनोंको इसी प्रकार दुर्व्यवहार करते पाया! वे इस अनीतिसे उत्तेजित हो उठे और उसका मुकाबला करनेकी सोचने लगे! किन्तु गांधीजी एक प्राकृत द्रष्टा और वास्तविकताको समझकर चलनेवाले सुधारक हैं! अतः उन्होंने निश्चय किया कि यदि मानवता परसे गोरे अभिशापको दूर करना है तो उन्हें पहिले यह कार्य भारतवासियोंसे प्रारम्भ करना चाहिये, क्योंकि भारतीय होनेके नाते भारतकी सेवा उन्हें सहज प्राप्त थी और उसमें उनकी रुचि भी थी![2]

---

१ आत्म कथा, भा. २. पृष्ठ १७१.

२—वही भा. २. पृष्ठ १७५.

महापुरुष जो कहते हैं उसे करके भी दिखलाते हैं ! गांधीजी उन्हीं महापुरुषोंमें हैं ! अतः जबसे उन्होंने भारतवासियोंकी सेवा करनेका निश्चय किया, वे तन-मन-धनसे उस ओर प्रवृत्त हो गये ! उन्होंने प्रिटोरियामें भारतीयोंसे गाढ़ा सम्बन्ध स्थापित किया और उनके सहयोगसे एक भारतीय मंडल स्थापित करने की योजना बनाई । इस मंडलमें बिना किसी भेद-भावके हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सभी धर्मों और वर्णोंके भारतीय शामिल हो सकते थे ! मंडलको स्थापित करानेमें गांधीजी का ध्येय यह था कि सब भारतीय एक सूत्रमें बँध जांय और संयुक्त रूपसे अधिकारियोंसे मिलकर, या प्रार्थना-पत्र आदि भेजकर अपने कष्टों और दुःखोंका इलाज किया करें ! फलतः गांधीजीके प्रेरणासे मंडल स्थापित हो गया और बहुत कुछ नियमित रूपसे उसका कार्य भी होने लगा ! मंडलके स्थापित होनेसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंको परस्पर मिलने और विचार विनिमय करनेका एक साधन भी प्राप्त हो गया । अपने ध्येयके अनुसार मंडलने अधिकारियोंके पास प्रार्थना पत्र ले जाकर अपने कष्टोंकी फरियाद करना भी शुरू कर दिया । गांधी इस मार्गके अगुवा और पथप्रदर्शक हुए । उन्होंने सरकारी अफसरोंसे मिलकर गोरे कानूनोंकी अनीति और ज्यादतियोंको उनके सामने रखा । इस दिशामें गांधीजीका पहिला कार्य भारतीयों को रेल-यात्रामें सुविधा दिलाना था । उन्होंने रेलवे अधिकारियों से लिखा-पढ़ी की और उन्हें दिखाया कि उन्हींके कायदोंके अनुसार हिन्दुस्तानियोंकी यात्रामें रोक-टोक नहीं हो सकती । इस लिखा-पढ़ीके परिणामसे आखिर गोरे अधिकारियोंने यह मंजूर

किया कि साफ-सुथरे और अच्छे कपड़े पहनने वाले भारतवासियोंको ऊपर दर्जेके टिकट दिये जायेंगे।

इस प्रकार गांधीजीके हृदयमें अत्याचारों और अनीतियों का विरोध करने वाली जिन प्रवृत्तियोंका प्रथमतः प्रिटोरियामें उदय हुआ, वे आगे भी उत्तरोत्तर विकास करती चली गईं! प्रिटोरियामें गांधीजीको भारतवासियोंकी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थितिका प्रथमतः गहरा अध्ययन करनेका अवसर भी मिला जो आगे चलकर उनके बहुतही कामका साबित हुआ।

डरबन लौटना और वापिस आनेकी तैयारी—

प्रिटोरियामें अपना कार्य पूरा करके १८९३ के अन्तमें गांधीजी घर लौटनेके इरादेसे डरबन चले आये। किन्तु ईश्वर ने कुछ और ही सोचा था। डरबन आने पर उन्हें मालूम हुआ कि वहाँकी सरकार जल्दी ही 'इन्डियन-फ्रेंचाइज' नामका एक बिल पास करने जा रही है, जिसके अनुसार नेटालकी धारा-सभाके सदस्योंको चुननेका जो अधिकार हिन्दुस्तानियोंका था छीन लिया जायगा। गांधीजीको यह समझते देर न लगी कि यह बिल भारतीयोंके स्वाभिमान और अस्तित्वको मेट देनेके लिये ही बनाया जा रहा है। उनका हृदय इस अनीतिको देखकर विद्रोहसे तड़प उठा और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे भारतीयोंको संगठित कर इस अनीति पूर्ण बिलका पूरी शक्तिके साथ विरोध करेंगे! अतः इस विद्रोहका नेतृत्व करनेके इरादेसे गांधीजीने कुछ समयके लिये अपना घर लौटना स्थगित कर

दिया। अतः आत्म-सम्मानकी रक्षा और न्यायके लिए सक्रिय संघर्ष करनेका यहींसे गांधीजीके जीवनमें सूत्रपात होता है, और उनका यह संघर्ष आज तक जारी है और तब तक जारी ही रहेगा जब तक संसारसे अनीति और अत्याचार चाहे राजनैतिक, धार्मिक या सामाजिक, दूर नहीं हो जाते। इन अनीतियोंको वे पाप और असत्य तथा अमानवीय मानते हैं, और उनकी जगह सत्य, अहिंसा और प्रेमको स्थापित हुआ देखना चाहते हैं। उनके जीवनका ध्येय ही यह है और इसलिए अपने ध्येय तक पहुंचे बिना गांधीको विश्राम कहाँ ?[1]

नेटाल इंडियन कांग्रेस—

गांधीजीने अपने इरादेके अनुसार भारतीयोंको संगठित कर मताधिकार बिलके विरुद्ध संयुक्त आवाज उठाई और अफ्रीकन सरकारके पास उसके विरोधमें अर्जियाँ भिजवाईं। राजनैतिक कार्योंमें पड़नेका उनके जीवनमें यह प्रथम अवसर था। निष्क्रिय तथा निश्चेष्ट अफ्रीकाके भारतीयोंके जीवनमें भी इस प्रकारकी हलचलका यह समारम्भ था। इस हलचलने वहाँके भारतीयोंके जीवनमें विकास और क्रियाशीलताके नये अंकुर पैदा कर दिये। अफ्रीकाके भारतीयोंके जीवनमें एक नये प्रभातका मानों उदय हो चला था, और गांधी उस प्रभातकी अरुणिमाके बालरवि थे। जागृतिके इस नूतन प्रभातको देखकर गोरे और

[1] आज जब हम इन पंक्तियों का प्रेस के लिए प्रूफ देख रहे हैं, गांधी जी हिन्दू-सिख और मुस्लिम एकता के लिए १३ ता० जनवरी १९४८ से अनशन कर रहे हैं।

उनकी सरकार भी स्तम्भित हो उठी। वे मानों जागृतिके उजालेसे चौंधिया उठे थे। साम्राज्यवादके उलूकका नव जागृतिके प्रकाश से चौंधियाना और चिढ़ना अस्वाभाविक न था। वे सतर्क हो इस नवचेतना और नवज्योतिको निरखने लगे। वे सोचमें थे कि यह गांधी क्या करनेवाला है?

दूसरी ओर गांधीजी भारतीयोंके आगे-आगे चेतनाकी मशाल लेकर बढ़े जारहे थे। उन्होंने मताधिकार बिलके विरोधमें बहुत बड़ी संख्यामें भारतीयोंके हस्ताक्षर लेकर अफ्रीकाकी सरकारके पास जोरदार अर्जियाँ और विरोध पत्र भिजवाये। अखबारोंमें भी गांधीजीने बिलके विरोधमें विरोधकी आवाजें गूंजाईं! लेकिन इतना सब करने पर भी अफ्रीकाकी सरकारने भारतीय जनमतकी उपेक्षा करके बिलको पास कर ही डाला! पर तब भी इस विरोधका नैतिक असर तो अवश्य हुआ। विरोधके साहसने भारतीयोंको अपने अधिकारोंके प्रति सजग और सचेष्ट बना दिया तथा राष्ट्रके अधिकारों और सम्मानके लिए सम्मिलित होकर उन्हें खड़ा होना सिखला दिया!

बिल पास होगया तो क्या, विरोधको तो वह शांत न कर सका था। बिलके पास हो जानेसे गांधीको क्षोभ था, किन्तु निराशा नहीं! वे जानते थे कि अन्याय भलेही कुछ समयके लिये कानून और तलवारका सहारा लेकर टिका रहे, लेकिन अन्ततः सत्यके विरोधमें उसे पदच्युत होनाही पड़ेगा। अतः बिलके पास होनेके बाद भी गांधीजीने अपने संघर्षको उसी उत्साह और साहसके साथ जारी रखा जिस उत्साह और साहसके साथ उसका प्रारम्भ किया था। उन्होंने अब भारतीयोंको बहुत बड़ी

संख्या में हस्ताक्षर लेकर एक और अर्जी नेटालके भारतीय उपनिवेशोंके मंत्री लार्ड रिपनके पास भिजवानेकी सलाह दी ! तद्नुसार बड़े कठिन परिश्रमसे १०,००० हस्ताक्षर लेकर एक अर्जी रिपनको भी भिजवाई गई ! इस अर्जीकी प्रतिलिपियाँ पत्र-पत्रिकाओं और भारतके जन-नेताओंके पासभी भेजी गई ! इस प्रकार गांधीजीके सुयोग्य और कुशल नेतृत्वके फलसे संसार भी दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले भारतीयोंके दुःख दर्दोंसे परिचित होने लगा और मातृ-देश भारतको भी अपने प्रवासी बन्धुओंकी कष्ट-गाथायें सुननेको मिलने लगीं ! परिणाम यह हुआ कि मातृ-देशके और दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय जो अब तक एक दूसरेसे बेखबर हो रहे थे, एकस्नेह सूत्रमें बँध गये ! इस प्रकार गांधीजीने सारे जगत और मातृ-देशकी निगाहें दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयों पर होने वाली अनीतियोंकी तरफ खींच लीं !

गांधीजीने नेटालके भारतीयों की तरफसे जो अर्जी रिपनको भिजवाई थी, चारों तरफसे उसका खूब समर्थन हुआ ! भारतके सभी पत्रों और विलायतके प्रभावशाली पत्र जैसे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' तथा 'लन्दन टाइम्स' ने भारतीयोंके पक्ष का खूब समर्थन किया ! फलतः उक्त बिल अंगरेजी पार्लियामेण्ट में पास होनेसे रुक गया, लेकिन चालबाज ब्रिटिशशाहीने उसकी जगह एक ऐसा बिल पास कर दिया जिसके जरिये अफ्रीकाके गोरे साम्राज्य वादियोंका वह मतलब सिद्ध हो गया जो वे मताधिकार बिलके द्वारा हासिल करना चाहते थे ! परिणामतः नेटालके भारतीय अपने अधिकारोंसे आखिरकार वञ्चित कर ही दिये गये !

किन्तु 'अधिकारोंका 'योद्धा' और 'अन्यायका प्रतिरोधक' गांधी हार माननेको तैयार न था ! उन्होंने अब वहाँके भारतीयोंको अपने हकों और अधिकारोंके लिये लड़नेके वास्ते एक मजबूत सङ्गठन और सार्वजनिक संस्था कायम करनेकी राय दी ! वहाँके भारतीयोंने इस सलाहका बड़े उत्साह और सम्मान के साथ स्वागत किया और गांधीजीके नेतृत्वमें मई १८९४ को 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नामसे एक लोक-प्रिय संस्था स्थापित कर डाली !

इस कांग्रेसके मुख्य ध्येय निम्न थे:—नेटालमें जन्मे और रहने-वाले भारतीयोंकी सेवा करना, उन्हें शिक्षित करनेके लिये 'इंडियन एजुकेशनल ऐसोसिएशन कायम करना' और भारतीयोंके अधि-कारोंके लिए आन्दोलन करते रहना ! साथही नेटालके भारतीयों की वास्तविक स्थितिको भारत तथा इंगलैंडके सामने प्रकाशमें लाना भी कांग्रेसके कार्य-क्रमका एक प्रमुख अंग था ! इस उद्देश्य को लेकर गांधीजीने स्वयं भारतीयोंकी स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए 'दक्षिण अफ्रिकामें रहनेवाले प्रत्येक अंग्रेजसे अपील' और 'भारतीय मताधिकार' नामसे दो पुस्तकें लिखीं, जो नेटालके भारतीयोंके प्रति निःसन्देह बहुतसे उदार व्यक्तियों और दलोंको आकृष्ट करनेमें सफल हुईं !

नेटाल कांग्रेसका पहिला कार्य—

नवजात नेटाल कांग्रेसने सबसे पहिले गिरमिटिया बिलके विरोधका कार्य **हाथमें** लिया ! अफ्रीकाकी सरकार एक नया गिरमिटिया बिल पास कर भारतीय गिरमिटियों या मजदूरों

पर सालाना ३७५ रु० का कर लगाना चाह रही थी। लेकिन गांधीके नेतृत्वमें भारतीय नेटाल कांग्रेसके विरोध करनेसे उनकी यह मंशा अधूरी ही रह गई। भारतीय सरकारकी मध्यस्थतासे अफ्रीकाकी सरकारको प्रस्तावित ३७५ रु० का सालाना कर घटा के ४५ रु० कर देना पड़ा! किन्तु गांधीका न्यायी हृदय इस ४५ रु० के करको भी न सह सका। अन्याय छोटा हो या बड़ा, था तो वह अन्याय ही। अतः गांधी नित्य इसी सोचमें तल्लीन रहने लगे कि किस प्रकार इस ४५ रु० के अन्यायी करको भी दूर किया जाय?

अन्तमें गांधी इस निर्णय पर पहुंचे कि इस अन्यायके विरुद्ध अहिंसक धर्म-युद्ध किया जाना चाहिये! उनके इस निर्णय का जागृत अफ्रीकाके भारतीयोंने पूर्ण रूपसे समर्थन और स्वागत किया! फलतः जब अहिंसक संग्राम में शामिल होनेके लिए गांधीजीने 'धर्म-घोष' किया तो लगभग १०,००० अफ्रीकाके भारतीय उनके पीछे हो लिये! इस अहिंसक सेना पर सरकारने भी अपनी तरफसे खूब सख्तियां बरतीं, जुर्म ढाहे, बल प्रयोग किया, किन्तु गांधीके सिपाही बढ़ते रहे, बढ़ते गये। परिणामतः गांधीके धर्म-युद्धके सामने आखिर अधर्मी गोरी अफ्रीकाकी सरकारको नत-मस्तक होकर उक्त अनीतिपूर्ण कर उठाने के लिए मजबूर होजाना पड़ा था। अधर्म पर यह धर्मकी विजय थी, असत्य पर यह सत्यकी विजय थी, और अहिंसाकी वह हिंसा पर विजय थी!

गांधीके शांत और तेजस्वी नेतृत्वका ही यह सब प्रतिफल था। उनकी इस तेजस्विता और मनःस्विताने अफ्रीकाके भारतीयों को मुग्ध कर डाला। उन्हें मालूम हो गया कि गांधी ही एक

मात्र उनका नेता, उनका गुरु और त्राणकर्ता है ! वे गांधीसे चिमट गये। गांधी अब उन्हें छोड़कर कहीं न जा सकते थे ! फलतः उन्हें भारत लौटनेके इरादेको स्थगित कर अनिश्चित कालके लिए नेटालमें बसनेको राजी हो जाना पड़ा।

गांधीजीने परिस्थितियोंमें पड़कर यह निश्चय किया था। अगर उन्हें पहलेसे इसका पता होता तो वे प्रारम्भमें ही सकुटुम्ब वहां आगये होते ! किन्तु उन्हें तब मुकदमेसे अधिक किसी बात का पताही न था, और उसे पूरा कर उन्हें भारत ही लौट आना था ! पर अब वहीं बसनेका निश्चय कर लेने पर उन्होंने अपने कुटुम्बको भी भारतसे वहां ले आनेका निश्चय किया ! इस बहाने थोड़े समयके लिए भारत आकर वे दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके प्रश्न और समस्याओंको भी भारतीय जनता तथा कांग्रेसके सामने प्रकाशमें ला सकते थे। अतः इन दो उद्देश्यों को दृष्टिमें रखकर गांधीजी नेटालके भारतीयों की मंजूरी लेकर १८९६ को कलकत्ता जाने वाले पोंगोला जहाजसे भारतके लिए रवाना हो गये !

कुछ समयके लिए भारत

(२)

गांधीजी अफ्रीकासे हिन्दुस्तान अपने कुटुम्बको ले जानेकी गरजसे ही न आये थे, किन्तु उनका यह भी अभिप्राय था कि यहाँ पहुंचकर अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयों और उनपर होनेवाले गोरोंके अत्याचारोंका भेद स्वदेशवासियों पर प्रकट करेंगे, जिससे मातृ-देश अपने इन प्रवासमें पड़ हुये दुःखी भाइयोंके प्रति जागरुक हो जांय और उन्हें आवश्यकतानुसार मदद पहुँ-चाने लगें। इसलिये गांधी अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रश्नको भारतकी जनताके सामने पेश करनेके लिये उतवाले हो रहे थे। उनका यह विश्वास था कि अफ्रीकाके भारतीयोंका प्रश्न भारतीय प्रश्न है, जिसे हल करनेमें भारतको ही सहयोग देना चाहिये। लेकिन चूँकि मातृ-देशके सामने ऐसा प्रश्न पहले कभी न आया था, इसलिये गांधीने पहले यह उचित समझा कि भारतको प्रवासियोंके बारे परिचित करा दिया जाय, ताकि वे उनकी समस्याओंके प्रति जागृत तो हो जाँय। उन्होंने खुद लिखा है कि अफ्रीकाके प्रश्नकी चर्चा करनेमें उनका विचार यह था कि उससे यहाँके लोगोंमें "अधिक दिलचस्पी पैदा हो सकेगी"।[1]

---

१. आत्मकथा भा. २. पृष्ठ १२३.

अपने ध्येय और धुनके गांधी आरम्भसे ही महान् और पूर्ण रहे हैं। अतः हिन्दुस्तानमें वे पहुंचे भी नहीं कि प्रवासी भारतीयोंकी समस्याके प्रचारमें तत्परतासे संलग्न हो गये। कलकत्ते से बम्बई जाते समय रास्तेमें प्रयागसे ही उनका प्रचार कार्य शुरु हो गया। प्रयागमें वे वहाँके 'पायोनियर पत्र'के सम्पादकसे मिले और उससे अफ्रीकाके प्रवासी भारतियोंके बारे 'पत्रमें चर्चा करनेका' आश्वासन माँगा। गांधीजीको बड़ा संतोष हुआ, जब संपादकने खुशी-खुशी यह कार्य करना स्वीकार किया।

इसके बाद राजकोट पहुंचने पर गांधीजीने खुद भी अफ्रीकाके भारतीयोंकी समस्याओं और स्थिति पर प्रकाश डालनेके लिए एक छोटीसी पुस्तिका लिखी जो 'हरी पुस्तिका'के नामसे प्रसिद्ध है। इस पुस्तिकामें नेटालके हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंका मार्मिक ढंगसे वर्णन किया गया था। इस पुस्तकका देशमें खूब प्रचार हुआ और अफ्रीकाके प्रश्न पर सभी अखबारोंमें चर्चाएँ होने लगीं।

अखबारी चर्चासे ही, लेकिन गांधीजी संतुष्ट न हुए। उन्होंने अब अफ्रीकाके प्रश्न पर लोकमत तैयार करनेके लिए शहरोंमें सभाएँ करनेका निश्चय किया। अतः वे पहले बंबई जाकर रानाडे और फिरोजशाह मेहता से मिले, जो उस समय भारतके सर्वमान्य और प्रतिष्ठित नेता थे। फिरोजशाहकी मददसे गांधीजी बंबईमें सभा करनेमें सफलीकृत हुए और अफ्रीकाका प्रश्न भारतीयोंके दिल दिलमें गड़ गया—गांधी यही चाहते थे। सच्ची लगन और सच्ची चेष्टा क्यों न सफल होती?

बंबईकी सफलताके बाद गांधीजी पूना गये। यहाँ भी वे गोखले, लोकमान्य तिलक और रामकृष्ण भंडारकर आदिसे अफ्रीकाका प्रश्न लेकर मिले। सौभाग्यसे यहाँ भी उनको

श्री भंडारकर की अध्यक्षतामें सभा बुलानेमें आशातीत सफलता मिली।

पूनाके बाद गांधीजी मद्रास गये। मद्रासमें उन्हें बहुत अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। वहाँकी सभासे मद्रास वालोंका हृदय अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रति खूब आकर्षित हुआ। वहाँके दो प्रतिष्ठित अखबारों—'मद्रास स्टैंडर्ड' और 'हिन्दू'ने अफ्रीकाके प्रश्नको बड़े उत्साह और सरगर्मीसे अपनाया।

मद्राससे फिर गांधीजी सभा करनेके अभिप्रायसे बंगाल पहुंचे। किन्तु वहांके बंगाली नेताओं और अखबारोंसे गांधीजी को कोई विशेष सहयोग न प्राप्त हो सका। लेकिन इससे वे निराश न हुए। काम करनेवाला आदमियोंके बजाय 'कर्म'को प्रधानता देता है। वहाँके हिन्दुस्तानियोंसे कोई सहायता प्राप्त न होने पर भी वे हिम्मत बाँधे रहे, और बंगालियोंका आसरा छोड़कर अंग्रेजों और अंग्रेजी अखबारों—'स्टेटस् मैन' तथा 'इंग्लिश मैन'—से जाकर मिले। इनसे उन्हें काफी सहयोग प्राप्त हुआ; विशेष कर इंग्लिश मैनके संपादक मि० सॉण्डर्सने तो गांधीजीको अफ्रीकाके मामलेमें हर तरहसे सहयोग दिया। इस स्नेह पूर्ण सहयोगका उल्लेख करते हुए गांधीजीने लिखा है:—
"इंग्लिश मैन"के मि० सॉण्डर्सने मुझे अपनाया। उनका दफ्तर मेरे लिए खुला था उनका अखबार मेरे लिए खुला था....यह भी कहूँ तो अत्युक्ति नहीं कि उनका मेरा खासा स्नेह हो गया।"
अतः इन लोगोंकी सहायतासे गांधीजी को कलकत्तेमें भी सभा करनेमें कठिनाई न रह गयी, लेकिन इसी समय उन्हें डरबनसे तार मिला कि तुरंत लौट आओ। इस बुलावेके अनुसार कलकत्तेमें सभाका इरादा अधूरा ही छोड़कर गांधीजी पुनः दूसरी

बार अपने बाल-बच्चों सहित दादा अब्दुल्लाके आग्रह पर उनके जहाज 'कुरलैण्ड'से दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गए। इसी समय दादा अब्दुल्लाका दूसरा जहाज 'नादरी'भी डरबनको रवाना हुआ। दोनों जहाजोंमें कुल मिलाकर ८०० यात्री थे, जिनमेंसे बहुतोंको ट्रान्सवाल जाना था।

गांधीजी का डरबन पहुँचना और गोरोंका उत्पात—

(१८९७-१८९८)

भारतमें गांधीजीने अफ्रीकाके भारतवासियोंकी हीनावस्था-की जो चर्चा चलाई और उसके सम्बन्धमें जो प्रचार आदि किया, उससे अफ्रीकाके गोरे जल-भुन गये थे। भारतमें गांधीजी जिस समय प्रबलतासे प्रचार कर रहे थे, उसी समय उनकी 'हरी पुस्तिका' पर सबसे पहले 'पायोनियर' में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका सारांश विलायत गया और फिर रूटरकी मार्फत नेटाल पहुंचा। किन्तु यह सार बहुत रंगा हुआ था। उसमें सच्चाईकी बू थी, पर वह पूर्ण रूपसे सही नहीं था। रूटरका भेजा हुआ तार इस प्रकार था :—"सितंबर १४, भारतमें प्रकाशित एक पुस्तिकाका कथन है कि नेटालके भारतीयोंको लूटा और खसोटा जाता है, जानवरोंका सा उनसे बर्ताव किया जाता है, और कोई सुनवाई नहीं होती। 'टाइम्स आफ इण्डिया' इस बातकी जाँच किए जानेके पक्षमें है।"

स्वभावतः इस प्रकारका तार जब नेटाल पहुंचा तो वहांके गोरे गांधीके प्रति खूँखार हो उठे। यद्यपि सही तौर पर गांधीजीने गोरोंके प्रति 'उपरोक्त प्रकार' से कोई दोषारोपण नहीं किये थे। वे गांधीजीके शब्द थे ही नहीं। गांधीजीके वक्तव्यको असलमें

रूटरने रंग चढ़ाकर भेजा था। अतः उक्त वक्तव्यके कुप्रभावसे नेटालमें सर्वत्र गांधीजीके विरुद्ध गोरोंकी सभाएँ होने लगीं और उनपर तीक्ष्ण शब्दोंमें यह आरोप लगाया गया कि हिन्दुस्तानमें उन्होंने नेटालके गोरोंकी अनुचित निंदा की है। डरबनकी एक सभामें भाषण देते हुए एक गोरे डाक्टरने यहाँ तक कहा कि "मिस्टर गांधीने, नेटालके गोरोंपर भारतीयोंसे अनुचित व्यवहार करनेका, गालियाँ देने, लूटने और धोखा देनेके (एक आवाज, एक कुलीको क्या धोखा दिया जा सकता है।) आरोप लगाए हैं।...मिस्टर गांधीने हिन्दुस्तान जाकर उन्हें नालीमें ढकेला है, और उन्हें इतना काला और कुरूप चित्रित किया है, जितना कि उसकी खाल खुद है।" (करतल ध्वनि)[1]

इस प्रकारके प्रचारोंसे गोरे पूरी गरमी पाकर उबल ही रहे थे, कि गांधीजीका जहाज डरबनके बंदरमें आ लगा। उनके साथ दूसरा जहाज नादरी भी आया था। उनको पहुंचा देख कर दक्षिण अफ्रीकाके गोरे और भी आगबबूला हो उठे।

गांधीजी और साथ आनेवाले जहाजके ८०० यात्रियोंके डरबनमें पहुंचनेका समाचार सुनकर गोरोंने यह मनमाना अंदाज लगाया कि गांधी दो जहाजोंमें बहुतसे भारतीयोंको नेटालमें बसानेके अभिप्रायसे भर लाया है। इस विचारसे उनके क्रोधका ठिकाना न रहा। गोरी सरकार भी गोरोंका पक्ष ले रही थी। गोरे नहीं चाहते थे कि गांधी जैसा जागरूक व्यक्ति अफ्रीकाके सोये हुए भारतीयोंको जगानेके लिए और उनके मनमाने शासनमें अड़ंगा पैदा करनेके लिए नेटालमें प्रवेश करे। अतः गोरोंने

1. M. K. Gandhi, An Indian patriot in south Africa, J. J. Doke. P. 43.

माँग की ओर उनकी सरकारने भी उसका समर्थन किया कि गांधी और जो दूसरे भारतीय डरबन पहुंचे हैं, वापिस चले जायँ, नहीं तो मार डाले जायंगे। किन्तु सत्य और न्यायकी मजबूत चट्टानपर दृढ़तासे पैर टिकाकर खड़ा हुआ गांधी गोरोंके इस पशुत्वसे घबराकर मुड़ चलनेके बजाय उसका सामना करनेको रौद्र हो उठा। उनकी निर्दोष और अकलुषित आत्मा इस अन्यायके बढ़ावको कैसे सह सकती थी? गांधीजी निर्दोष थे, उन्होंने यूरोपियनोंको न वह सब कहा था जो गोरे प्रचारित कर रहे थे, और न वे जहाजोंमें लोगोंको नेटालमें बसानेके लिए भरके ही लाए थे। वे साथ आनेवाले दूसरे जहाज 'नादरी' के यात्रियोंसे परिचित तक न थे।

किन्तु रोष और रंग-द्वेषसे अंधे हुए गोरोंको कुछ सूझता न था। वे तो तुले थे,—गांधी और उनके साथ पहुंचनेवाले भारतीयोंको वापिस लौटानेके लिए। अतः गोरोंने धमकी देकर गांधीजी आदिको लानेवाले दोनों जहाजोंको 'सूतक' के बहाने अनिश्चित समयके लिए 'क्वारंटीन'में रुकवा दिया, ताकि भारतीय तंग और परेशान होकर वापिस जानेको मजबूर हो जांय। परन्तु गांधी अन्यायसे कभी मजबूर न होनेवालोंमें से थे—अन्यायसे मजबूर और लाचार हुए तो वह पुरुष ही कैसा? अतः खुद घबरानेके बजाय पौरुषसे पूर्ण गांधीने अपने साथी भारतीयोंके साहसको भी थाम कर रखा, और धमकियों तथा चेतावनियोंकी परवाह न कर अपने हक पर अड़े और डटे पड़े रहे। उन्होंने स्पष्ट घोषित कर दिया कि हमें नेटालके बंदरमें उतरने का हक प्राप्त है और हम अपने हकपर कायम रहेंगे।[1]

---

[1] आत्मकथा भा० २. २०९

आखिर अन्यायको न्यायके सामने झुकना ही पड़ा। सत्य को कुछ समयके लिए ढँका जा सकता है, लेकिन चिरकाल तक उसे दबा कर नहीं रखा जा सकता। फलतः गोरी सरकारको मजबूर होकर आखिर तेईस दिनोंके बाद भारतीयोंको उतरने देनेकी आज्ञा प्रेषित कर देनी पड़ी।

गोरे और भारतीयोंमें इस समय खूब कशमकश चल रही थी। गांधी हक पर अड़े थे, तो गोरे पशुबल और सरकारके अस्त्रों पर। चार जनवरीको भारतीयोंको नेटालमें उतरनेके विरोधमें गोरोंने डरबनके टाउनहालमें एक बड़ी भारी सभा भी बुलाई। इसमें लगभग २,००० आदमी शामिल हुए। इस गोरी सभाके दिमागका खाका उनके निम्न प्रस्तावोंमें पूरी तरह अंकित है:—

(१) इस सभाकी रायमें अब ऐसा समय आ गया है कि किसी हिन्दुस्तानी या एशियाईको इस उपनिवेशमें उतरने नहीं देना चाहिए, और सरकारसे यह सभा प्रार्थना करती है कि उपनिवेशके खर्च पर उन भारतीयोंको वापिस कर दें जो कुरलैण्ड और नादरीमें आए हुए हैं।

(२) इन प्रस्तावोंको सफल बनानेमें प्रत्येक आदमी सरकारकी हर प्रकारसे मदद करनेका पूरा वचन देता है। आदि।

ये प्रस्ताव और व्याख्यान प्रमुखतः गांधीके विरोध में थे, और सब गोरे इस विरोधको सफल बनानेके लिए 'पशुबल'का सहारा लेने को तयार बैठे थे। इन मानवताके विद्रोहियोंको सरकारका सहाराभी प्राप्त होता जा रहा था। श्री एस्कोम्ब (Mr. Escombe) ने सरकारकी तरफसे विद्रोहियोंको यह दिलासा दे दिया था कि

वह हर प्रकारसे मामलेको आगे बढ़ायेगी। गोरोंने धमकियोंके असफल होने पर हमलेकी तैयारियां भी कर ली थीं। अतः हमला करनेवाले व्यक्तियोंके जत्थे बना लिए गए थे और प्रत्येक जत्थेके 'कैप्टिन' भी नियुक्त कर दिए गये थे। गोरोंमें युद्धका सा उमंग छा रहा था। संक्षेप में डरबन रंग-द्वेषसे इस समय पागल हो उठा था।[1]

गोरे मनमें यही समझ रहे थे कि उनके इस प्रकार अकड़नेसे घबड़ा कर गांधी और दूसरे भारतीय बिना उतरे ही पूँछ उठा-कर कायरतासे वापिस चले जायेंगे। किन्तु उनकी धारणा निर्मूल साबित हुई। गांधी हकोंको नहीं छोड़ सकता, छूट जाने वाली शरीरकी चिन्ता उसे कहाँ?[2] गीताका अनुयायी कर्तव्य और कर्मको देखता है, आत्माके निर्देशोंको सुनता है और जीर्ण एवं शीर्ण होकर मिट जानेवाले शरीरके मोहमें पड़कर पुरुषार्थ को त्याग नहीं दिया करता।

---

1. An Indian patriot-J. J. Doke pp. 33-45.

२. हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए १३ ता० जनवरी में गांधीजीने जो अनशन किया था, वह १७ ता० को सर्वदली नेताओं के आश्वासन पर तोड़ दिया था! इस के बाद वे पुनः हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रचार में जुट गये! यह प्रचार-कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे साम्प्रदायिक संस्था के व्यक्तियों को अच्छा न लगा! फलतः गांधीजी को इस स्नेह प्रचार के लिये धमकियाँ दी गई! पर निष्कामकर्मी गांधी टस से मस न हुआ! अन्त में ३० ता० जनवरी १९४८ की शामको संघ के एक सदस्य हत्यारे नाथुराम गोडसेने गोली दाग कर उनका अन्त कर डाला!

निर्भीक गांधी इस तूफानमें अटल होकर खड़ा रहा और अपने भारतीय भाइयोंको भी सहारा देता रहा। गांधीजी जानते थे कि उनके हकों पर अतिक्रमण करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, किन्तु कानून वा न्याय उनके साथ है, और इसलिए कानूनके अनुसार उन्हें कोई उतरनेसे इनकार नहीं कर सकता। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह न लौटेंगे, न अपने भाइयोंको ही लौटने देंगे। अतः गोरोंका पशुबल उन्हें डरानेमें हर प्रकारसे असमर्थ था।

भारतीयोंने गांधीजीके नेतृत्वमें स्पष्टतया नेटाल सरकार और गोरोंको यह जतला दिया कि वे वापिस न लौटेंगे, चाहे उन्हें विद्रोही गोरोंसे कैसा भी खतरा क्यों न उठाना पड़े। गांधीजीकी इस दृढ़ताके सामने नेटाल सरकार कानूनन कुछ करनेमें असमर्थ थी, इसीलिए अंतमें मजबूर होकर उसे झुकना पड़ा! परिणामतः २३ दिनोंके बाद १३ जनवरी १८९७ को सरकार द्वारा उतरने देनेकी आज्ञा प्रेषित कर दी गयी।[1]

गांधीजी गोरोंकी अमानुषिकताके शिकार—

किन्तु जब कुरलैण्ड और नादरीके बन्दरमें उतरनेकी आशा का समाचार गोरी जनताको विदित हुआ तो उनके क्रोधका समुद्रफेन उगलने लगा। १६ जनवरीको नेटाल 'एडवर्टाइजर'के अनुसार सारी गोरी-जनता ढोल पीटकर एकत्रित होने लगी, जिससे प्रतीत होता था कि यदि भारतीयोंने उतरनेका साहस किया तो बेचारोंकी बड़ी दुर्गति होगी। क्योंकि स्वार्थी और अहंकार गोरे भारतीयोंको किसी भी मूल्य पर उतरने न देना चाहते थे।

---

१ आत्मकथा भा० २ पृ० २०९

उपरोक्त पत्रिकाके अनुसार भारतीयोंके उतरनेके विरोधमें ३,३०० गोरी जनता 'अलेकजेन्ड्रिया स्क्वायर'में इकट्ठी हुई और उसने निश्चय किया कि चाहे शक्तिसे काम लेना पड़े, पर भारतीयोंको उतरने न दिया जायगा। अतः मौकेपर हमला करनेके लिए बाकायदा कई टुकड़ियाँ बनाली गयी थीं। यह देखकर जहाजोंके कप्तान सोचने लगे कि न जाने ये विरोधी क्या करेंगे! दोनों जहाजोंमें से कुरलैण्डको प्रथम उतरनेकी आज्ञा हुई थी। उसका कैप्टन मिलने (Milne) था। इस साहसी कैप्टनने अपने मुसाफिरोंको विरोधियोंसे बचानेका निश्चय कर, जहाज पर लाल चिन्हके सहित यूनियन जैक चढ़वा दिया और अपने जहाजके अन्य अफसरोंको हिदायत दी कि हमलावरोंको जहाजपर न चढ़ने दें, लेकिन यदि वे उन्हें रोकनेमें असमर्थ हो जायँ तो यूनियन जैक उतार कर उनके सुपुर्द कर दें। मिलनेने सोचा था कि इस प्रकार आत्म-समर्पण कर देनेसे शायद कोई अंग्रेज या गोरा जहाजके यात्रियोंको तंग न करेगा। विरोधियोंकी हलचल और रूखका जहाजके मालिक, भारतीय यात्री तथा गांधीजी गौरसे निरीक्षण करते जाते थे। किन्तु गोरी भीड़ जिसका भय हो रहा था, सहसा कुछ निर्धारित न कर सकनेसे स्वयं तितर-बितर होकर अलेकजेंडर स्क्वायरकी तरफ चल दी और सब कुछ स्वतः ही शांत हो गया। इसी बीच नेटाल सरकारके एटोरने जनरल मि० एस्कोम्बने आकर कुरलडके कैप्टन मिलनेको आश्वासन दिया कि उनके जहाजके यात्री-गण अपने आपको नेटाल सरकारके अधीन इसी प्रकार सुरक्षित समझें जैसे अपने निजी गाँवमें। यही आश्वासन मि० ऐस्कोम्बने 'नादरी'को भी दिया।

इसके बाद ऐस्कोम्बने यात्रियों पर हमला करनेकी इच्छासे एकत्रित भीड़को यह आश्वासन और विश्वास दिलाया कि भारतीयोंके मामलेको जल्दी ही पार्लियामेंटमें पेश कर दिया जायगा, इसलिये अब वे 'सम्राज्ञी'के नामपर वहाँसे हट जायँ। यह तरकीब कारगर हुई और विराट विरोधका फुंकार भरा उफान शांत हो चला। इसके दो घंटे बाद भारतीय यात्री नावोंपर बैठकर थोड़ा-थोड़ा करके किनारे आ उतरे।[1]

गांधीजी पर गोरोंकी चोटें:—

भारतीय मुसाफिर तो उतरे, पर गांधीजीको तब भी न उतरने न दिया गया। मि० ऐस्कोम्बने जहाजके कप्तानको कहला भेजा था कि गांधी और उनके बाल बच्चोंको अन्य यात्रियोंके साथ उतरने न देकर शामको उतारा जाय। कारण यह दिया गया कि गोरे उनके खिलाफ बहुत उभरे हुए हैं, और उनके प्राणों पर तक संकट आ सकता है। गांधीजी मन मसोसकर इस सलाहके अनुसार काम करनेको तैयार हो गए। किन्तु थोड़े ही समयके पश्चात् जहाजके एजेन्टका वकील मि० काटन जहाज पर आये और कप्तानसे बोले कि गांधीजीको वह अपनी जिम्मेदारी पर ले जा सकता है। कप्तानसे बातें करनेके पश्चात् मि० काटनने गांधीजीको अपने साथ आम रास्तेसे पैदल चलनेकी राय दी, लेकिन उनके बीबी बच्चोंको गाड़ीसे निश्चित मुकाम पर सकुशल पहुंचवा दिया गया।

मि० काटन की सलाह मानकर गांधीजी जहाजसे उतर

1. An Indian Patriot By J. J. Doke, pp. 46-48.

पड़े। किन्तु ज्योंही गांधीजी उतरे कि कुछ गोरोंके छोकरोंने उन्हें पहचान कर गाँधी-गाँधी चिल्लाना शुरू कर दिया। उनके चिल्लानेसे जल्दी ही एक खासी गोरोंकी भीड़ इकट्ठी हो गयी। भीड़ने गाँधजीको मि० काटनसे छुड़ा लिया, और उन्हें लातों और हाथोंसे इतना पीटा कि वे गश खाकर गिर पड़े। उनकी हालत गोरोंकी मारसे इतनी बुरी हो चली थी कि यदि ठीक मौके पर पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट अलेक्जेण्डरकी पत्नी अकस्मात् घटनास्थल पर पहुँचकर अपने नारी-सुलभ स्नेहसे प्रेरित होकर उनकी सहायता न करतीं और गोरोंके प्रहारोंको रोकनेके लिए ढालकी तरह अपना छाता उनपर न उढ़ा देतीं, तो वे उस रोज गोरी भीड़के भीषण प्रहारोंके पूरे शिकार हो गये होते।

सौभाग्यसे इसी बीच एक हिन्दुस्तानी भी गाँधीजी पर हमला हुआ देख, दौड़कर पुलिस थानेको पहुँचा और वहाँके अधिकारियोंको सूचित किया कि गोरोंकी भीड़ गाँधीजीकी जान से खेल रही है। यह सूचना पाते ही पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट अले-क्जेन्डरने पुलिसकी एक टुकड़ी गाँधीजीकी रक्षाके लिए रवाना की जो मौकेसे घटनास्थल पर आ पहुँची। गाँधीजी तब पुलिस के साथ अपने इच्छित स्थानकी ओर चले। मार्गमें अलेक् जेंडरने गांधीजीको पुलिस चौकीमें ही ठहर जानेकी सलाह दी, किन्तु उन्होंने भीड़से त्रस्त न होकर और यह विश्वास करके कि वे लोग शीघ्र अपनी पाशविकता पर खुद शर्माकर शांत हो जायेंगे, रुकनेसे इनकार कर दिया। अतः वे पुलिसकी संरक्षतामें सीधे रुस्तमजीके यहाँ, जहाँ पर उनकी स्त्री और बाल बच्चे ठहरे हुए थे, चल दिये।

पारसी मित्र रुस्तमजी के घर यद्यपि गांधीजी बिना किसी दुर्घटनाके जा पहुंचे, किन्तु रात होते ही जैसा अँधेरा बढ़ा, गोरों की अपार भीड़ने पहुंचकर बेचारे रुस्तमजी के घरको बाहरसे घेर लिया और बुरी तरह हुल्लड़ मचाते हुए 'गांधी को हमारे हवाले कर दो'[1] की आवजें लगाने लगे। मामलेको तेजी पकड़ता देखकर सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर खुद वहाँ पहुंचे और किसी तरह भीड़की उग्रताको दबाये रहे। उन्होंने गांधीजीको भी सलाह दी कि यदि वे अपने मित्रके मकान व जान-माल और अपने बाल-बच्चोंकी सुरक्षा चाहते हों तो उन्हें चाहिए कि छिपकर तथा भेष बदलकर रुस्तमजीके घरसे निकल जावें।

भेष बदलकर भाग निकले—

गांधीजीने स्थितिकी मजबूरीको समझकर अलेक्जेण्डरकी सलाह पर काम करना स्वीकार कर लिया और एक हिन्दुस्तानी सिपाहीके वेषमें दो जासूसोंके साथ घरसे निकलकर अपार भीड़मेंसे गुजरते हुए बाहर चले गये। इस प्रकार किसी तरह बच बचाकर गांधीजीको लाचार हो आखिर उसी पुलिस थानेमें जाकर शरण लेनी पड़ी, जहाँ पर अलेक्जेण्डरने पहले ही उन्हें कुछ समयके लिये रुक जानेको कहा था। अब गांधीजीको इस थानेमें तबतक रुका ही रहना पड़ा जब तककि भीड़का खतरा पूरी तरह शांत न हो गया।

इधर, गांधीजीके पुलिस चौकीमें पहुंचने तक अलेकजेण्डर किसी तरह विद्रोही भीड़को काबूमें किये रहा, किन्तु जब उसे

१—आत्मकथा भाग ३. पृ. २११

विदित हो गया कि गांधी अब सकुशल थाने पहुंच गये हैं, तो उसने विनोद करते हुए भीड़से कहा कि व्यर्थ क्यों यहाँ खड़े हो, क्योंकि तुम्हारा शिकार गांधीतो कभीका वहाँसे सटक चुका है ! भीड़ने इस कथन पर विश्वास न किया और अपने प्रतिनिधियोंसे रुस्तमजीके घरकी तलाशी लिवाई; लेकिन जब निश्चित रूपसे मालूम होगया कि गांधीजीको सचमुच भगा दिया गया है, तो वे कुढ़ते और बड़बड़ाते हुए अपने-अपने घरों को चल दिये। इस प्रकार अलेक्ज़ेण्डरकी होशियारीसे आखिर यह खतराभी टल गया !

गांधीजीका क्षमादान—

सहिष्णुता और क्षमा भारतीय संस्कृतिके दो महान चिर-कीर्ति स्तम्भ हैं। भारतके महापुरुषोंने जान देकर भी कभी इन स्तम्भोंको गिरने नहीं दिया है ! गांधीनेभी वही किया ! उपरोक्त घटना और गोरी भीड़के पाशविक कृत्योंसे रुष्ट और क्षुब्ध होकर मि० चेम्बरलेनने इंगलैंडसे नेटाल सरकारको तार दिया कि गांधीपर हमला करनेवालों पर मुकदमा चले और गांधीको इंसाफ दिया जाय। अतः मि० ऐस्कोम्ब गांधीजीसे मिले और कहा कि यदि वे आक्रमणकारियोंको इङ्गित करदें तो उनपर मुकदमा दायर कर दिया जायेगा। किंतु गांधीजीकी सहिष्णुता और क्षमाशीलताने मुक्त हृदयसे मुकदमा चलवानेसे इन्कार कर दिया।

गांधीजीका सत्यानुराग—

गांधीजी यह भली प्रकार समझते थे कि नेटालके गोरोंके इस अकाण्ड-तांडवका कारण उनकी गलत धारणा वा भूल है, जो उनमें स्वयं सरकार और रूटरके गलत प्रचारसे पैदा हुई ! निःसन्देह रूटर और नेटाल सरकारके कर्मचारियोंनेही यह बात दक्षिण अफ्रिकामें फैलाई थी कि गांधीने हिन्दुस्तानमें 'गोरोंकी भरपेट और बढ़ा-चढ़ाकर निन्दाकी है', जिसे सुन-सुनकरही गोरे इतने बिगड़ उठे थे ! अतः गांधी उन्हें निरपराध समझते थे, और उनका विश्वास था कि सही बात प्रकट हो जानेपर गोरे स्वयं अपने किये पर पश्चात्ताप करने लगेंगे ! निःसन्देह गांधीको मानवकी सद्वृत्तियोंपर हमेशासे आस्था रही है और इसीलिये उनके जीवन और कर्मका ध्येय मानवका नहीं उसके दुष्कर्मोंका विनाश रहा है। उनके 'हृदय परिवर्तन' के अलौकिक सिद्धांतकाभी यही आधार और मूल है !

तूफान शान्त—गोरोंका पश्चात्ताप—

गांधीजीका विचार सही निकला। गोरोंने जब गांधीजीकी हिन्दुस्तानमें प्रकाशित चीजोंको स्वयं देखा-भाला तो उन्हें महसूस हुआ कि उनमें कोई खास बुरी बातें नहीं हैं, जिन्हें गांधी पेस्तर डरबनमें प्रकाशित न कर चुके हों। अतः सर्वत्र इस भावना ने जोर पकड़ना शुरू किया कि उन्हें गलत चीजें बतलाई और सुझाई गई थीं। गोरे अखबार 'नेटाल मरकुरी' (Natal Mercury) ने, जो अबतक रोषसे प्रज्ज्वलितहो रहा था, एक बयानमें लिखा कि "गांधीजीने अपने और अपने मुल्ककी ओरसे, कुछ

भी ऐसा नहीं किया है जिसका उन्हें हक न था। उनकी दृष्टिसे जिस सिद्धान्तको लेकर वे कामकर रहे हैं, वह बहुतही संगत और न्यायोचित है। वे अपने स्वत्वों और अधिकारों पर स्थित हैं, अतः जबतक वे ईमानदारी और सच्चे तरीकेसे काम करते जाते हैं, उन्हें दोष नहीं लगाया जा सकता, न उनके कार्योंमें हस्तक्षेपही किया जा सकता है। जहाँ तक हमें मालूम है, उन्होंने हमेशा ऐसाही किया है। अपनी हरी पुस्तिकामेंभी सच्चाईके नाते हमें कहना पड़ेगा कि गांधीने अपने दृष्टिकोणके अनुसार भारतीय मामलेको अवैध रीतिसे नहीं पेश किया है। रूटरका तार गांधीजीके कथनोंका रंगा हुआ संस्करण है। पुस्तिकामें केवल कई एक दुःखों वा कष्टोंको गिना दिया-गया है, लेकिन इससे कोई सही तौरसे यह नहीं कह सकता कि उनकी पुस्तक यह घोषित करती है कि नेटालके भारतीयोंको लूटा और आक्रान्त किया जाता है, या जानवरोंका जैसा उनसे बर्ताव किया जाता है, और उन्हें इन्साफ नहीं मिल पाता" [१]

गांधीकी सहिष्णुता, क्षमा और सत्य-निष्ठानेही गोरोंके मनोभावोंमें यह परिवर्तन उत्पन्न किया था। उन्होंने पहलेही कह दिया था कि "जब लोग अपनी भूल समझ लेंगे तब शान्त हो जायेंगे। मुझे उनकी न्याय बुद्धिपर विश्वास है।" [२] निःसन्देह गांधीके इस 'विश्वास' ने जल्दीही सफलताके केसरी रंगसे सबके हृदयोंको रंजित कर दिया। गोरोंकी गर्दनें झुकीं, गांधीका मस्तक ऊँचा उठा! गांधीकी क्षमाने रंग-द्वेषसे रंगे

1—An Indian Patriot in South Africa J. J. Doke, p. 50

२—आत्मकथा भाग ३, पृष्ठ २११,

गोरे हृदयोंके मालिन्यको मानो पोंछ डाला था। परिणामतः गांधीकी प्रतिष्ठा बढ़ी और गोरे हुल्लड़बाजोंको दुनियामें 'बुरा-भला' सुननेको मिला। गांधीजीकी प्रतिष्ठा बढ़नेके अलावा सबसे सुन्दर परिणाम तो यह हुआ कि उनके कार्यके लिए अब आगेका रास्ता बिल्कुल साफ और सुगम हो चला।[1] सत्यपर विश्वास करनेके इस अनुभवसे गांधीजीको यह भी मालूम होगया कि सत्यपर किया गया आग्रह अवश्य सफल होता है। यही अनुभूति थी जिसने प्रथमतः २८ वा २९ वर्षके युवक गांधीके हृदयमें दुनियाको स्तम्भित और साम्राज्यशाहीको चकित तथा पराजित करनेवाले 'सत्याग्रह' के उस अंकुरको पैदा किया, जिसे उन्होंने दमनको दबानेका अंकुश बनाया!

१ —आत्मकथा भाग ३, पृष्ठ २१५.

जीवनमें नई कोपलें

(१८९७-१८९८)

अध्याय ५

सार्वजनिक कार्य—

गोरों वाली घटनाके शान्त हो जाने पर गांधीजी ३-४ दिनमें घर जाकर अपने काम-काज पर लग गये। उपरोक्त घटनाको शान्ति पूर्वक सहने और क्षमाभाव दिखानेसे उनके प्रभावके बढ़नेके साथ उनकी वकालत भी चमक उठी थी। किन्तु गांधीजी अपने व्यक्तिगत फायदेकी ओर कब झुकनेवाले थे? अतः उनका अधिक समय सार्वजनिक कामों पर ही निछावर होने लगा। गांधीजीने नेटाल पहुंचते ही पहिले वहाँकी धारा सभामें पेश होने वाले उन दो बिलोंका विरोध किया जिनके द्वारा हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके धंधोंको हानि पहुंचनेको थी, और हिन्दुस्तानियोंके आने-जानेमें रुकावट पैदा की जानेवाली थी। किन्तु बहुतेरा विरोध करने पर भी धारा सभामें वे बिल भारतीयोंके विरुद्ध पास कर ही दिये गये।

जागृति फैली—

प्रत्येक असफलताके साथ सफलता भी जुड़ी रहा करती है। असफल होने पर यदि हम प्रयत्नसे पीछे नहीं हटते, तो

आगे ही बढ़ते जाते हैं, और असफलतासे ही आखिर हम सफलता प्राप्त कर लेते हैं। गांधीजी अपने विरोधमें यद्यपि सफल न हो सके थे, किन्तु उनकी अन्याय-विरोधी भावनाने उनको एक वीर योद्धा बना दिया था। उनकी इस भावना व नीतिने लोगोंको भी अपने हक़ोंके प्रति जागरूक बना दिया और उनमें अधिकारके लिए संघर्ष करनेकी प्रवृत्ति पैदा कर दी। इस जागरूकता अथवा जागृतिके अंकुरको फूटता देखकर गांधी सतर्क हो उठे और उसे पनपाने और बढ़ानेमें संलग्न हो गये।

गांधीजीने नेटालकी भारतीय कांग्रेसको आर्थिक रूपसे सुदृढ़ बनानेके लिए खूब चन्दा वसूल किया, और कांग्रेसके कोषमें ५,००० पौण्ड डालर जमा करा दिये। कांग्रेसकी आर्थिक स्थिति दृढ़ करनेके लिए गांधीजीने कांग्रेसके नाम पर जमीन व जायदाद भी मोल लीं और आयका संचालन करनेके लिए एक ट्रस्ट बनवा दिया।[1]

सादगी और सेवा—

गांधीजीका सारा काम अब सुव्यवस्थित रूपसे चलने लगा। किन्तु मन फिर भी उनका बेचैन था। उनका हृदय जीवनमें सरलता और शुचिता खोज रहा था। अतः गांधी अपने सार्वजनिक कामोंसे ही संतुष्ट न रह सके। हृदय उन्हें सरलता और सादगीकी ओर बढ़नेके लिए इंगित करने लगा। गांधीजी आत्माके निर्देशोंको पकड़कर ही तो ऊपर उठ सके

१—आत्मकथा भाग ३. पृष्ठ २१६-२१७

हैं, इसलिए आत्माके निर्देश पर अब वे सादगी और सेवा कार्य को ओर अधिकाधिक अग्रसर हो उठे !

गांधी नर्सके रूपमें—

आत्माकी पुकार पर गांधीजीने पीड़ितोंकी सहायता करने और उनके दुःखमें समभागी होनेकी इच्छासे किसी एक अस्पतालमें भर्ती होकर नर्सका काम करनेका इरादा किया। इस इरादे और बुद्धकी जैसी करुणासे प्रेरित होकर वे डाक्टर बूथके छोटे अस्पतालमें नर्स बनकर काम करने जाने लगे। वे रोज सुबह ही अस्पताल पहुंच जाते और दो घंटे पीड़ितोंकी सेवामें मग्न रहा करते। सेवाके लिए अशान्त गांधीके मनको इससे बहुत शान्ति मिली, और अस्पतालमें कराहते हुए दुःखी हिन्दुस्तानियोंसे भी उनका गहरा संबंध हो गया।

स्वावलम्बी—

गांधीजीकी मनोवृत्ति प्रारंभसे ही वाह्य तथा भीतरी दोनों प्रकारकी परतंत्रताओंसे मुक्ति पानेकी रही है। उनके जीवनका मूल मन्त्र 'स्वावलम्ब' रहा है। उनके जीवनने प्रारंभसे ही इस सत्यको ग्रहण कर लिया था कि यदि मनुष्य सचमुच स्वतंत्र होना चाहता है, राष्ट्रको उन्नत देखना चाहता है, और परतंत्रताकी बेड़ियोंको तोड़कर फेंक देना चाहता है, तो उसे पहले अपने आपको जीतकर हर प्रकारकी परतंत्रताओंसे स्वयं मुक्त हो जाना चाहिए। अतः स्वतंत्र बननेके लिए गांधीने पहली चीज जो महसूसकी, वह थी—आत्म निर्भरता या

परावलंबिताका निषेध, या आत्म दृढ़ता अथवा आत्म-सुधार। इसीलिये उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि वे परावलम्बी न होंगे और अपने ही 'आत्म'के ऊपर अपने जीवनका महल खड़ा करेंगे। सचमुच वह व्यक्ति संसारमें कर ही क्या सकता है जो अपनी हर वस्तुओं और आवश्यकताओंके लिए दूसरोंका मुंह ताकता फिरे? वह व्यक्ति संसारका क्या सुधार करेगा जिसने पहले अपना ही सुधार न किया हो? इस सरल सत्य पर पहुंचकर गांधीजीने अब अपने जीवनमें उसका प्रयोग आरंभ कर दिया। उन्होंने पहले अपने दाम्पत्य और ग्रहस्त जीवनसे नौकरों और डाक्टरों आदिके 'परावलम्ब'का परित्याग किया। पत्नीके प्रसव कालमें दाई-चारे और बच्चोंको नहाने-धुलाने तक का काम गांधीजीने स्वयं अपने जिम्मे कर लिया, और केवल जरूरी तथा विशेष परिचर्याके लिए ही अब दाई और डाक्टरोंको बुलाया जाने लगा।

धोबीको बिदाई—

सुख और आनन्दका प्यासा यौवन मनुष्यको नित्य उनकी ओर खींच ले जाता है। गांधी भी एक बार सुखोपभोगकी तरफ इसी प्रकार आकृष्ट हुए थे। भोगकी लालसा निःसन्देह उनके मनमें भी प्रतीत हुई थी, किन्तु वह अधिक टिक न सकी। गृहस्थी और स्वावलम्बी बननेकी इच्छाने उनको भोगसे पलटकर उपयोगिता और उपादेयताकी ओर मोड़ दिया। प्राचीन भारत का सादा और मितव्ययी जीवन बितानेकी प्रेरणासे गांधीजीने अपना खर्चा भी घटा दिया और बहुतसी भोगकी चीजोंको अनावश्यक समझकर कम कर डाला। गांधी समझ चुके थे

कि एक तरफ भोग और दूसरी ओर जन-सेवाका व्रत किसी प्रकार निभ नहीं सकता। यह 'भोग'का ही मोह तो है जो राजाओं, नवाबों, तालुक्केदारों, मिल मालिकों, अमीरों और उमरावोंको गुमराह किये है। अपने वैयक्तिक सुख-भोग और स्वार्थों की लालसामें पड़कर ही तो मनुष्य आज मनुष्यता को खो बैठा है, और हिंश्र-पशु बनकर पृथ्वीका बोझ हो गया है। भोगके लिए अधिकसे अधिक धनकी तृष्णा उत्पन होती है, और तृष्णा हमें बरबस अनीति, अन्याय और अत्याचारके रास्ते पर खींच ले जाती है। गांधी ने सब समझा और इसलिए जरूरतोंको घटाकर, धनके आकर्षण और भोगके मोह पर आक्रमण बोल दिया। इस आक्रमणका अस्त्र 'स्वावलम्बन' था। गांधीने अब धोबीकी किच-किच और खर्चालेपनको भी विदाई दे दी और खुद कपड़े आदि धोने लगे। मित्रोंने उनके इस 'स्वावलम्ब' और धोबीकी परंत्रतासे मुक्ति पानेके रहस्य और मूल्यको न समझकर उनकी हँसी उड़ाई, किन्तु इस परिहाससे घबड़ाकर वे दूसरोंके इंगितों पर चलनेको तैयार न थे। श्रेष्ठ मानव सदासे अपनी आत्माके निर्देशोंको ही श्रेष्ठ मानता आया है। आत्मज्ञानी गांधी अमीर मित्रोंके परिहासकी क्यों चिन्ता करते? अतः उन्होंने अपना स्वालम्बन जारी रखा, और धोबीकी गुलामीसे मुक्त हो गये, जिससे उन्हींके शब्दोंमें 'भोगका बोझा भी बहुत कम हो गया'।[1]

१—वही पृष्ठ २२३
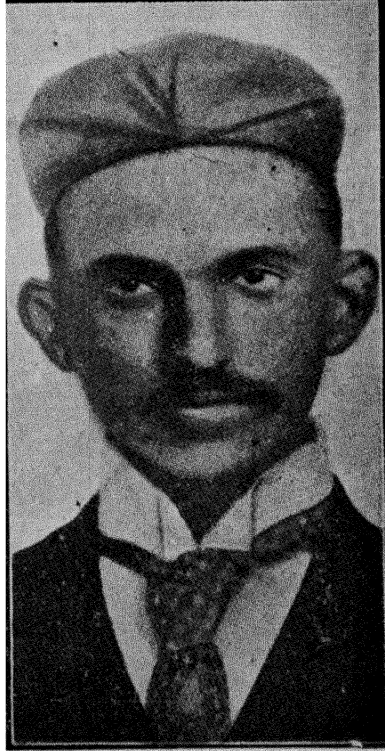
बोअर युद्ध के समय [दक्षिण अफ्रीका में]

[पृष्ठ १०८]

नाई की गुलामी समाप्त—

एक बार गाँधीजी प्रिटोरियामें एक अंग्रेज नाईकी दूकान पर गये और हजामत बनवानी चाही, लेकिन रंग-द्वेष से कलुषित गोरे नाई ने काले वर्णवाले गाँधीके बाल काटने से साफ इनकार कर दिया। समानताके पुजारी गाँधीके हृदय पर इस घटनासे बड़ा आघात पहुंचा। उन्हें फिर यही सूझा कि यदि वे स्वयं बाल काटना सीख लें तो वे दूसरेका मुख ताकनेसे मुक्त हो जायेंगे। गोरेके अपमानसे मुक्त होनेका इससे बढ़कर उपाय क्या हो सकता था कि 'काला' गोरेका आसरा ही छोड़ देवे? यह घटना वैसे थी तो साधारण, किन्तु उसकी प्रतिक्रियाने गांधीको स्वावलम्ब, आत्माभिमान और आत्मसम्मान एवं आत्मप्रतिष्ठाको गंभीर शिक्षा दी। उनके लिये उस घटनाने स्वावलम्बन और सादगीके 'बोधित्व' को प्रदान करनेवाली ज्योतिका काम किया। गांधीने अब अपनी आत्म-प्रतिष्ठा कायम रखने और परावलम्बनके तिरस्कारसे मुक्ति पानेके लिए खुद बाल बनाने और काटनेका काम भी शुरूकर दिया। गोरे नाईसे तिरस्कृत होतेही वे सीधे बाजार पहुंचे, बाल काटनेकी कैंची खरीद लाये, और आईनेके सामने खड़े होकर स्वयं बाल काट डाले।[1] उन्हें इसकी कतई चिन्ता न हुई कि उनके इस कार्यसे लोग उनकी हंसी उड़ायेंगे।

बालशिक्षण---

गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकामें रंग-द्वेपसे 'भारतीय-प्रतिष्ठा' की हर प्रकासे रक्षाकरना अपने जीवनका एक मुख्य ध्येयही

१—वहीं पृष्ठ २३४–२३५.

बना लिया था। पग-पगपर गोरोंके रंग-द्वेषकी अनुभूतिने उन्हें भारतकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मानके लिए अधिकाधिक सचेष्ट और जागरूक कर दिया था। बालकोंकी शिक्षाके संबंधमें भी उनको इस रंग-द्वेषका मुकाबला करना पड़ा था। डरबन पहुंचनेपर गांधीजीके सामने अपने दो लड़कों और भानजेकी शिक्षाका प्रश्न आया। वहाँ गोरोंके स्कूल थे, लेकिन उनमें काले हिन्दुस्तानियोंके लड़के भर्ती न हो सकते थे, यद्यपि अपवाद स्वरूप गांधीजी के लड़कोंको उनमें भर्ती होनेकी स्वीकृति दे दी गई थी। पर गांधी अपनेको अन्य भारतीयोंसे कभी जुदा न समझनेवालोंमें रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि जब अन्य भारतीयोंके लड़कोंको गोरे स्कूलोंमें नहीं लिया जाता तो वे भी विरोधमें अपने लड़कोंको उनके स्कूलोंमें न भेजेंगे। यह भारतीयोंका अपमान था, और गांधी उस अपमानके लिए तैयार न थे। अतः गांधीजीने फिर 'स्वावलम्बन' का आश्रय लिया और खुद ही बच्चोंको पढ़ानेका प्रयत्न करने लगे; किंतु अकेले निभता न देखकर उन्होंने एक अंगरेज महिलाको ट्यूटरके बतौर नियत कर लिया।

गांधीजीमें भारतीयताका अनुराग और अभिमान इतना बढ़ा हुआ था कि वे घर पर अपने बच्चोंको अपनी मातृभाषा गुजरातीमें ही शिक्षा दिया करते और बात-चीत भी हमेशा उनसे अपनी मातृभाषामें ही करते थे।

विरागकी ओर—

इसी समयसे गांधीके हृदयमें 'महात्मा'के अंकुरने भी बल पकड़ना शुरू किया। विषय भोग अब उन्हें बुरी तरह पीड़ित करने लगे। उनके मनमें दिनों-दिन विरागका उदय होता गया, और इसी कारण कुछ समय बाद १९०६में उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका व्रत भी ले लिया। उनकी सन्तान भी काफी हो चुकी थी; अतः वे संयम पालनकी ओर अधिकाधिक जागरूक होते चले गये। उन्हें धीरे-धीरे यह भी प्रतीत हुआ कि लोक सेवामें वे तभी लीन रह सकते हैं, जब वे 'पुत्रैषणा' और 'धनैषणा' [1] से मुक्त होकर वान-प्रस्थका सा विरागमय जीवन ग्रहण करें। यही वह विशाल अनुभव था, जिसने उनके जीवनमें 'महात्मा' की विराटताको उत्कर्ष दिया है।

संक्षेपमें आज जो हम गांधीजीको 'महात्मा' के विशाल और विराट नामसे संबोधित करते हैं, उसका हेतु भारतीय श्रद्धालुता के बजाय हमें गांधीजीके जीवनकी उन अनुभूतियों, प्रतीतियों और स्वचिन्तन एवं मन्थनके छोटे-छोटे अंकुरों और कोपलोंमें ढूंढना चाहिए जो उन्हें बरबस ही महानताकी ओर खींच लेगये।

१—आत्मकथा भाग २-अध्याय ७. पृ. २२७.

गांधीजी और बोअर युद्ध

(१८९९-१९०१)

अध्याय ६

ब्रिटिश राजभक्ति—

गांधीजी प्रारम्भमें ब्रिटिश राज्यके शत्रु न थे। एक समय था जब कि ब्रिटिश राज्यके प्रति वे बड़ी ही भक्ति और श्रद्धा रखते थे। गांधीजीमें ब्रिटिश राजका द्रोह केवल गोरोंके रंग-द्वेष और अंग्रेजोंके विजातीय वा विधर्मीय होनेके कारणसे नहीं पैदा हुआ। लेकिन ब्रिटिश राजकी आन्तरिक बुराइयोंने ही जो उनको स्वयं देखने और अनुभव करनेको मिलीं, वास्तवमें उनको विद्रोही बनाया है। ब्रिटिश राजसत्ताकी असत्यता, अधर्म और अनीति यदि गांधीको त्रस्त न करतीं और भारत तथा विश्वके कल्याणके लिए उन्हें वे अशुभकर न प्रतीत होतीं, तो गांधी ब्रिटिश राजसत्ताको खण्डित करनेके बजाय उसे बनाने और संवारनेमें ही अपने जीवनको अर्पित कर देते। और जब तक गांधजीको यह प्रतीत होता रहा कि ब्रिटिश राज्य और शासन कर्ताओंकी नीति समिष्टि रूपसे प्रजा पोषक है, वे निःसन्देह अंग्रेजोंकी भाँति ही ब्रिटिश राज्यमें बराबर अपनी निष्ठा दिखलाते रहे। अपनी राजनिष्ठाके लिए उन्होंने अंग्रेजोंका राज गीत 'गॉड सेव द किंग' तक बड़े श्रमके साथ कंठ किया, और जहाँ-

तहाँ नेटालकी सभाओंमें अंग्रेजोंके साथ मिलकर उसे गाते भी रहे। गांधीकी यह राजनिष्ठा किसी स्वार्थ पर आधारित न थी। उनका तब विचार ही यह था कि क्योंकि राजा प्रजाके लिए बहुतसे हितकर कार्य करते हैं, इसलिए प्रजा पर राज्यका ऋण होता है, जिसको एक वफादार प्रजाके व्यक्तिको अदा करना चाहिए। अतः स्वामिभक्ति या वफादारीका गुण उनमें एक स्वाभाविक गुण था, और इसलिए अवसर मिलते ही वे अवश्य उन कार्यों में हाथ बँटाने लगते थे, जिससे राज्यकी प्रतिष्ठा बढ़े और उसे लाभ पहुंचे। १८९६ ई० सनमें गांधीजीने भारत लौटने पर जब उस समय महारानी विक्टोरियाकी 'डायमंड जुबली' की तैयारियाँ होती देखी थीं, तो उन्होंने भी अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करनेके लिए राजकोटकी एक समितिमें मिलकर 'जुबिली' में सहयोग दिया था।[1]

बोअर युद्ध—

इस ब्रिटिश राजनिष्ठासे ही प्रेरित होकर सन् १८९९ में जब अफ्रीकामें बोअर युद्ध छिड़ा तो गांधीजीने तुरन्त ब्रिटिश राज्य को सहयोग देनेका निश्चय किया, यद्यपि उनके निजी मनोभाव खुद बोअरोंके पक्षमें थे। गांधीजीने लिखा है कि "जब यह युद्ध छिड़ा तब मेरे मनोभाव बिल्कुल बोअरोंके पक्षमें थे; पर मैं यह मानता था कि ऐसी बातोंमें व्यक्तिगत विचारोंके अनुसार काम करनेका अधिकार अभी मुझे प्राप्त नहीं हुआ है... इतना ही कहना काफी है कि ब्रिटिश राज्यके प्रति मेरी वफा-

१—आत्मकथा, भाग. २ पृष्ठ १९०-१९१

दारी मुझे उस युद्धमें योग देनेके लिए जबर्दस्ती घसीट ले गई।" उनका यह भी विचार था कि ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे जब वे हकोंकी चाहना रखते हैं तो ब्रिटिश-प्रजाकी हैसियतसे उन्हें ब्रिटिश-राज्यकी रक्षामें सहायक भी होना चाहिए। साथ ही गांधीजी अंग्रेजोंमें फैली हुई इस आम धारणाको कि हिन्दुस्तानी जोखमके कार्योंमें नहीं पड़ते, स्वार्थके अलावा उन्हें और कुछ नहीं सूझता, अपने सेवा कार्यसे खतम कर देना चाहते थे। वे चाहते थे कि हम अंग्रेजोंको जतला दें कि हम जितना अपनी रक्षा और सुखके लिए तत्पर रहते हैं, उतना ही ब्रिटिश राज्यके सुख-दुःखकी भी चिन्ता किया करते हैं।

स्वयं-सेवक-दल —

अतः इन भावनाओंसे प्रेरित होकर गांधीजीने रणक्षेत्रमें घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिए हिन्दुस्तानी स्वयं-सेवकोंकी एक टुकड़ी तैयार की। स्वयं-सेवक दल तैयार कर लेनेपर गांधीजी ने नेटाल सरकारको लिखा कि उन्हें लड़ाईमें सेवा करनेका अवसर दिया जाय, किन्तु सरकारने धन्यवादके साथ उनकी सेवा लेनेसे इनकार कर दिया। पर गांधीजी किसीकी 'ना' से कभी घबराये और विचलित नहीं हुए हैं, उनकी आत्माने उन्हें जो निर्देश दिये, उनको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने संसारके 'हां'—'ना' की कभी कोई चिन्ताकी ही नहीं!

सरकारसे 'ना' मिलनेपर गांधीजी लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य श्री जेमसनसे मिले! किन्तु उसने भी गांधीको निराश किया। जेमसनको भारतीय सहायताका उल्लेख ही हास्यास्पद सा
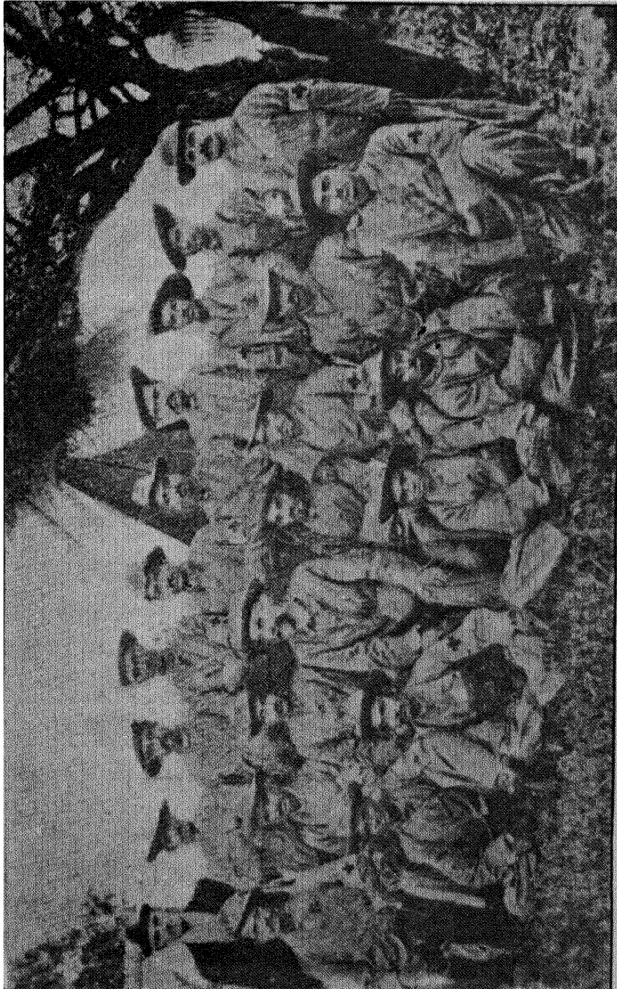
[सन् १८९९] भारतीय स्वयंसेवक दल के साथ [पृष्ठ ११४]

मालूम हुआ। उसने गांधीजीसे रूखे शब्दोंमें कहा, "तुम हिन्दुस्तानी युद्धसे बिलकुल अपरिचित हो। तुमतो खुदही सेनापर एक भार बन जाओगे; बजाय तुम लोगोंसे मदद मिलनेके हमें ही तुम्हारी रक्षाकी चिन्ता करनी पड़ जायगी"। "किन्तु", गांधीजीने विनम्र होकर कहा "क्या कोई ऐसा कार्य नहीं जो हम कर सकें ? क्या हम अस्पतालमें मामूली नौकरोंका कामभी नहीं कर सकते ? उसमें तो निःसन्देह कोई अधिक अक्लकी ज़रूरत न पड़ेगी।" लेकिन अहंसे फूले हुए जेमसनने फिर भी "ना" कहते हुए उत्तर दिया कि "उस सबके लिए भी शिक्षाकी आवश्यकता है।"

गांधी यह उत्तर पाकर निरुत्साहित तो हुए, किन्तु वे निराश न थे। उन्होंने तब अपनी योजना अपने मित्र श्री लाटनके सामने पेश की। उसने बड़ी उष्णताके साथ गांधीकी योजनाका समर्थन करते हुए कहा, 'यही चीज़ है, इसे अवश्य करो, यह तुम्हारे लोगोंको हमारी सबकी निगाहोंमें ऊँचा उठा देगी, और उनका हित साधेगी। जेमसनकी चिन्ता न करो।' अतः लाटनकी सद्-सलाह पर गांधीजीने दुबारा सरकारको प्रार्थना-पत्र भेजा. किन्तु वह भी बेकार साबित हुआ। [1]

इस निराश स्थितिमें एक और अंगरेज श्री बूथसे केवल गांधीको प्रोत्साहन मिल सका। डा० बूथने उन्हें पहले घायल सनिकोंकी शुश्रूषा करना सिखलाया। शुश्रूषाकी योग्यता हासिल कर लेने पर डा० बूथकी मददसे गांधीजी नेटालके बिशपसे

1—An indian patriot in south Africa, J. J. Doke. pp. 52-53.

मिले। बिशपको गांधीजीकी योजना बहुत पसन्द आई, और उसने सहायता देनेका पूरी तरह वचन दिया।

इसी बीच घटना-चक्रने भी गांधीके लिए एक सुयोगकी स्थिति पैदा कर दी। बोअरोंके युद्धकी तैयारी, दृढ़ता और वीरता ऐसी विकट साबित हुई, जिसके फलस्वरुप सरकारको अधिकाधिक रंगरूटोंकी आवश्यकता होने लगी। प्रत्येक व्यक्ति जो मिल सकता था, सरकार उसकी चाहना करने लगी थी। ब्रिटिश और बोअर इस समय गार्डन कॉलिनीके लिए जीवन और मरणके संग्राममें उलझे हुए थे।

घटनाएँ तेजीसे बढ़ रही थीं। "सर जार्ज व्हाइट २० अक्तूबरको लेडी स्मिथकी ओर धकेल दिये गये थे। नवम्बरको नगरकी तार लाइन भी काट डाली गई थी। तीसरी नवम्बर को रेलवे लाइन भी टूट चुकी थी। नवम्बर दस तक बोअरोंका कोलिन्सो और तुगेला की लाईन पर भी कब्जा हो गया था। नवम्बर अट्ठारहको दुश्मन इस्टकोर्ट तक आ पहुंचा था। नवम्बर २१ को वे मोई नदी तक बढ़ गये थे। नवम्बर २३ को हिल्डयार्ड ने दुश्मनों पर बिलोग्रेजके पास हमला कर दिया था। दूसरी ओर सर रेडवर्स बुलर सिविले में अपनी सेनाको एकत्रित करने पर लगा हुआ था, और किसी तरहसे नदीको पारकर लेडी-स्मिथको दुश्मनके दबावसे मुक्त करनेके लिए फिक्रमें था।"

अतः लड़ाई इस समय अत्यन्त संकटावस्था पर थी। डरबनमें बोअरोंके बढ़ावसे खलबली मची हुई थी, और अंग्रेज संत्रस्त हो रहे थे। ऐसी अवस्थामें अंग्रेज जनता वा सरकार जाति और रंगका विचार त्यागकर मदद पानेको स्वयं ही आतुर

हो रहे थे । वे अब परिस्थितिसे लाचार होकर सबको अपनाने और अंगीकार करनेको तैयार थे । सरकारको मोर्चे तथा घायलोंकी सेवाके लिए आदमियोंकी भूख-सी हो गई थी ।

अतः स्पष्ट है कि इसी घटना-चक्र और विषमावस्थासे मजबूर होकर नेटाल सरकारने भारतीयोंकी मदद लेना स्वीकार किया था, अन्यथा वह कभी मदद लेनेको तैयार न होती ! यही कारण था कि डा० बूथ और बिशप बेल्स ने गांधीजीकी योजनाको जब पुनः सरकारके सामने पेश किया, तो उसे तब तक मंजूर न किया गया जब तक कि बिशपने कर्नल जोहन्सटनसे मिलकर उन्हें युद्धकी तेजी और भीषणताका भान कराकर यह विश्वास न दिला दिया कि घायलोंकी सेवाके लिए उन्हें खुद ही अधिकसे अधिक आदमियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। फलतः अपनी ही बेवशीके विचारसे अन्तमें नेटाल सरकारने गांधीजीकी योजनाको स्वीकार किया और उन्हें एक भारतीय सेवादल कायम करनेकी आज्ञा दे दी गई ।[1]

इस प्रकार गांधीजीके नेतृत्वमें उनका सेवादल अब कार्य-क्षेत्र में उतरा । उनके सेवादलमें लगभग १,१०० व्यक्ति थे । इस दल में लगभग ३,००० स्वतंत्र हिन्दुस्तानी और शेष गिरमिटिया (कुली) थे । दलमें लगभग ४० मुखिया थे । डा० बूथ भी मेडिकल सुपरिन्टेण्डेन्टके रूपमें इस टुकड़ीके साथ थे । गांधीजी और उनके सेवादलने इतनी सक्रियता और तत्परतासे काम किया जिसके फलस्वरूप जनरल बुलरने खुश होकर जल्द ही गांधीजी को आसिस्सटेण्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट बना दिया ।

---

1. Ibid pp. 53-54-

गांधीजीके इस सेवादलका कार्य-क्षेत्र प्रारम्भमें युद्धके क्षेत्र से बाहर रखा गया था और उनकी रक्षाके लिए ख़ास चिन्ह भी लगा दिया गया था। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष युद्ध क्षेत्रकी हदके अन्दर भी काम करनेका उन्हें अवसर मिला।[1] यद्यपि सरकारकी इच्छा यह थी कि जहाँ तक हो सके भारतीय सेवा-दलको जोखिममें न डाला जाय, किन्तु विकट स्थितिमें पड़कर सरकारने कॉलेन्सोके युद्ध प्रारम्भ होनेके अगले दिन हिन्दुस्तानी सेवा-दलकी टुकड़ीको युद्धक्षेत्रमें पहुंचनेका आदेश दिया। इस आदेशके मिलते ही एक हजार भारतीय उपयुक्त समय पर युद्धक्षेत्रमें घायलोंको हटानेके लिए जा पहुंचे। बड़े जोश और तत्परतासे काम करते हुए वे ऐन आवश्यकताके समय पर चीवली भी पहुंचे, और सेवाके कार्यसे अनुप्रेरित होकर तथा मार्गके खतरोंकी परवाह न कर आगे बढ़ते-बढ़ते कॉलेन्सो तक चले आये और रातों दिन घायलोंकी सेवा करने में लगे रहे।

युद्ध इस समय काफी भीषणता पर था। मैदान और नदी के तट पर सर्वत्र घायल और मृतक ही छितरे पड़े थे। अनुमानतः लगभग १५० उस युद्धमें मरे थे, और ७२०के करीब घायल हुये थे। ऐसे कड़े मौके पर अंगरेजोंको मदद की सचमुच नितान्त आवश्यकता थी, जिसकी पूर्तिमें भारतीय सेवादलने अपने प्राणोंको भी लगा दिया और तुल्यानुरागके साथ अँगरेज साथियोंसे मिलकर निष्ठा और आत्मीयतासे अन्त तक उनकी सेवा करते ही रहे।

१—आत्मकथा-भा. ३ पृ. २३६-२३७

युद्धकी एक मधुर स्मृतिका गांधीजीने बड़े उत्साह और चाव से उल्लेख किया है। युद्धमें बहादुरीसे लड़ते हुये लार्ड राबर्टसके पुत्र लेफ्टीनेन्ट राबर्टसको मर्मान्तक गोली लगी थी। उनके शव को ले जानेका कार्य-भार हिन्दुस्तानी सेवा-दलकी टुकड़ीको मिला था जिसके अगुआ गांधीजी थे। गांधीजी लिखते हैं, इस दुःखके समय गोरे और हिन्दुस्तानियोंके दिल इस तरह पिघल कर एक दूसरेके लिए सहानुभूतिसे भर गये थे कि रास्तेमें थके और प्यासे होने पर जब उन्हें पानीका एक झरना मिला तो हिन्दुस्तानी टामियों और टामी हिन्दुस्तानियोंसे देर तक यही मधुर आग्रह करते रहे कि पहिले तुम पीओ और पहिले तुम पीओ।[1]

स्पियान्कोप (Spionkof) की लड़ाई—

कॉलेन्सो (Colenso) की लड़ाईके उपरान्त गांधीजीके 'भारतीय सेवा दल'को युद्ध कार्योंसे मुक्तकर डरबन वापिस भेज दिया गया। किन्तु उन्हें साथ ही यह बतला दिया गया कि दूसरा बुलावा भी उनके लिये जल्द आ सकता है। और यह दूसरा बुलावा एक महीनेके पश्चात् स्पियान्कोपकी लड़ाईके समय मिला। लेकिन इस एक महीनेके अवकाश-कालमें भी गांधीजी और उनका सेवा दल चुप हो कर न बैठा रहा। इस बीचमें सेवा दलके लगभग ३६ भारतीय नेताओंने अस्पतालमें रहकर कुशल डाक्टरोंकी देख-रेखमें चिकित्साका भी थोड़ा बहुत काम सीख लिया, क्योंकि वे युद्ध क्षेत्रमें घायलोंकी सेवाके लिये

१—वही भा-३ पृष्ठ २३८।

कता दर्शाते हुये कहाकि 'उन्हें मालूम है कि भारतीय सेवा दलको गोली बारूदकी हदके भीतर काम करनेसे मुक्त रखा गया है। किन्तु इस समय तीव्र आवश्यकता आ पड़ी है, और यद्यपि मैं इसके लिये जोर नहीं डाल सकता, तथापि यदि तुम्हारा सेवा दल नदीके उस पार जाकर काम कर सके तो बड़ी सराहना उस कार्यकी होगी।' नदीके उस पार जाना अवश्य खतरेसे खाली न था। दुश्मनकी गोली बारूद भीषणतासे चल रही थी। लेकिन गांधीका निर्भीक हृदय असहायोंकी सहायता लिये पीछे नहीं, हमेशा आगे रहा है। कृष्ण और गीताका भक्त असहायोंकी पुकार पर शान्त कैसे बैठे रह सकता था। अतः वापतेका इशारा पाते ही गांधीजी तुरन्त अपने साथियोंके पास पहुंचे और आतुरता भरे शब्दोंमें उनसे पूछा। "क्या वे चलेंगे" और योग्य सेना पतिके योग्य सैनिकोंने तेजीसे उत्तर दिया "जरूर"। गांधीजी खिलखिला उठे। उन्होंने एक दम अपने साथियोंको लिया और मार्गके खतरोंकी परवाह न करते हुये पुलको पार कर नदीके दूसरी तरफ जा पहुंचे, जहाँ आनेके लिए आर्त्तोंकी नाद उन्हें पुकार रही थी। निर्भीक गांधी और उनके साथियोंके आत्म-त्याग, सेवा और परिश्रमसे कई ब्रिटिश सैनिकोंकी जानें उस दिन अकाल ग्रस्त होनेसे बच गईं। श्री जे० डोकने भारतीय सेवा दलके इस कार्यकी प्रसंशा करते हुये लिखा है कि "उस दिन भारतीयोंकी निष्काम और सामयिक सेवा तथा प्रयत्नसे ही हमारे कई सैनिकोंके प्राण बच पाये।"

स्पियान्कोपके अलावा बालक्रॉञ्जाके युद्धमें भी गांधी और उनके सेवा दलने असीम त्याग और उत्साहसे घायल सैनिकोंको

सेवा की। बालक्रॉञ्जाके युद्धमें गोली बारूदकी बौछारोंके चलते हुये भी भारतीय तत्परता और निर्भीकतासे घायलोंको युद्ध क्षेत्रसे हटानेमें तल्लीन रहे। श्री डोक लिखते हैं कि "भारतीय अस्पतालके अर्दली, पानी भरनेवाले, घायलोंकी सेवा करनेवाले, तथा बीमारोंको ढ़ाने वाले कुली सबके सब इस विपत्तिमें सहायता पहुंचानेको कटिबद्ध थे। कई बार उन्हें गोरे सैनिकोंके हाथ तिरष्कार भी सहना पड़ा और गोलियोंकी बौछारोंका भी मुकाबला करना पड़ा, किन्तु तिस पर भी वे बड़ी शान्ति और शालीनताके साथ सब कुछ सहते हुये अपने कर्तव्य और टेक पर दृढ़ रहे और अंतमें सैनिकोंकि की अपरिमित सराहनाके पात्र बने।"[1]

गांधीजीके नेतृत्वमें भारतीय सेवा दलने अंगरेजोंकी जो सेवाएँ की, उनकी उस समय खूब प्रशंसा हुई। जनरल बूलरने खुद अपने खरीतेमें भारतीय सेवा दलके कार्योंकी प्रशंसाका उल्लेख किया। सेवा दलके नेताओंको उनकी इन सेवाओंके उपलक्षमें तमगे भी प्रदान किये गये। इन सेवाओंके फलसे हिन्दुस्तानियोंका गौरव भी अंगरेजोंकी नजरमें बहुत बढ़ गया। हिन्दुस्तानियोंके प्रति गोरोंने अपनी आन्तरिक प्रतिष्ठा और स्नेह जतलानेके लिये "आखिर हिन्दुस्तानी हैं तो साम्राज्यके वारिस ही" जैसे अभिप्राय रखने वाले गीत गाये।

युद्ध क्षेत्रमें जो भारतीय काम आये थे, सरकारकी तरफसे उनको पूर्ण सम्मान दिया गया और उनकी यादगारमें जोन्स बर्गमें एक विशाल स्मारक खड़ा किया गया। यह स्मारक पूर्वीय

1. M. K. Gandhi by j. j. Doke pp. 55-56.

साम्राज्यके उन बच्चोंकी सच्ची सेवाओंके प्रति, जिन्होंने गांधीजी के साथ मिलकर अंगरेजोंको उनके महान संकटमें मदद पहुंचाई थी, उत्पन्न हुई सद् भावनाओंका एक सुरभित पुष्प उपहार था।[1]

किन्तु युद्धकी सेवाओंसे गोरोंके साथ जो मधुर संबंध कायम हुआ, और युद्ध कालमें गोरों द्वारा हमारे जो प्रशंसाके गीत गाये गये, वह सब क्षणस्थाई साबित हुए। वास्तविक रूपमें हमारी स्थिति जरा भी न बदली और पहलेकी ही जैसी बनी रही। इतनी सेवाओंके बाद और प्राणोंको संकटमें डाल दक्षिण अफ्रीकाकी रक्षा करने पर भी वहाँके भारतीयोंको ब्रिटिश नागरिकोंके हक न मंजूर किये गये। अपितु हकोंके लिये आवाज उठाने पर उन्हें जेलोंमें ठूंस कर सड़ाया और बर्बाद किया गया, और आज तक किया जा रहा है। आज १९४६-१९४७ में भी गोरी अंगरेज जातिका रंग-द्वेष भारतीयोंकी बर्बादी पर तुला है। आज भी श्री स्मट्सकी गोरी सरकार २१,००००भारतीयों—हिन्दू, मुसलमान और सिख—के हकोंको छीनकर उन्हें पद दलित करने पर तुली है। भारतीयों एवं सम्पूर्ण एशियाईओंके विरुद्ध स्मट्स सरकारने 'दी ऐसियाटिक लैण्ड टिनियोर बिल', (The Asiatic Land Tenure Bill) यूनियन पार्लियामेंटके सामने पेश किया है। यह बिल श्री एम० ए० मिर्जा, जो साउथ अफ्रीकन इन्डियन डेलिगेशनके एक मेम्बर हैं, के अनुसार उन भारतीयोंके न्यायपूर्ण अधिकारोंको कुचलनेके लिये हैं, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके साम्राज्य निर्माणमें मदद पहुंचाई थी।[2] किन्तु स्मट्सकी गोरी

1. Ibid pp. 57.
2. Amrita Bazar patirka. March 23, 1947.

सरकार भुलावेमें है कि वह भारतीयोंको तोप और गोलोंसे त्रस्त और आतंकित कर उन्हें झुकाने और पददलित करनेमें सफलता प्राप्त कर सकेगी। भारतीय स्वाभिमान इस अत्याचार को न सहन करेगा। भारतीय मिटना पसंद करेगें, किन्तु अन्याय के सामने झुकना नहीं। खबरें आ रही हैं कि दक्षिण अफ्रीकाके दो लाख भारतीय, यदि भारतीयोंको बर्बाद करने वाले एशियाटिक लैन्ड टेनिओर व इन्डियन रेप्रिसेन्टेशन बिल पास किये गये, तो प्राणोंकी बाजी लगाकर सत्याग्रह करेंगे। भारतीय सम्मान, गौरव, और हकोंकी रक्षाके लिये और दूसरा उपाय हो क्या हो सकता है ?[1]

हमने यह पुस्तक लिखी थी १९४६ में ही और यह छप रही है कारण बस१९४७के अंतमें; अतः हम यहाँ पर पाठकोंकी सूचना के लिये यह नोट कर देना चाहते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाका मामला कुछ समय पहिले संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा संघमें पेश हुआ था और वह पास भी हो गया था, लेकिन १९४७ में नवम्बरकी सुरक्षा सभामें यूरोपियन गुटने उस प्रस्तावको गिरा दिया है। इसलिये दक्षिण अफ्रीकामें अपने अधिकारोंके लिये भारतीयोंका संघर्ष जारी है और सुरक्षा सभामें भारतीय मामलेको पेश करने वाली मास्को स्थित भारतीय राजदूत श्री विजय लक्ष्मी पंडितने १ दिसम्बर १९४७ को न्यूयार्कसे नैटाल भारतीय कांग्रेसकी प्रधान मंत्रीको एक संदेश देते हुये यह कहा है कि दक्षिण अफ्रीकामें जो सत्याग्रह होरहा है, वह तबतक चलता रहे, जबतक व्यक्तियों, और राष्ट्रोंमें भेद-भाव समाप्त नहीं कर दिया जाता। संसारमें

1. Ibid March 21, 1946.

मानव अधिकारोंके लिये जो लड़ाई चल रही है, दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उसका मुख्य अंग है। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय धैर्य न छोड़ें और प्रसन्नतासे सत्याग्रह करते रहें।

इस जनवरी (१९४८) से 'इमीगेरेन्ट रेगुलेशन एक्ट' (१९१३) के विरुद्ध वहाँ सत्याग्रह चल रहा है और सत्याग्रही नेटालसे ट्रान्सवालकी सीमाओंका निर्भीकतापूर्वक अतिक्रमण कर रहे हैं! दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार कठिनाईमें पड़ गयी है! सत्याग्रहियोंको रोकना उसे मुश्किल पड़ रहा है; जैसा कि वहाँ से आनेवाले समाचारोंसे पता चलता है।

मातृभूमिको

(१९०१-१९०२)

अध्याय ७

बोअर युद्धमें सेवादल बनाकर काम करनेसे गांधीजी हिन्दुस्तानियों वा गिरमिटियोंके निकटतम सम्पर्कमें चले आये थे। लड़ाईसे हिन्दुस्तानियोंमें संगठन और जागृति भी बढ़ चली थी। गांधीजीने उनमें 'हिन्दुस्तान' या मातृभूमिके प्रति भी आकर्षण पैदा कर दिया था। इससे पहिले विदेशोंमें बसे प्रवासी भारतवासी, अपनी मातृभूमिके प्रति अपना कोई विशेष कर्त्तव्य वा उत्तरदायित्व न समझा करते थे। लेकिन गांधीजीके प्रयत्नों ने उनमें अपने मातृदेशका प्रेम प्रबलतासे संचारित कर दिया। इसीका फल था कि जब १८९७ और १८९९ में भारतवर्षमें अकाल पड़े, तो दोनों समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंने भारतवर्षको खूब मदद पहुंचाई। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब निःसन्देह अपनेको पूरी तरह भारतकी ही सन्तान मानने और समझने लगे और परिणामतः भारतवर्षकी विपदाओंमें तबसे अपनी तरफसे सहायता पहुंचानेको हमेशा तैयार रहा करते हैं।

दक्षिण अफ्रीकासे भारतको—

गांधीजी प्रारम्भमें दक्षिण अफ्रीका इस विचारसे आये थे

कि वहाँके भारतीयोंका काम निपटाकर वे एक महीनेके भीतर भारत लौट आयेंगे, किन्तु वहाँके मामलोंमें उन्हें लग गये ६ वर्ष। इस लम्बे अरसेमें वे हर प्रकारसे वहाँ भारतीयोंकी सेवा करते रहे और भारतीय मान और गौरवको बढ़ानेमें संलग्न रहे, लेकिन तिसपर भी वे क्षणभरको अपने मुल्ककी याद न भूला सके और हमेशा इसी चिन्तामें घुलते रहे कि भारतभूमिकी सेवा करनेका कब उन्हें अवसर मिल सकेगा ?

वे हमेशा इसी अवसरकी ताकमें रहते कि अफ्रीकाका काम समाप्त हो और वे स्वदेश सेवाके लिये भारतको लौट आयें। उनका अन्तर हमेशा उन्हें यही इंगित किया करता कि उनका काम और उनकी आवश्यकता दक्षिण अफ्रीकासे अधिक भारतवर्षमें है। अतः १९०० के लगभग जब बोअर युद्ध समाप्त हो गया और बोअरों द्वारा दबाये गये प्रदेशों—लेडीस्मिथ, किंबरली, मेफिंग, ट्रान्सवाल और फ्रीस्टेट आदिपर फिरसे अँगरेजोंका कब्जा हो गया, तो गांधीजीने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें उनका काम अब समाप्त हो गया और इसलिए उन्हें भारतकी सेवाके हित स्वदेश लौट जाना चाहिये। उनके दिलमें स्वदेश सेवाकी कामना निःसन्देह बहुत प्रबलहो उठी थी। गांधीजीने अपनी यह अभिलाषा दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मित्रों और सहयोगियोंको भी जतला दी। दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अपने सुख-दुःखके साथीसे इस प्रकार विलग होना पसन्द तो न कर सके, परन्तु गांधीजीकी निःस्वार्थ इच्छाके विपरीत भी वे कैसे जा सकते थे ! अतः बड़ी मुश्किलसे अन्तमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मित्रोंने यह वचन लेकर कि यदि 'एक सालके अन्दर लोगोंको

उनकी ज़रुरत मालूम हुई तो उन्हें वापिस बुला लिया जावेगा, गांधीजीको लौटनेकी अनुमति दे दी।' गांधीजीने इस निःस्वार्थ शर्त और प्रतिबन्धको खुशी खुशी स्वीकार किया और १९०१ के अन्तमें देश लौटनेको तैयार हो गये।

गांधीजीकी बिदाई—

अपनी सेवाओंके फलसे गांधीजी दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों के कंठहार हो गये। अतः अपने प्यारे गांधीजीकी बिदाईमें अपने हृदयके प्रेमके साथ अपने खजानोंके रत्न भी उंड़ेल दिये। भारतीयों द्वारा उनकी प्रतिष्ठामें कई महत्त सभाएँ की गईं और अपना अतुल स्नेह जतलानेके लिए लोगोंने गांधीजीको सोना, चांदी और हीरेकी बहुमूल्य भेटोंसे ढंक दिया। उनकी लोक सेवाका यह विमल पुरस्कार था। किन्तु गांधीजी उन भाड़े और किरायेके सुधारकों वा सेवकोंमेंसे नहीं हैं, जो अपनी सेवाओंका एहसान मानते और उसका मूल्य चाहते हैं। गांधीजीका तो प्रारंभसे ही यह निश्चित मत रहा है कि सेवा बेचनेकी चीज नहीं, जो उसका किसीसे दाम लिया जावे! अतः अपनी पत्नी कस्तूराबाईकी अनिच्छा होते हुए भी गांधीजीने अपने तथा स्व० कस्तूरबाको भेंटमें मिलीं तमाम चीजें जिस समाजसे मिली थीं, उसी की सेवाके लिए वापिस लौटा दीं।

उनके निर्देश पर उपहारकी वस्तुओंका एक ट्रस्ट बना दिया गया और घोषित कर दिया गया कि उसका उपयोग आवश्यकतानुसार लोक-सेवाके लिए किया जावेगा। गांधीजीकी इस

निःस्वार्थ प्रवृत्तिने लोगोंको और भी मोहित कर डाला; उन्हें ताज्जुब था कि एक व्यक्ति इतना निःस्पृह और स्वार्थ रहित भी हो सकता है? किन्तु तब किसे मालूम था कि गांधी 'लोकसेवा' के लिए ही पैदा हुआ है, और जिसे आगे चलकर महात्मा होना है—वह भला लोभ और मोहके निचले स्तरमें कैसे विचर सकता है? गांधीजीके इस ऊंचे त्यागकी महत्ताका कस्तूरबाने भी अपने आगेके जीवनमें प्रत्यक्ष अनुभव किया और समझ लिया कि सुवर्णका प्यार मनुष्यको गिराता है, और भवका प्यार भगवानसे बिछुड़ाता है। 'बा'की इसी अनुभूति और प्रतीतिने 'बा'को गांधीकी पूर्ण छाया और राष्ट्रकी माताके पदको पहुँचाया है! यह भी स्मरण रहे कि गांधीकी इस निःस्पृहताका ही परिणाम है कि जब कभी अपने रचनात्मक कार्योंके लिए वे धन चाहते हैं तो उनके मुख खोलतेही सारा देश अपनी थैलियोंके मुख खोल दिया करता है।

भारतकी राष्ट्रीय महासभामें प्रथम बार—

बिदाईका समारोह खतम होतेही सन् १९०१ के अन्तमें गांधीजी दक्षिण अफ्रीकासे सपरिवार भारत लौट आये। उस साल दिसम्बर १९०१ को भारतकी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका कलकत्तामें अधिवेशन बुलाया गया था। अधिवेशनके सभापति दीनशा एदलजी वाच्छा थे। गांधीजीको भी महासभा की कार्यवाहियोंमें भाग लेनेकी इच्छा थी। इसके दो कारण थे; एक तो यह कि कांग्रेसकी कार्यवाहियोंका प्रत्यक्ष अनुभव कर अपनेको वे हिन्दुस्तानकी सेवाके लिए तैयार करना चाहते थे,

और दूसरे भारतीय महासभामें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके हकोंके बारे वे एक प्रस्ताव रखवाना चाहते थे। अतः इन अभिप्रायोंसे अनुप्रेरित होकर गांधीजी भी बम्बईसे उसी ट्रेनसे कलकत्ताको रवाना हुए जिससे तत्कालीन महासभाके कर्णधार 'बम्बईके बिना ताजके बादशाह' फिरोजशाह मेहता और महासभाके मनोनीत सभापति दीनशा वाच्छा आने वाले थे। गांधीजी अपने दक्षिण अफ्रीकाके प्रस्तावके लिए इतने बेचैन हो रहे थे कि वे मार्गमें ही फिरोजशाहसे मिले और उनसे महासभामें प्रस्ताव पेश करानेका वचन ले लिया।

फिरोजशाहकी इस भेंटसे गांधीजीको एक नया अनुभव भी हाथ लगा। फिरोजशाहने अफ्रीकाके प्रस्ताव पर उदासीनताके साथ कहा था "प्रस्ताव तो हम जैसा तुम कहोगे पास कर देंगे; पर पहिले यही देखो न कि हमारे ही देशमें हमें कौनसे हक़ मिल गये हैं? मैं मानता हूं कि जब तक अपने देशमें हमें सत्ता नहीं मिली है, तबतक उपनिवेशोंमें हमारी हालत अच्छी नहीं हो सकती।"

गांधीजीको यद्यपि तब यह वक्तव्य सुनकर परेशानी-सी हुई थी, किन्तु मेहताके कथनकी सच्चाईमें उन्हें कोई त्रुटि न मालूम दी। बात सही थी, गुलाम मातृभूमि अपने उपनिवेशोंमें बसे भाईयोंको स्वतंत्रता दिलानेमें समर्थ हो ही कैसे सकती थी? गांधीजीने अपने अमूल्य जीवनके प्रारंभिक २१ वर्ष अफ्रीकाकी सेवामें ही लगाये, और यद्यपि बहुतसे अन्यायोंको उन्होंने मिटवाया भी, परन्तु आज १९४६-४७ में भी वहां ऐसे ऐशियाटिक लैन्ड टिनियोर बिल आदि पेश किये जा रहे हैं, और ऐसी

असमानता बरती जा रही है जो भारतीयोंके मान और मर्यादा एवं स्थितिको मेट देनेवाले हैं ! यह सब हुआ, क्योंकि भारतवर्ष तब परतंत्र था ! पर यदि उस समय भारत भी स्वतंत्र होता तो उसके राष्ट्र-जनोंके साथ विदेशी उपनिवेशोंमें कोई ऐसा अपमानका व्यवहार न कर सकता था ! अब भारत स्वतंत्र है और इसलिए हमें आशा है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार दक्षिण अफ्रीका के भारतीयोंके हक और सम्मानको जब तक प्रतिष्ठित नहीं कर लेगी, चैन न लेगी।

१६०२ की महासभाका स्वरूप—

कलकत्ता पहुंचनेपर गांधीजीको उसी रिपन कालेजमें ठहराया गया जहाँ पर लोकमान्य भी ठहरे हुए थे। गांधीजीको महासभाके प्रबन्धको देखकर दुःख और आश्चर्य हुआ। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय महासभा, जिसे वे हिन्दुस्तानके त्राणका स्रोत और एकमात्र साधन समझते थे, की आन्तरिक अव्यवस्था और शिथिलतासे उनका स्तम्भित और दुःखी होना स्वाभाविक ही था। ऐसी महासभा क्या कुछ कर सकेगी, वे यही सोचने लगे !

स्वयंसेवक—

महासभाके स्वयंसेवक भी उन्हें ढीले-ढाले मिले। उनमें गांधीजीने सेवाकी कामना तो देखी, किन्तु उस प्रकारकी शिक्षा और सेवाके अभ्यासका उनमें बिलकुल अभाव पाया। निःसन्देह, केवल इच्छा होनेसे ही कोई सेवक बनकर सेवा थोड़े ही कर सकता है। सेवक होनेके लिए तो पहले 'सेवा करना' जानना ज़रूरी है,

और सेवा धर्म कहते किसे हैं, इसका भी मर्म जानना आवश्यक है! लेकिन १९०१ की महासभाके स्वयंसेवक इन भावों और विचारोंसे अनभिज्ञ ही नहीं,अपरचित भी थे। अतः वे क्या सेवा किसी की कर पाते? हाल यह था कि उन्हें जो भी काम सौंपा जाता, वे एक दूसरे पर टालते फिरते, और परस्पर लड़ भी लिया करते थे। इस तरह परस्पर विरोध रखनेवाले और काममें टालाटूली करनेवाले देशकी सेवाके कैसे योग्य हो सकते थे। उनसे आशा ही क्या की जा सकती थी? परन्तु गांधीजी की पैनी दृष्टिको यह मालूम करते देर न लगी कि दोष असलमें स्वयंसेवकोंका नहीं-महासभाका है। वे लिखते हैं कि सेवाके लिए "एक तो इच्छा होनी चाहिए और फिर अभ्यास। इन भोले भाले स्वयं सेवकोंमें इच्छा तो बहुत थी, पर तालीम और अभ्यास कहाँसे हो सकता था?" क्योंकि जिस महासभाको उन्हें शिक्षा और दीक्षा देकर और अभ्यास कराकर सेवाके योग्य बनाना था, वह "सालमें तीन दिन होती और फिर सो रहती।" अतः गांधीजी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि "हर साल तीन दिनकी तालीमसे कितनी बातें सीखी जा सकती हैं?"

प्रतिनिधि—

जो हाल गांधीजीने स्वयंसेवकोंका देखा, वही हाल उन्होंने कांग्रेसके प्रतिनिधियोंका भी पाया। देशके ये प्रतिनिधि सेवाका धर्म वा मर्म कुछ न समझते थे। अपना सारा काम वे दूसरोंके हाथोंसे ही किया करते थे। तब भला वे दूसरोंकी क्या सेवा करते? किन्तु इसका कारण भी यही था कि महासभासे उन्हें

कोई नियमित और स्वतन्त्र तालीम नहीं मिला करती थी; "उन्हें भी" गांधीजी लिखते हैं, "तीन ही दिन तालीम मिलती थी।"

छुआ-छूत —

महासभामें भाग लेने वाले प्रतिनिधियोंमें गांधीजी का जाति-पांतिके भेदभाव भी बड़े जटिल और गहन रूपमें देखने को मिले। उन्होंने देखा कि लोगोंमें छुआ-छूतकी बीमारी बड़े उग्र और भयङ्कर रूपमें घर किये हुए है। यह जाति-भेद और विषम वर्ण-धर्म उन्हें असहनीय प्रतीत हुआ। गौतम बुद्धकी भांति उन्हें भी भासित हुआ कि यही 'भेद' हमारे दुःखोंका मूल है। समाजकी इस दुरावस्थाको देखकर सहसा उनके मुँहसे "ओफ" की मार्मिक पुकार निकल पड़ी। उनका यह ओफ जितना मार्मिक और करुणार्द्र था, उतना ही सारगर्भित भी। गांधीजीके हरिजन आन्दोलनका महान वृक्ष उनकी वेदनाके इस 'ओफ' से ही तो उगा और विकसित हुआ है।

गन्दगी—

गंदगी भी गांधीजीको महासभाके अधिवेशनमें विराट रूपमें देखनेको मिली। उन्होंने बतलाया है कि गंदगीकी वहाँ कोई हद ही न थी और पाखाने तो इतने गंदे थे कि वे लिखते हैं, "उनकी बदबूसे आज भी रोंगटे खड़े हो उठते हैं।" इस गन्दगीकी ओर गांधीजीने वहांके स्वयंसेवकोंका ध्यान आकर्षित भी किया, लेकिन वे कब ध्यान देनेवाले थे? अपितु वे गांधीजीके इस इशारेसे चकित ही हुए, और इसलिए उन्होंने गांधीजीको

उत्तर दिया कि "यह तो भंगीका काम है।" गांधी भी यह प्रत्युत्तर पाकर अवाक् हो उठे और उन्होंने तुरन्त ही झाड़ू मँगाकर खुदही अपना पाखाना साफ कर लिया ! [1] अपने 'स्व' पर स्थित रहने वाले स्वावलम्बी गांधीको दूसरेके मुँह ताकनेकी आवश्यकताही क्या थी ? वरन् अपने इस कार्यसे उन्होंने अज्ञान और अहंकारके टीले पर खड़े स्वयंसेवकोंको अवश्य ही उनके थोथे बड़प्पनका आभास करा दिया होगा। एक बात यहाँ पर याद रखनी चाहिये कि महासभाके इन दृश्यों—स्वयं सेवकों और प्रतिनिधियों की अज्ञानता, महासभाकी क्षणिक-चेतनता, छूआछूतकी बीमारी और गन्दगी आदिको देखकर गांधीजीको तभी पता चल गया था कि भारतीय राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये उन्हें क्या-क्या न करना होगा ? उन्हें यह भी मालूम हो गया था कि भारतको उठाने, जगाने और महान बनानेके लिये किन साधनों तथा उद्देश्योंको सामने रखकर उनको देशके राष्ट्रीय आन्दोलनको उत्थित करना है ? इसीलिये गांधीजीने जब आगे चलकर इस देशका कार्यभार अपने कन्धों पर लिया, तो जो साध्य और साधन उन्होंने महासभा और देशके सामने रखे, वे सब हमें इन्हीं अनुभूतियों पर आधारित मिलते हैं।

अनुभवकी भूख—

गांधीजीका अपने भविष्य जीवनमें भारतकी महासभामें मिलकर देश की सेवा करनेका प्रारम्भसे ही-पूरा इरादा था, इसलिये वे महासभाको हर प्रकारसे समझ और बूझ लेना चाहते थे। वे चाहते थे कि महासभाके अन्दर पैठ कर उसकी

१—आत्मकथा, भाग ३ पृ. २४६-२४७

वास्तविकताको वे निरख और परख लें। अतः महासभाके अधिवेशनको देखने भरसे वे तृप्त न हुए। उनकी इच्छा हुई कि वे महासभाके दफ्तरमें घुसकर और सेवाका कुछ भार अपने ऊपर लेकर सार्वजनिक कार्यका अनुभव भी प्राप्त कर लें। इस इच्छाके साथ दफ्तर में जानेपर उनको महासभाके सेक्रेट्रीने चिट्ठियोंके उत्तर लिखनेका काम दिया। सेक्रेट्रीको प्रारम्भमें आशा न थी कि यह युवक इस मामूली काम करनेको तैयार हो जायेगा। लेकिन जब गांधी सहर्ष उस छोटे कार्यको करनेके लिये, अफ्रीकाके भारतीयोंके नेता होते हुए तैयार होगये तो सेक्रेटरीको भी मालूम हो गया कि यह कोई 'सच्ची सेवा भावका युवक' है। निःसन्देह जो देश, समाज वा राष्ट्रके सेवक होते हैं, उनमें अहंकार क्योंकर प्रवेश कर सकता है—वे तो दूसरोंकी सेवाके लिये हमेशा झुककर चलते हैं, निम्नको महान समझते हैं और कामको देवता मानते हैं, और इसीलिए संसार भी इन झुकनेवालोंको झुककर सिर पर रखता है।

महासभाके दफ्तर या आफिसमें काम करनेसे गांधीजी उसके तंत्रसे परिचित हो गये। दफ्तरमें घुसनेसे उस समयके बड़े नेताओं—गोखले, तिलक, सुरेन्द्रनाथ आदिके भी वे निकट सम्पर्कमें आ सके। महासभाकी विशालता और भव्यताको देखकर वे खूब प्रभावित हुये, किन्तु उन्हें साथ ही यह अनुभवकर दुःख भी हुआ कि महासभामें समयका बड़ा अपव्यय किया जाता है। उन्होंने देखा कि एक तरफ तो वहां एक आदमीके करनेके काममें उससे अधिक आदमी लगाये जाते हैं तो दूसरी तरफ बहुतसे जरूरी कामोंको कोई भी नहीं किया करता![1] उन्हें इससे भी दुःख

---

१. वही पृष्ठ २४९

हुआ कि महासभामें राष्ट्रीय भाषाकी जगह केवल अंग्रेजीका उपयोग किया जाता है। पर उदार-गांधी इससे निराश न हुये। उन्हें महासभामें भविष्यके एकमात्र विशाल राष्ट्रीय संगठनके अंकुर स्पष्ट दीखते रहे, और तत्कालीक कमियोंके बारे उन्होंने यही सोचा कि शायद तबकी परिस्थितियोंमें उससे अधिक सुधार होने संभव ही न होंगे। यही कारण है कि महासभामें जब गांधीजीका दक्षिण अफ्रीका का प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ तो उन्हें यह महसूस करके खुशी ही हुई कि 'महासभामें पास हो जानेसे उनके प्रस्तावको सारे भारतवर्षका, समर्थन प्राप्त हो गया है।'[1]

गोखलेके साथ एक मास---

कलकत्तेमें महासभा समाप्त होनेके बाद गांधीजीने एक महीना वहीं ठहरनेका विचार किया। गोखलेको जब मालूम हुआ कि गांधीजका विचार कलकत्तेमें रुकनेका है, तो उन्होंने गांधीजीको अपने ही साथ रहनेका आग्रह किया। गोखलेकी दूरदर्शी पैनी निगाहोंने मालूम कर लिया था कि गांधी वह युवक है, जिसके जरिये भविष्यमें महासभाका बहुत काम होगा।

लेकिन गोखलेसे निमंत्रण मिलनेपर भी गांधीजी अपनी स्वाभाविक संकोचशीलताके कारण दो दिन तक भी उनके यहाँ न जा सके। अन्तमें गोखले स्वयं इण्डिया क्लब पहुंचे (जहाँ गांधीजी ठहरे हुये थे) और उन्हें अपने साथ लेते आये। गोखलेने प्रेमभरी झिड़कीके साथ गांधीजीको इस संकोचशीलताको त्याग देनेके लिये कहा, और इस बातके लिए उन्हें प्रेरित किया कि "जितने लोगोंके

१. वही; पृष्ठ. २५२.

सम्पर्कमें आ सको, तुम्हें आना चाहिये। मुझे तुमसे महासभाका काम लेना है।"

गोखलेके साथ गांधीजीकी यह मित्रता बढ़ती ही चली गई। गोखले उन्हें अपने छोटे भाईकी तरह प्यार करते और अपनी कोई बात उनसे गुप्त न रखते थे। गांधीका हृदय उनके इन व्यवहारों पर मुग्ध हो उठा। किन्तु गोखले गांधीजीके जीवनकी नियमितता, उद्योगशीलता और स्वावलम्बनकी आदतको देखकर खुद भी बहुत प्रभावित थे। उन्हें तभी विश्वास हो गया था कि गांधीमें महान् व्यक्ति छिपा है। इसी कारण गोखले बड़े प्यारसे गांधीजीका उन सब बड़े आदमियोंसे परिचय करा दिया करते जो उनसे मिलने आया करते थे। प्रोफेसर डा० प्रफुल्लचन्द्र रायके साथ भी गोखलेने ही गांधीका प्रथम परिचय करवाया था जो अन्त तक कायम रहा।

गोखलेके संपर्कने गांधीजीके लिए एक सिद्धहस्त गुरूका काम किया। गांधीजी गोखले की कार्यपद्धति से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि गोखलेके समयका कोई भी क्षण व्यर्थके कामोंमें नहीं जाता, और उनके समस्त कार्य और बातें केवल देशके संबंधमें ही हुआ करती हैं। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें सर्वदा बेचैन किये रहती है; तथा देश की स्वाधीनता ही उनके सामने एक और निश्चित लक्ष है। निःसंदेह गांधीजीका यह बड़ा ही सौभाग्य था कि उन्हें अपने मुल्कके एक ऐसे महान और राष्ट्रनिर्माताके चरित्र और गुणोंको देखने तथा समझने वा अध्ययन करनेका इतने निकटसे अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें प्रत्यक्ष हो गया कि अपने मुल्क की सेवा

करने के लिए जिसका कि वे दृढ़ इरादा कर चुके थे, किन गुणों और उपायोंका अवलम्ब लेकर उनको कार्यक्षेत्रमें उतरना और आगे बढ़ना है।

बड़े आदमियोंसे भेंट—

गोखलेके साथ रहते हुए गांधीजी कलकत्तेके कई ईसाई और ब्रह्म समाजके नेताओं एवं गणमान्य व्यक्तियोंसे भी मिलते रहे और सबको दक्षिण अफ्रीका की स्थितिसे परिचित कराते गये। गांधीजीने इन भेंटोंका जिक्र करते हुए लिखा है :—"इसी महीनेमें मैंने कलकत्ते की एक-एक गली की खाक छान डाली। प्रायः पैदल ही जाता था। इसी समय मैं न्यायमूर्ति मित्रसे मिला। सर गुरुदास बनर्जीसे भी मिला। इन सज्जनों की सहायता दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए जरूरी थी।"[1] इन भेंटोंके साथ साथ गांधीजीने धार्मिक स्थानोंका भी भ्रमण किया। एक दिन गांधीजी काली मंदिर भी गये। मंदिरको जाते समय रास्तेमें उन्होंने बलिदानके बकरोंके कतारको जाते हुए देखा। गांधीका वैष्णव हृदय निरीह बकरोंकी भोली सूरतोंको देखकर भीतर ही भीतर कराह उठा। मंदिरमें पहुंचने पर उनका हृदय वहाँ आनेकी भूलपर और भी क्षुब्ध हुआ। वे हत्याके उस निर्मम और करुण दृश्यको देख न सके। वे लिखते हैं:—"...हम मन्दिरमें पहुँचे। सामने लहूकी नदी बह रही थी। दर्शन करनेके लिए खड़े रहनेकी इच्छा न रही। मेरे मनमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। मैं छटपटाने लगा।" क्यों

१. वही पृष्ठ. २५८

न उनका विश्व प्रेमी करुण हृदय छटपटाता,—वह हृदय जो सब जीवोंके प्रति समान स्नेह रखता है, जो जीवोंमें कोई अन्तर नहीं मानता, जो वकरेके प्राणोंका मूल्य मनुष्यके प्राणोंके मूल्यसे कम नहीं आँक सकता। उन्हें इस बातसे और भी खेद हुआ कि "ज्ञानी, बुद्धिमान, त्याग वृत्ति और भावना-प्रधान बंगाल क्योंकर इस हत्याको सहन कर रहा है।" उन्हें दुःख हुआ कि मनुष्य देवताओंके बहाने अपने शरीरके पोषण और जिह्वाके स्वादके लिए असहाय बकरोंकी हत्या किया करता है, और अपने पापसे देव मन्दिरको भी कलंकित करता फिरता है।

गांधीजीका विश्वास है कि बकरोंको इस क्रूर होमसे बचानेके लिए बहुत आत्म-शुद्धि और त्यागकी आवश्यकता है, और यद्यपि उस हदकी आत्म-शुद्धि और त्याग उन्हें अपनेमें नहीं प्रतीत हुई जिससे वे स्वयं इस काम को उठा सकें, लेकिन उनकी आशा है कि 'कोई ऐसा तेजस्वी पुरुष अथवा सती नारी अवश्य कभी न कभी भूतल पर अवतरित होगी जो इस महापातकसे मनुष्य को बचायेंगे, निर्दोष जीवोंका त्राण करेंगे और मन्दिरको शुद्ध करेंगे।'[१]

काली मन्दिर को देखनेके बादसे बंगाली जीवनका अध्ययन करनेके निमित्त गांधीजी वहाँके लोगों और धार्मिक संस्थाओंका बारीकीसे निरीक्षण करने लगे। गोखलेकी कृपा और सहयोगसे वहाँके बड़े लोगों और बड़े परिवारोंके साथ उन्हें सम्बन्ध स्थापित करनेमें देर न लगी। वे कई प्रमुख ब्रह्मसमाजियोंसे, ईसाइयोंसे तथा स्वामी विवेकानन्द और बहन निवेदितासे भी मिले। गांधीजी

१—वही पृष्ठ, २५९-२६०।

बहन निवेदिताके रहन-सहनके ढङ्ग और उनकी शानको देखकर भौंचक्के रह गये, पर साथ ही उन्हें यह देखकर बड़ी खुशी भी हुई कि निवेदिताका 'हिन्दू धर्मके प्रति अगाध प्रेम है।'

इस प्रकारसे गोखलेके साथ रहते हुए सारा महिना गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकाके प्रचार-कार्य और धार्मिक संस्थाओंके अध्ययन करने तथा लोगोंसे भेंट करनेमें व्यतीत किया। उनके जीवनका यह एक मास जितना सुखप्रद रहा उतना ही शिक्षाप्रद भी! निःसन्देह यह महीना उनके जीवनका 'चिरस्मरणीय' महीना था।

इसी बीच गांधीजीने पहले पहल ब्रह्मदेशकी भी यात्राकी। वहाँ की अवस्था भी उन्हें हिन्दुस्तानकी ही भाँति गिरी हुई दिखाई दी। लेकिन वहाँ की स्त्रियोंमें उन्होंने पुरुषोंसे भी अधिक उत्साह और शौर्य पाया। ब्रह्मदेशसे गांधीजी जल्दी ही लौट आए। उनका बंगालका काम भी पूरा हो चुका था; इसलिए गांधीजीने अब गोखलेसे राजकोट लौट जानेके लिये आज्ञा माँगी।

प्रथम वार तीसरे दर्जे में--

बंगालसे राजकोट आते समय गांधीजीने प्रथम बार रेलके तीसरे दर्जेमें सफर करनेका निश्चय किया। उन्हें गरीबों और दुःखियोंके दुःखोंका इलाज करना था और इसीलिए वे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी हालत और दुःखोंको स्वयं देख और समझ लेना चाहते थे। गोखले पहले तो उनके इस विचार पर हँसे, किन्तु उनकी आन्तरिक भावनाओंको समझ लेनेपर उनके विचारको खूब पसन्द किया और सहराया। गोखलेने उन्हें

सफरके लिए एक पीतलका डिब्बा भी भोजन ले जानेके लिए भेंट किया। इस प्रकार थोड़ासा जरूरी सामान साथ लेकर गांधीजी राजकोटके लिए गाड़ीके तीसरे दर्जेमें सवार हो चल दिये। तीसरे डब्बोंमें प्रथमतः गांधीजीको अपार गंदगी ही देखनेको मिली। गांधीजीके इस अनुभव करनेके ४०,४५ वर्षके बाद अब भी तीसरे दर्जोंकी हालतमें गंदगीके लिहाजसे कोई सुधार नहीं हो सका है। गांधीजी खुद कहा करते हैं कि अब भी हालत करीब वैसी ही है। उन्होंने लिखा है कि--"तीसरे दर्जेके यात्रियोंको भेड़ बकरी-सा माना जाता है, और उनके बैठनेके डब्बे भी भेड़ बकरियोंके लायक होते हैं।"

गांधीजीकी इस यात्रामें काशी, आगरा, जयपुर और पालनपुर आदि नगर मार्गमें पड़ते थे। इन सब नगरोंमें वे अनुभव करनेके लिए एक-एक दिन रुके। प्रत्येक नगरमें वे बहुधा साधारण यात्री की तरह धर्मशालाओं या पण्डोंके घरपर ठहरे। ऐसा करनेके दो कारण थे। एक तो ऐसी जगहोंपर ठहरनेसे साधारण लोगोंके सम्पर्कमें आनेसे उनकी अवस्था वा स्थितिका अध्ययन किया जा सकता था, और दूसरे इन जगहोंमें ठहरनेसे खर्चभी कम पड़ता था। उनकी मितव्ययता इसीसे साबित है कि कलकत्तासे राजकोटकी इस लंबी यात्रामें रेल किराये सहित उनके कुल इकतीस रुपये खर्च हुए। अल्प-व्यय और अल्प-संचयके सिद्धांतों का मर्म गांधीजीने पूर्ण रूपसे समझ लिया था। वे अच्छी तरह जान गये थे कि ऐश्वर्यका पूजारी और धनका लोभी होकर समाज और संसारकी सेवा नहीं की जासकती। निःसन्देह ऐश्वर्य और धनका प्रेम हमें जन-उत्पीड़क तो बना सकता है, जन-रक्षक मुश्किल ही।

काशीमें एक दिन--

अपनी यात्रामें एक दिनके लिए, जैसा कि गांधीजी इरादा किये थे, काशीमें भी रुके। यहाँ भी वे एक पण्डेके घरही ठहरे। यथा विधि गंगा स्नानकर और पूजासे निवृत्त होकर गांधीजी दिनमें विश्वनाथके दर्शन करने गये। वहाँ जाकर और वहाँकी गंदगी तथा अशान्तिको देखकर गांधीके भावुक हिन्दू हृदयको गहरी चोट लगी। उन्हें आशा थी कि ऐसे स्थान-भगवानके निकेतनमें पहुंचकर, मनुष्यको कुछ देर ध्यानावस्थित होकर आत्मचिन्तन करनेका अवकाश प्राप्त हो सकेगा, किन्तु यह आशा दुराशा ही साबित हुई। अशांति और मलिनताके सिवा उन्हें मन्दिरमें कुछ हाथ न लगा। इस दुर्दशाका कारण निःसन्देह मन्दिरके संचालकोंकी कर्तव्यहीनता है। गांधीजीने स्वयं लिखा है—"संचालकोंका कर्तव्य यह है कि काशी विश्वनाथके आस-पास शान्त, निर्मल, सुगंधित, स्वच्छ वातावरण-क्या बाह्य और क्या आन्तरिक-उत्पन्न करें, और उसे बनाये रखें....।" पर संचालक जो केवल अपने फायदेके सिवा कभी कुछ सोचतेही नहीं ऐसा क्यों करने लगे। भारतकी स्वतंत्र सरकार जब मन्दिरोंका राष्ट्रीयकरण करे तभी ऐसा होना संभव होसकता है। मंदिरोंका संचालन जब राष्ट्रीय सरकार अपने हाथमें ले और मंदिरकी पूजाके लिये केवल वेतन भोगी पण्डे नियत कर शेष मंदिरकी देखरेखका कार्य सरकारी अधिकारियोंके सुपुर्दकर देवे तभी हमारे देव-मंदिरोंकी अवस्थामें सुधारकी कल्पनाकी जा सकती है।

विश्वनाथके मंदिरके बाद गांधीजी 'ज्ञान-वापी' गये, पर वहाँ भी उन्हें निराश होना पड़ा। वही गंदगी वहाँ भी थी। अपने देवस्थानोंकी ऐसी भ्रष्टावस्थासे गांधीका मन अपनेहीमें घुटने सा लगा। वे यहाँ ईश्वरकी खोजमें आये थे, पर मिली गंदगीका कल्मष! लेकिन इस 'गंदगी' से भी गांधीके महान हृदयको एक महान अनुभवकी प्राप्ति हुई। उन्हें इससे ईश्वरकी महान करुणाका ज्ञान हुआ। वे लिखते हैं--"परमात्माकी दयापर जिसे शंका हो, वह ऐसे तीर्थ क्षेत्रों को देखें। वह महायोगी अपने नामपर होनेवाले कितने ढोंग, अधर्म और पाखण्ड इत्यादिको सहन करते हैं।"[1] सच है, महानको सर्वत्र और सब वस्तुओंमें—शुद्ध अथवा अशुद्ध, मलिन या अमलान, महानता और श्रेष्ठताकी ही झलक देखनेको मिला करती है।

मिसेज ऐनी बेसेंटके दर्शन—

यह भी सही है कि दूसरेको महान समझकर पूजनेवाला ही खुद महान होता है। झुकनेवाला ही ऊँचा उठता है, और दूसरेका आदर करनेवाला ही जगतमें आदर पाता है। गांधीजी जब काशीमें आये मिसेज बेसेंट भी वहीं थीं। अतः मंदिरोंकी सैर करनेके बाद गांधीजी उस महान नारीके भी दर्शन करने गये, केवल दर्शन करनेको, क्योंकि बेसेंट एक उच्च भावनाओं और कर्मकी महिला जो थीं। और बेसेंटने भी उन्हें फौरन दर्शन दिये, यद्यपि वह बेचारी तब अस्वस्थ थीं। यह देख गांधी उनका बड़ा एहसान मानते हुए झुककर बोले—"तबीयत खराब होते हुए भी आपने

१. वही. पृ. २६७.

मुझे दर्शन दिये, केवल इसीसे मैं सन्तुष्ट हूं।[1] अधिक कष्ट मैं आपको नहीं देना चाहता," और इतना कहकर विनम्र गांधी उनसे बिदा लेकर राजकोटको चल दिये।

राजकोट और बम्बईमें —

गांधीजी जैसा कि उनका इरादा था, पहले राजकोट आये। राजकोटमें पहुँचते ही उन्हें वकीलीका काम तो मिल गया, किन्तु उनकी अधिक इच्छा बम्बईमें बसनेकी थी। गोखलेने भी उन्हें यही सलाह दी थी क्योंकि बम्बईमें बैरिस्टरीके कामके साथ-साथ गांधीजी सार्वजनिक जीवनमें भी भाग ले सकते थे, और महासभाका भी वहां पर कुछ न कुछ काम कर सकते थे। उनके सच्चे हितैषियोंको भी उनकी चेष्टाओंसे यह विदित होगया था कि गांधी अवश्य 'लोकसेवा' के लिए पैदा हुए हैं, और इसलिए वे भी चाह रहे थे कि गांधीजीको इसकी साधनाके लिए बम्बईमें ही रहना चाहिए। अतः गांधीजी कुछ दिन राजकोटमें ठहरनेके पश्चात् बम्बई चले आये और मार्च १९०२ में वहाँ पर पेईन गिल्बर्ट और सयानीके आफिसमें "चेम्बर्स" किराये पर लेकर रहने लगे। यह तो उनका आफिस हुआ, और रहनेके लिए उन्होंने चिरगाँव और बादमें सांताक्रुजमें एक सुंदर बंगला किराये पर लिया। इस प्रकार गांधीजी अब जमकर बैरिस्टरी करनेके लिए तैयार हो गये। किन्तु उन्हें तब यह न मालूम हो सका कि वे दो चार मुवक्किलोंकी ही नहीं, पूरे राष्ट्रकी वकालत करने और राष्ट्रकी तरफसे लड़ने वा पैरवी करनेको ईश्वर द्वारा भेजे हुए देवदूत हैं। उनको तब यह भी

१. वही पृष्ठ, २१०.

नहीं मालूम था कि उन्हें तो जहाँ कहीं भारतीय राष्ट्र और भारतीयोंकी पुकार आमंत्रित करेगी वहाँ ही दौड़ते रहना पड़ेगा। अतः अभी गांधीको मुश्किलसे बंबईमें स्थिर हुए तीन चार महीने हुए होंगे कि यकायक दक्षिण अफ्रीकासे तार आगया—"चेम्बरलेन यहाँ आरहे हैं, तुम्हें शीघ्र आना चाहिए।" और वचनानुसार गांधीजीने लिख भेजा—"खर्च भेजिये, मैं आनेको तैयार हूं।"[1] तुरंतही रुपये पहुँच गये, और गांधीजी एकदम आफिस-वाफिस समेटकर, अपने परिवारको बंबईमें ही छोड़ दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना होगए।

इस यात्राके साथ गांधीजीके दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासका तीसरा प्रकरण शुरू होता है।

१—वही, पृष्ठ, २७६।

फिर दक्षिण अफ्रीकामें

अध्याय ८

आशा विफल गई—

बोअर युद्ध के खतम होने पर गांधीजी सन् १९०१ में यह आशा लेकर हिन्दुस्तान लौटे थे कि दक्षिण अफ्रीका में अब उनका काम समाप्त हो चुका है। उन्होंने समझा था कि युद्ध के संकट काल में अंगरेजों को हिन्दुस्तानियों ने जो मदद पहुंचाई, और उससे भारतीय और अंगरेजोंके बीच जो मधुर संबंध स्थापित हुआ, उसके परिणामस्वरूप भविष्य में वहाँ (दक्षिण अफ्रीका) भारतीयों पर गोरी सरकारकी तरफसे किसी प्रकार का अत्याचार नहीं हुआ करेगा। उनका यह विश्वास इतना दृढ़ था कि यकायक दक्षिण अफ्रीकासे तार द्वारा बुलावा आने पर भी वे समझ न सके कि दक्षिण अफ्रीकाका किया कराया सब साफ हो चुका है। तार मिलने पर गांधीजीने यही समझा था कि शायद थोड़ी बहुत गड़बड़ी होगी ट्रान्सवालमें, और उसे ४-६ महीनेमें ठीक-ठीक कर वे पुनः जल्दी ही बंबई लौट आयेंगे। इसीलिये १९०२ के आखिर में बुलावे के आने पर वे अकेले ही दक्षिण अफ्रीका को गये और परिवार को बंबई में ही रहने दिया। उन्हें तब इस बात की कुछ खबर ही न थी कि वहाँ उन्हें अनिश्चित समय तक रहना पड़ेगा।

गांधीजी स्तब्ध हुये—

लेकिन जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका पहुंचे तो उन्हें मालूम हो गया कि उनकी आशा और कल्पना भ्रमपूर्ण थीं। उन्होंने देखा और वे स्तब्ध थे कि बोअरों के हटानेके बाद ब्रिटिश सरकार भारतीय प्रजाके साथ अकथनीय निन्दा और अत्याचारसे पूर्ण बर्ताव कर रही है। युद्धके उपकारोंसे पसीज कर उस समय गोरोंने जो गीत गाये "आखिर हिन्दुस्तानी हैं तो साम्राज्यके वारिस हीं" भूला दिये जा चुके थे। गोरी सरकार के एजेण्ट जो उस समय यह कहते थे कि बोअरोंके निकाल देने और हटा देनेके बाद भारतीयोंकी दशा बिलकुल सुधर जायगी, नितान्त असत्य साबित हुआ। गांधीजीको वहांकी स्थितिका निरीक्षण करने पर अब यह समझते देर न लगी कि ब्रिटिश सरकार बोअरोंकी सरकारसे भी गई बीती है, और उन्हें भारतीयोंके गौरव और अधिकार-लाभके लिये फिरसे संघर्ष करने पड़ेंगे। फलतः गांधीजी अब भावी संघर्षकी चिन्ता में संलग्न हो गये।

नेटाल डिप्युटेशन—

भारतीयोंने गांधीजीको अपना त्राता और सच्चा सलाहकार समझ कर ही अपने दुःखोंके निवारणार्थ नेटाल बुलाया था। उस समयके औपनिवेशिक मंत्री मि० चेम्बरलेन तब अफ्रीकामें आये हुये थे। उनका उद्देश्य वहांके अंग्रेजों और बोअरोंसे पौण्ड एकत्रित करना था। जिस समय गांधीजी नेटाल पहुंचे, चेम्बरलेन भी वहीं थे और वहांसे फिर ट्रान्सवाल जाने वाले थे।

भारतीयोंने तै किया था कि अपने हकों और दुःखोंकी सुनवाईके लिये चेम्बरलेनके पास एक डिप्युटेशन भेजा जाय और गांधीजी उसका नेतृत्व करें। उक्त निश्चयके अनुसार गांधीजी भारतीयों की अर्जी लेकर साथी प्रतिनिधियोंके समेत नेटालमें चेम्बरलेन से मिले। चेम्बरलेन जैसा कि ऊपर कहा है ३॥ करोड़ पौण्ड लेनेके हित दक्षिण अफ्रीका आये हुये थे, और यह रुपया अंग्रेजों तथा बोअरोंको खुश सुनकर ही वे ले सकते थे। अतः अंग्रेज तथा बोअरोंको इस समय नाखुश करना उन्हें अभीष्ट न था। फलतः भारतीयोंकी अर्जीको अनसुनी कर श्री चेम्बरलेनने ठकुर सुहातीका सा उत्तर देते हुये भारतीयोंको नेक राय दी कि "जिस तरह हो सके आपको यहाँके गोरोंको राजी रखकर ही रहना है[1]।" इस नेकनीयतीकी अंतरनिहित भावनाको समझनेमें गांधीजीको देर न लगी। वे चेत गये कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे निःसन्देह हिन्दुस्तानियोंके हकोंको नष्ट करनेपर तुले हैं, और इसलिए उन्हें फिरसे भारतीय स्वत्वोंकी रक्षाके लिये स्वार्थी, मदान्ध और रंग-द्वेषी अँगरेजी सरकारसे मजबूतीके साथ भिड़नेके लिये कमर कस लेनी चाहिये।

ट्रान्सवाल को—

नेटालसे श्री चेम्बरलेन ट्रान्सवाल पहुंचे। वहाँ के हिन्दुस्तानियोंने भी गांधीजीको ट्रान्सवाल आने और उनके हकों की अर्जी तैयार कर भारतीय पक्षको श्रीचेम्बरलेनके सामने उप-

१—आत्मकथा-भा० ४ पृ० २७९

स्थित करनेको आमंत्रित किया। गांधीजी तैयार हो गये लेकिन प्रिटोरिया पहुंचना तबकी परिवर्तित स्थितिमें सरल काम न रह गया था।

गांधीजीकी दिक्कत—एशियाटिक महकमा—

बोअर युद्धके समय लोग ट्रान्सवालको उजाड़ छोड़कर भाग खड़े हुए थे। अतः जब उस पर पुनः अंगरेजोंका कब्जा हुआ तो उन्होंने यह हुक्म निकाला कि भागे हुए ट्रान्सवालवासी सरकारी परवाना लेकर ही वहां आ सकते हैं। इन भागे हुओं में गोरे भी थे और हिन्दुस्तानी भी। किन्तु नेटालकी रंग-द्वेषी गोरी सरकार गोरोंको तो तुरन्त परवाना दे देती थी, पर हिन्दुस्तानियोंके लिये परवाना पाना बहुत ही विकट बात थी। असलमें वहांके गोरे अधिकारी काले हिन्दुस्तानियोंको ट्रान्सवालमें पुनः बसने और लौटने न देना चाहते थे। यही कारण था कि हिन्दुस्तानियोंको तंग करने और उनके प्रवेश पर रोक थाम लगानेकी हर प्रकारसे कोशिशकी जाने लगी थी। इस ध्येयकी पूर्तिके लिये अफ्रीकाकी सरकारने एक एशियाटिक महकमा खड़ा कर दिया था। इस महकमेके पास ट्रान्सवाल आने वाले भारतीयोंको पहिले अर्जी देनी पड़ती थी और जब यह महकमा इस बातकी पुष्टि कर देता कि हां उक्त हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालका पुराना बाशिन्दा है तभी परवाना देने वाला अधिकारी उस हिन्दुस्तानीको परवाना देता था। अतः हिन्दुस्तानियोंको इस कारण परवाना मिलने में बहुत दिक्कत पड़ने लगी। हिन्दुस्तानी होनेसे गांधीजीको भी इस महकमेसे परवाना

मिलना सहज बात न थी। किन्तु प्रिटोरिया पहुंचनेकी जल्दीमें उन्होंने आखिर एक उपाय ढूँढ़ ही निकाला। वे डरबनके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे मिले, जो उनके पुराने मित्रोंमेंसे था, और उसकी मददसे परवाना देने वाले अधिकारीसे इच्छित परवाना हासिल कर नियत समय पर १ जनवरी १९०३ को प्रिटोरिया आ पहुचे। बेचारा एसियाटिक महकमा जो गांधीजीको उलझानेके फेरमें था, देखता ही रह गया। उन्हें ताज्जुब था कि बिना उनकी अनुमतिके गांधीको परवाना मिल कैसे गया? वे सोचने लगे कि गांधी ऐसे ही तो नहीं चला गया है? यदि ऐसा हो तो उसे फँसालिया जावे? लेकिन जब बेचारोंको डरबनसे यह सूचना मिली कि गांधीके पास आवश्यक परवाना है तो वे दिल मसोस कर चुप हो गये। लेकिन उनकी कुचेष्टाओंका जाल फिर भी चलता ही रहा।

एशियाटिक विभागकी दुष्टता—

गांधीजीसे गोरे पहलेहीसे चिढ़ते थे, क्योंकि गांधी ही वह व्यक्ति था जिसने गोरी निरंकुशताके खिलाफ प्रथमतः धर्मयुद्ध छेड़ा और भारतीयोंको पश्चिमी पशुबलसे न डरनेका मंत्र पढ़ा कर सीना खोलकर चलना सिखलाया था! गोरे एशियाटिक विभागके कर्मचारी बड़े दुष्ट, क्रूर, रिश्वतखोर एवं उद्दंड थे। इसमें वे लोग घुसे हुए थे जो लड़ाईके समय भारत और लंकासे फौजके साथ वहाँ आये थे और लड़ाई समाप्त होने पर दक्षिण अफ्रीकामें ही बस गये थे। इस प्रकार एशियासे आये हुये ये अंगरेज अफसर बड़े ही निरंकुश ढंगसे हिन्दुस्तानियोंके साथ बर्ताव किया करते थे। उनकी इस निरंकुशताने गांधीजीके

शब्दोंमें हिन्दुस्तानियोंकी हालत "सरौंतमें सुपारीकी तरह कर दी थी"।[1]

यह एशियाटिक महकमा वस्तुतः हिन्दुस्तानियोंको दबानेके लिए ही खोला गया था। इसलिए उसके अधिकारियोंको यह सह्य न था कि गांधी जैसा तेजस्वी और निर्भीक व्यक्ति दक्षिण अफ्रीकामें घुसकर उनके सुखका काँटा बने। वे खूब समझते थे कि यदि गांधी दक्षिण अफ्रीकासे चला जाय तो बाकी भारतीयोंको भयातुर करके मनचाहे और मनमाने ढंगसे दबाया और कुचला जा सकता है। इसीलिए प्रिटोरियाके भारतीय डेप्युटेशनमें जब एशियाटिक महकमेंके अफसरने गांधीका नाम देखा तो उसके बदनमें आग-सी लग गयी। उसने दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नेता सेठ तैयबको बुलाकर इस बातके लिए बुरी तरह कोसा कि क्यों उन्होंने अभिज्ञ गांधीको वहाँ बुलाया है जब कि एशियाटिक महकमा उनकी रक्षाके लिए वहां पर मौजूद था। इस उद्दण्ड अफसरने गांधीजीके साथभी बहुत निन्दनीय व्यवहार किया। गांधीजीको आफिसमें बुलाकर उसने बड़ी धृष्टताके साथ उन्हें देश लौट जानेकी धमकी दी और कहा—"आप मि० चेम्बरलेनसे नहीं मिल सकते।" गांधीजीको इस प्रकार अपमानित करनेके पश्चात् उसने वहाँके भारतीयोंको भी धमकाते हुए आगाह किया कि "गांधीको ट्रान्सवालसे बिदा कर दो।" इस तरह हर प्रकारसे पूरा जोर लगाकर उक्त अफसरने गांधीजीका नाम डेप्युटेशन (शिष्टमंडल) से अलग करवाके ही छोड़ा। पर इस प्रकार बुरी तरहसे अपमानित किये जानेपर भी गांधीजी

१. वही पृष्ठ. २८३

अपनी कौम और अपने भाईयोंकी खातिर चुपचाप शिवकी भाँति शांतिके साथ अपमानके सारे कालकूटको पी गये। दक्षिण अफ्रिकाके भारतीय नेताओंको भी गांधीके अपमानमें 'कौम' का अपमान प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने सोचा कि जब उनके प्रतिनिधि गांधीजीको इस बुरी तरहसे अपमानित किया गया है तो उन्हें डेप्युटेशन (शिष्टमंडल) ही न ले जाना चाहिए। किन्तु धीर-वीर गांधी जोशमें आकर अथवा रोषमें पड़कर क्यों काम बिगाड़ने देते! उन्होंने भारतीयोंको समझाया और बुझाया तथा कौमके हित हर प्रकारके व्यक्तिगत अपमानोंको सहनेके लिए प्रेरित कर अन्तमें उन्हें शिष्टमण्डल लेजाने के लिए तैयार कर लिया। निःसन्देह गांधी वह निरभिमान व्यक्ति है, जो व्यक्तिगत 'अहँ' और स्वाभिमानके आवेग और आवेशमें पड़कर कर्तव्यको नहीं भुला दिया करते। उन्होंने हमेशा तटस्थ रहकर काम किया है। मि० जिन्ना द्वारा लाख अपमानित किये जाने पर भी देशके खातिर वे १८ बार उनसे मिलने गये हैं।

गांधीजीको शिष्टमण्डलमें न आनेको चेम्बरलेनने भी कहलवा दिया था। इससे स्पष्ट है कि गांधीजीसे वहाँके गोरे कितने संत्रस्त और चिढ़े हुए थे। गांधीकी मानो उन्हें छूतसी लगती थी।

अन्तमें गांधीजीकी सलाहपर भारतीय शिष्टमण्डल श्री जार्ज गाडफ्रेके साथ मि० चेम्बरलेनसे मिला। लेकिन उनसे मिलना न मिलना बराबर था। गांधीजी स्वयं उनसे न्याय पानेकी कोई उम्मीद नहीं रखते थे। क्योंकि उन्हें मालूम हो चुका था कि

मि० चेम्बरलेन दक्षिण अफ्रीकाके ब्रिटिश सचिवोंके पंजेमें हैं और गोरोंको असंतुष्ट करनेवाली कोईभी बात करनेको तैयार नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें उनसे कहाँसे न्याय मिलता; लेकिन फिरभी गांधीजीने उनके पास डिप्युटेशन भिजवाया था, केवल इसलिए कि उनसे और भारतीयोंसे 'भूलमें या स्वाभिमानके कारण न्याय प्राप्त करनेमें एक भी योग्य कदम लेनेमें भूल न हो।'[1] अतः डिप्युटेशन चेम्बरलेनको मिला लेकिन हुआ वही जैसा गांधीजीने सोचा था। न्यायकी दुराशाको खोकर भारतीय डिप्युटेशन आखिर निराश होकर खाली--खाली लौट आया।

गांधीजीकी प्रतिज्ञा --

शिष्टमण्डल भलेही निराश हुआ हो, लेकिन गांधीजी न निराश हुए और न गोरे मंत्रियों एवं एशियाटिक महकमेकी नृशंसता से ही भयभीत हुए। किन्तु चेम्बरलेनके व्यवहारसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका यह सोचकर दुःखी होना ठीक ही था कि गत बोअर युद्धमें मदद पहुँचानेके पुरस्कारमें उन्हें ब्रिटिश सचिवसे केवल 'अन्याय' ही हाथ लगा। पर गांधीजी मुड़कर पीछे देखना पसन्द नहीं करते। उन्हें तो एक ही चिन्ता रहा करती है— आगे कैसे बढ़ें ? अतः उन्होंने यह सब देखकर यही महसूस किया कि दक्षिण अफ्रीकामें हकोंको प्राप्त करने और गोरे अफसरोंके अत्याचारोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिये उन्हें अब ट्रान्सवालमें ही डट जाना चाहिए, और तब तक डटे ही रहना

---

१. दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह, सस्ता साहित्य मण्डल, प्रथम संस्करण पृष्ठ १२२.

चाहिये जब तक कि उनका उद्देश पूरा नहीं हो जाता। फलतः इस भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने अपने 'करो या मरो' के सिद्धान्तानुसार उक्त उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए अपनेको होम तक कर देनेका पक्का इरादा कर लिया। गांधी अब धीरे धीरे भीतर ही भीतर 'आँधी' का रूप ग्रहण करने लगा था, लेकिन गोरे अपने मदमें भूले बेखबर थे। परन्तु मन उनके सशंक अवश्य थे।

ट्रान्सवालमें बसनेका निर्णय कर लेने पर गांधीजीने तदनुसार वहाँ वकालतके लिए अर्जी पेश कर दी। गांधीजीको आशा न थी कि उनकी अर्जी मंजूर होगी, लेकिन उनकी आशा के विरुद्ध ट्रान्सवालकी बड़ी अदालतने उनकी अर्जी स्वीकार कर उन्हें वकालतकी सनद प्रदान करदी। सनद प्राप्त हो जाने पर गांधीजीने जोहान्सबर्गमें अपना आफीस खोला, क्योंकि वहां पर भारतीय सबसे अधिक संख्यामें रहते थे और इसलिए कौमकी सेवाके लिए वही अनुकूल केन्द्र पड़ता था। इसके अलावा बुराईके केन्द्र जिस एशियाई महकमा और उनके कर्मचारियोंसे गांधीजीको लोहा लेना था, उसका सबसे बड़ा थाना भी जोहान्सबर्गही में था।

गांधीजीने यहां पर आते ही भारतीयोंको संगठित कर उन्हें एक सूत्रमें बांधनेके लिए भी प्रयत्न करना शुरू कर दिया। अतः इस उद्देश्यको लेकर वे विभिन्न जातियोंके नेताओं (Communal leaders) से मिले और ट्रान्सवालमें जल्दी ही 'ट्रान्सवाल ब्रिटिश-इण्डियन एसोसियेशन' नामसे भारतीयोंकी एक संस्था स्थापित करवा दी! इस संस्थाके वे स्वयं अपने दक्षिण अफ्रीकाके

प्रवासकालके अन्त तक आनरेरी सेक्रेटरी और प्रधान कानूनी सलाहकार बनकर रहे।

एशियाई महकमेकी करतूतें—

जोहान्सबर्गमें रहते हुए गांधीजीको एशियाई महकमेकी अनेक काली-करतूतों और गंदगीका रोजही कटु अनुभव होने लगा। एशियाई महकमा, जो अपनेको भारतीय हकों वा एशियाई लोगोंके हकोंका हितू बतलाता था, वास्तवमें उनका एक जबर्दस्त शोषक और भक्षक था। इस महकमेके अफसर खूब घूस लेकर जेब गरम किया करते थे, और अपनी मौजमें जिन लोगोंको आनेका अधिकार होता, उन्हें तो दाखिल न होने देते, लेकिन जिन्हें प्रवेशका अधिकार न था, उनसे सौ-सौ पौण्ड घूस लेकर अन्दर कर लिया करते थे। गांधीजी यह सब देख और सुनकर बेचैन हो उठे। वे इस बुराईको दूर करनेकी चिन्तामें पड़ गये। अतः उन्होंने बड़ी मेहनतके साथ एशियाई महकमेके उन अफसरोंका पता लगाना शुरू किया जो उक्त प्रकारसे घूस लिया करते थे। इस कार्यमें उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। दो ऐसे अफसरोंका गांधीजीने आखिर पता लगा ही छोड़ा और उन्हें पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी करवा दिया। किन्तु 'रंग-द्वेष' के केन्द्र दक्षिण अफ्रीका में गोरे न्यायाधीशोंसे न्यायकी आशा करना बालूसे तेलकी धार चूआना था। फलतः उन अभियुक्तों पर यद्यपि न्यायका अभिनय करनेके लिए मुकदमा अवश्य चलाया गया; लेकिन जान बूझकर गोरी ज्यूरीने अन्तमें उन गोरे अपराधियोंको बरी भी कर दिया। पर तब भी गांधीजीका यह प्रयत्न कतई बेकार न गया। उन अफसरोंके बदनाम होनेसे

एशियाई महकमेके अन्य अफसर कमसे कम सतर्क जरूर हो उठे, और घूस खानेसे ठिठकने भी लगे। इससे निश्चय ही एशियाई थानेकी गंदगी कुछ न कुछ कम हो गई। लेकिन सबसे बड़ा फायदा इस मुकदमें से यह हुआ कि एशियाई लोगोंको भी अपने ऊपर भरोसा करने और साहससे काम लेनेकी हिम्मत आ गई। एशियाइयों और भारतीयोंके टूटते धीरज और बिखरते साहस को थाम लेनेका यह कार्य गांधी जैसा निश्छल और निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता था। निःसन्देह उनके नैतिक साहस और आत्मबलसे ही यह चमत्कार संभव भी हो सका। उनके इस पौरुपका लोगोंपर यथार्थतः बड़ा प्रभाव पड़ा और उनकी प्रतिष्ठा पहलेसे दूनी हो गयी। यहाँ पर हम पाठकोंको यह भी स्मरण करा दें कि गांधीजीसे गोरे जो चिढ़ते थे और एशियाई महकमेके अधिकारी उन्हें जो दक्षिण अफ्रीकामें न घुसने देना चाहते थे, वह इसीलिए कि उनकी पौरुषता और नैतिकतासे वे बहुत घबराए हुए थे। गोरे यह भी खूब समझते थे कि गांधी जैसे कानूनके विज्ञाता और चरित्रके धनीके रहते हुए उनकी धांधली और पशुता ज्यादा दिन नहीं चल सकेगी। श्री डोकने बहुत ही सही और सत्य लिखा है कि 'अधिकारी लोग गांधीसे भय खाया करते थे। वे जानते थे कि वे स्वयं उनसे कमजोर और क्षुद्र हैं। अतः यह स्वाभाविक ही था कि वे उनका मंच पर आना पसन्द न करते।'[1]

गोरोंकी भयातुर कल्पनानुसार निःसन्देह गांधीजी एशियाटिक महकमेकी बुराइयोंको रोकनेमें प्राण-पणसे जुट गये। उन्होंने अब

1—An Indian Patriot, by J. J. Doke pp. 59.

तमाम भारतीय समाजका पूरा बल उस गंदगीको दूर करने पर लगा दिया। एशियाटिक महकमेकी बुराइयोंसे त्राण पानेकी आशामें गांधीजी वहांके बड़े बड़े अफसरोंसे भी कई एक बार मिले और उनके पास यदा कदा भारतीयोंकी तरफसे डेप्युटेशन भी भेजते रहे। लेकिन इस सबका कोई विशेष परिणाम न निकला।

'इंडियन ओपीनियन' पत्रकी स्थापना--

इसी समय गांधीजीको यह प्रतीत हुआ कि भारतीयोंको एक दूसरेके निकटस्थ सम्पर्कमें लानेके लिए, तथा उनको उनके अधिकारोंका ज्ञान कराने एवं उनकी कष्ट कथा वहाँके अधिकारियों तक पहुँचानेके लिए एक समाचार पत्रकी नितान्त आवश्यकता है। इसलिए जब श्री मदनजीतने गांधीजीके सामने 'इण्डियन ओपिनियन' नामसे एक पत्र निकालनेकी तजवीज रखी तो वे एकदम सहमत हो गए। फलतः १९०४ में इण्डियन ओपिनियनकी स्थापना हुई और नामके लिए यद्यपि मनसुखलाल उसके सम्पादक हुए किन्तु सम्पादकत्वका वास्तविक और असली भार गांधीजी पर ही पड़ा।

यह पत्र साप्ताहिक था और प्रारम्भमें गुजराती, हिन्दी तमिल तथा अंग्रेजी इन चार भाषाओंमें प्रकाशित किया जाता था। पर बादमें हिन्दी और तमिलकी उपयोगिता न देखकर उन भाषाओंमें पत्रके संस्करण निकालने बन्द कर दिये गये। आर्थिक दृष्टिसे यह पत्र अपना व्यय न सम्हाल सका और कई वक्त बन्द होने तककी नौबत आ पहुंची। किन्तु भारतीय प्रतिष्ठा

उन्हें कल्पनासे भी विपुल सहयोग प्राप्त हुआ। पत्रके जरिये गांधीजी देश विदेशके लोगोंको भी सत्याग्रह संग्राम तथा दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिको सही रूपसे समझानेमें समर्थ हुए और अपने कार्योंके प्रति दुनियाकी सहानुभूति और श्रद्धा भी आकृष्ट कर सके।

कुली लोकेशन पर विपत्ति--

जोहान्सबर्गमें हिन्दुस्तानियों, जिन्हें दक्षिण अफ्रीकाके गोरे घृणा और तिरस्कारके साथ कुली कहा करते थे, के लिए एक अलग लोकेशन नियत था जिसे 'कुली लोकेशन' कहते थे। इस लोकेशनमें हिन्दुस्तानियोंके नाम जमीनका ९९ सालके लिए पट्टा कर दिया गया था। इस लोकेशनके सिवा उन्हें अन्यत्र न रहने दिया जाता था। अतः आबादी फैलनेके लिए क्षेत्र न होनेसे यहाँ पर हिन्दुस्तानी खचाखच भर गये थे। हिन्दुस्तानी बस्ती होनेसे गोरी म्युनिसीपैलिटीकी तरफसे लोकेशनकी कोई देख-भाल भी नहीं की जाती थी। इस बस्तीके हिन्दुस्तानी विशेषकर गरीब, दीन-दुखी मजदूर ही थे। अतः स्वयं भी वे लोग अपना सुधार और उद्धार करनेकी योग्यता न रखते थे। फलतः म्युनिसीपैलिटी की निष्करुण अन्यमनस्कता और भारतीय जनताके अज्ञानके फल से लोकेशनकी स्थिति स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही खराब हो चली। पर इस खराबीको दूर करनेके बजाय उसका बहाना लेकर म्युनिसीपैलिटीने लोकेशनको ही मेट देनेका निश्चय कर डाला और धारा सभासे उस जमीन पर, मुआवजेमें कुछ नजर देकर, कब्जा करने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। इस सौदेके साथ यह भी निश्चय

किया गया कि लोकेशनके बदलेमें हिन्दुस्तानियोंको कोई दूसरा उपयुक्त स्थान दे दिया जायगा।

किन्तु अभी हिन्दुस्तानी वहाँसे हटने भी न पाये थे कि 'लोकेशन'की गन्दगी और मौसमकी खराबीके कारण वहाँ भीषण रूपसे भयंकर 'काला प्लेग' फैल उठा। बीमारीके फैलनेसे पूर्व १७ दिनतक बादल बराबर पानी बरसाते रहे थे, इसलिए बरसाके बन्द होते ही महामारीका प्रकोप उग्ररूपसे हुआ! यह बीमारी असलमें जोहान्सबर्गके आसपास सोनेकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंसे शुरू हुई थी। बीमारीके फैलनेसे लोकेशनमें त्राही-त्राही मच उठी। किन्तु यह सब देखते हुए भी गौरांग म्युनिसिपलिटी दूरसे ताकती ही रही। उसे पहले तो बीमारीका ही पता न चला और जब पता भी चला तो उसने रोक-थामके लिए कोई समुचित उपाय नहीं किये।

इसी समय इण्डियन ओपीनियन के प्रकाशक मदनजीत भी अखबारके सिलसिलेमें जोहान्सबर्ग आये हुए थे और लोकेशनका भ्रमण कर रहे थे। बीमारीसे पीड़ित और त्रस्त लोकेशनके मज-दूरोंकी स्थितिको जब उन्होंने दिनोंदिन बिगड़ते पाया तो लाचार होकर उन्होंने १८ मार्च १९०४ को गांधीजीको भी इस विपत्तिकी सूचना भेजी और साथ ही त्रस्त जनताके हितार्थ तुरन्त वहाँ पहुंचनेका आग्रह किया।

दरिद्रोंके नारायण गांधी तुरन्त ही पीड़ितोंकी सेवाके लिए तैयार हो उठे। उन्होंने स्वास्थ्य विभागके मेडिकल आफीसर डा० पेकस और टाउन क्लर्कको भी इसकी इत्तला भेजी और जल्दीसे स्वयं लोकेशनमें पहुंचकर मृत्युके साथ जूझ पड़े। श्री

मदनजीत और डा० विलियम गाड्फ्रेके साथ साथ गांधीजीने लोकेशनके निःसहाय बीमारोंकी परिचर्या और सेवामें रात-दिन एक कर दिये। उनकी देवतुल्य सेवाओंसे प्रभावित और लज्जित होकर अन्तमें टाउन कौंसिल और म्युनिसिपैलिटीने भी हिन्दुस्तानियोंकी सहायतामें हाथ बँटाना शुरू कर दिया। बीमारीको रोकनेके लिए आखिर गांधीजीकी सलाह पर लोकेशन खाली भी करा दिया गया और हिन्दुस्तानियोंको रहनेके लिए 'क्लिपफ्रुट फार्म' (जोहान्सबर्गसे कुछ दूर एक खुला स्थान) में इन्तजाम कर दिया गया। हिन्दुस्तानियोंके हटते ही 'लोकेशन'को जला दिया गया, और परिणाम स्वरूप बीमारी लोकेशनसे आगे न बढ़ सकी।

यह भयंकर महामारी लगभग एक महीने तक रही थी। इसमें लगभग ११३ आदमी कालग्रसित हुए थे[1]। लेकिन बीमारीके फैलनेके तुरन्त बाद ही अगर गांधी और उनके कुछ एक साथी लोकेशनमें पहुंच कर तत्परता और अदम्य साहसके साथ उसके रोकनेके कार्यमें प्रवृत्त न हुए होते तो संभव था कि मृत्यु संख्या इससे कहीं अधिक बढ़ जाती। अपनी इन सेवाओंके फलसे स्वभावतः गांधीजी भारतीय जनताके और भी प्यारे और आराध्य हो गये।

डरबन जाना और फिनिक्सकी स्थापना—

महामारीके शान्त होनेपर १९०४ में गांधीजी इन्डियन ओपिनियन पत्रके हिसाब-किताबकी व्यवस्था ठीक करनेके लिये

---

1. An. Indian Patriot, by J. J. Doke—p. 65

डरबन गये। डरबन जाते समय जोहान्सबर्गमें उनकी 'क्रिटिक' के सम्पादक मि० पोलकसे भेंट हुई। यह भेंट बहुत ही परिणाम युक्त निकली। मि० पोलकने गांधीजीको रस्किनकी 'अन्ट् दि लास्ट' नामक पुस्तक भेंटकी जिसे उन्होंने आगे चलकर 'सर्वोदय' नामसे गुजरातीमें अनुदित कर प्रकाशित कराया। रस्किनकी पुस्तकने गांधीजीको बहुतही प्रभावित किया। पुस्तकके अध्ययनने उनक जीवनमें एक क्रान्तिसी ला दी। उन्होंने अब सर्वोदयके विचारोंका अनुसरण करते हुए मजदूर और किसानका जैसा सादा और सरल जीवन यापन करनेका इरादा बना लिया। गांधीके तपोपूर्ण आश्रम जीवनका यह उदयारम्भ था।

अतः डरबन पहुंचते ही गांधीजीने इण्डियन ओपीनियनके कार्यकर्त्ताओं श्रीवेस्ट आदिसे आश्रम स्थापित करनेके सम्बन्धमें बातें शुरू कर दीं। सबने गांधीजीकी सलाह पसन्दकी और अखबार तथा प्रेसको भी आश्रममें ले जानेका निश्चय कर लिया गया। आश्रमके लिये अब डरबनके पास १३ मीलकी दूरीपर फिनिक्समें १००० पौंड देकर१०० एकड़ जमीन खरीद करली गई; और एक महीनेके अन्दर तुरन्त ही वहां प्रेस तथा रहनेके लिये मकान आदिका भी प्रबन्ध हो गया। फलतः अपने कई एक स्वजनों तथा सहयोगियोंके संग गांधीजी अब वहीं रहने लगे। इस तरह१९०४में गांधीजीके सद्प्रयत्नसे फिनिक्समें पहिला गांधी-आश्रम स्थापित हुआ।

फिनिक्स जैसी संस्थाको स्थापित करनेमें गांधीजीका ध्येय था कि वहाँपर रहनेवाले आश्रमवासी संसारके छल-कपट और अशान्तिसे दूर रहकर, प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियोंके

आश्रमोंका जैसा सरल और सादा तथा परिश्रमका जीवन यापन करना सीखें, और हमेशा दूसरोंकी भलाई एवं सेवा-कार्यमें निरत रहा करें। इस उद्देश्यसेआश्रमके नियमोंमें स्वावलम्ब और परिश्रम पर बहुत जोर दिया गया। इन नियमोंके अनुसार प्रत्येक आश्रमके निवासीको तीन-तीन एकड़ जमीन खुद काश्त करके अपनी रोटी अपने आप उगानेके लिये दे दी गई। स्वयं भी जमीनका इतना ही एक टुकड़ा गांधीजीने लिया, और दूसरे संगी-साथियोंकी तरह वे भी बड़े परिश्रम और तपस्याके साथ खेती-बारीका काम करने लगे। इस कामके लिये आश्रमकी तरफसे प्रत्येक व्यक्तिको ३ पौंड मजदूरी मिलती और अवकाशके समय उन्हें प्रेसमें भी काम करना पड़ता था। यह सब काम आश्रम-वासी बड़े उमंग और चावसे किया करते थे। परिणामतः गांधीजीके प्रयत्नोंसे थोड़े ही समयके अन्दर फिनिक्समें इतने घर और परिवार बस गये कि वह आश्रमके बजाय एक बस्ती अथवा गाँव जैसा मालूम पड़ने लगा! फिनिक्सके रहनेवालोंके बच्चोंके लिये जल्दी ही वहाँ पर एक स्कूल भी खड़ाकर दिया गया। गांधीजीके लिए तो फिनिक्स एक बहुत ही प्रिय स्थान और घर सा हो गया। इस-लिए जब कभी उन्हें समाज-सेवाके कार्योंसे फुरसत मिलती, वे सर्वदा आरामके लिये वहीं चले आते और आश्रमके साथियोंके साथ हिल-मिलकर खेतोंपर किसानकी तरह काम किया करते। अपने परिवारको भी वे यदा-कदा वहाँ रहनेको भेज दिया करते थे।

हिन्दुस्तानियोंके अलावा गांधीजीके कई एक अंग्रेज मित्र और प्रशंसक—जैसे श्री वेस्ट, श्री पोलक आदि भी फिनिक्सके जीवनसे आकर्षित होकर वहाँ रहने लगे। फिनिक्सके रहने वालोंमें परस्पर भाई-चारेका पूरा-पूरा भाव था और सब लोग

ऊंच-नीच तथा जात-पांतके भेद भावोंसे रहित होकर एक ही परिवारके मनुष्योंकी भांति रहा करते थे। यह आदर्श जीवन फिनिक्सके अनुकूल था, क्योंकि उसकी स्थापना ही जीवनको सरल, सत्य और स्नेहपूर्ण बनानेके लिये हुई थी। उसकी स्थापनाके मूलमें गांधीजीकी यह कामना निहित थी कि लोग नगरके अशान्त और कोलाहलपूर्ण वातावरणसे हटकर गांवोंका सेवा और तपोमय जीवनयापन करना सीखें और जानें। क्योंकि वे भली प्रकार यह समझ चुके थे कि देश और विश्वका कल्याण सेवाके साधकोंसे ही हो सकता है, न कि भोगके उपासकोंसे ! अतः यह कहना नितान्त सत्य है कि गांधीजीके 'आश्रम' जन-सेवक और साधकोंके केन्द्रस्थल हैं—वैरागी और तटस्थोंके निश्चेष्ट और गतिहीन समाधि-स्थल नहीं।

जोहान्सबर्गमें—

लेकिन १९०४ में गांधीजी अभी फिनिक्सकी स्थापना कर ही सके थे और उसके कामको आगे बढ़ानेमें लगे थे कि यकायक कार्यवश उन्हें अपने इस नये रचे हुए कुटुम्बको छोड़कर जोहान्सबर्ग चला जाना पड़ा। जोहान्सबर्ग पहुंचनेपर उन्होंने हिन्दुस्तानसे अपना परिवार भी वहीं बुलवा लिया। किन्तु जोहान्सबर्गके घरमें भी गांधीजीने आश्रमकी सरलता और सादगीका वातावरण कायम रखा। घरमें हर काम वे और उनके परिवार वाले अपने ही हाथोंसे किया करते थे। पाखाने को सफाई तक वे और उनके कुटुम्बीय स्वयं ही अपने हाथोंसे

[सन् १९०६]   जुलू विद्रोह के समय   [पृष्ठ १६५]

करते थे १ इस प्रकार जोहान्सबर्गमें गांधीजी घरमें रहते हुए भी एक आश्रम-वासी तपस्वीका सा सरल और सादा जीवन ही यापन करते रहे। किन्तु इस घरमें भी बेचारे जमकर बहुत दिनों तक न रह सके। ईश्वरके संकेतोंका अनुसरण करनेवाले का निःसन्देह कोई निजी ठौर और निजी कार्य होता ही नहीं—वह जाता है जहाँ भगवान ले जाता है; वह करता है जो परमेश्वर चाहता है। और गांधीके कार्य-कलापोंकी यही कुंजी है—वे स्वयं कुछ नहीं उनका तो ईश्वर ही वे हैं।

जुलू विद्रोह—

१९०४ में जुलू लोगोंने नेटालमें विद्रोह कर दिया था। इस विद्रोहकी खबर जब जोहान्सबर्ग पहुंची तो बोअर युद्धके समयकी तरह इस समय भी अंग्रेजोंकी मदद करनेके लिये गांधी व्यग्र हो उठे, क्योंकि उनका अभी भी यही विचार था कि 'अंग्रेजी सल्तनत' संसारके लिए कल्याणकारी है, जिसकी रक्षा की जानी चाहिए। अतः वे हृदयसे अभी भी अंग्रेजोंके भक्त बने हुए थे और उनके राज्यका विनाश नहीं देख सकते थे। यद्यपि यह सही है कि उस समय तक अंग्रेजोंकी दुर्नीति और दुर्व्यवहारोंका भी वे कई प्रकार से परिचय पा चुके थे, लेकिन उनके विश्वासपूर्ण हृदय से तब तक यह विश्वास निष्कासित न हुआ था कि आखिर अंग्रेज मनुष्य ही हैं, और एक न एक वे दिन अवश्य अपनी गल्तियों और अनीतियोंको जान जायेंगे, और उनका सुधार तथा परिमार्जन भी कर लेंगे।

१—आत्मकथा—भाग, ४. पृष्ठ—३४८

अतः जुलू विद्रोहमें अंग्रेजोंको मदद पहुंचाने के खयालसे गांधीजीने नेटालके गवर्नरको पत्र लिखा कि यदि जरूरत हो तो वे हिन्दुस्तानियोंका सेवादल लेकर उनकी मददको पहुंच सकते हैं। इस पत्रका तुरन्त ही 'हाँ'में उत्तर मिला। यह स्वीकृति पाकर गांधीजीने तुरन्त जोहान्सबर्गका घर तोड़ दिया, परिवारको फिनिक्स भेज दिया, और स्वयं सेवादलका संगठन और नेतृत्व करनेके लिये डरबन चले गये।

डरबन पहुंचने पर नेशनल इंडियन कांग्रेसकी तरफसे गांधीजीको सेवादलमें काम करनेके लिये २४ आदमी तैयार मिले। चिकित्सा-विभागके मुख्य अधिकारीने गांधीजीको 'सारजेन्ट मेजर' का पद दिया, और उनके अन्य तीन साथियोंमें से दो को सारजन्ट और एक को कारपोरलका पद प्रदान किया। पर विद्रोहके स्थलपर पहुंचकर गांधीजीको पता चला कि वहां विद्रोह जैसी कोई चीज न थी—वह केवल 'कर' न देनेका आन्दोलन था। अतः जब चिकित्सा विभागके अधिकारी डा. सवेज (Dr. Savage) के द्वारा भारतीय सेवादलको विशेषकर जुलू-घायलोंकी सेवाका काम सुपुर्द हुआ, तो गांधीजीको इससे बहुत ही खुशी हुई, क्योंकि उन्हें पीड़ित और निरपराधोंकी सेवाका मौका हाथ लगा था। गोरे लोग जुलूओंसे घृणा करते थे और उनकी सेवाके लिये कतई तैयार न होते थे। इससे बेचारा डा. सवेज--जो गोरा होने पर भी मनुष्यका हृदय रखते थे—अकेला जुलूओंकी सेवा न कर सकनेसे परेशान हो रहे थे। इसलिये जब गांधीजी और उनके दलने जुलूओंकी सेवा करनेका भार सहर्ष उठाना

स्वीकार किया, तो डा० सवेजको भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। डा० सवेजने हर्षातिरेकमें तब गांधीजीसे कहा था, "मैं अकेला क्या करता ? इनके घाव खराब हो रहे हैं। आप आ गये अच्छा हुआ। इसे मैं इन निरपराध लोगोंपर ईश्वरकी कृपाही समझता हूं।"[1] डा० सवेजकी यह आशा संपूर्णरूपसे पूरी हुई ! गांधीजीके सेवादलने बड़े उत्साह, प्रेम और निःस्वार्थताके साथ अन्त तक जुलूओंकी सेवाकी। ऐसी निष्काम सेवा पाकर जुलूओंके आनन्दकी तो सीमा ही न रह गई, लेकिन दूसरी ओर गोरे यह सब देखकर जलके खाक होते जाते थे—क्योंकि वे निर्दयी न चाहते थे कि उनके दुश्मनोंकी कोई इस प्रकारसे सेवा-टहल करे। किन्तु गोरोंकी दुश्चिन्ता न कर गांधीका सेवादल अपने सेवाकार्यमें डटा ही रहा। बुद्धकी तरह वे घायल जुलुओंके सड़ते हुये घावोंको धोते और प्रेमसे नित्य उनपर पट्टी बाँधा करते। फौजके साथ-साथ वे घायलोंको लेजाने वाली डोलियोंको कंधे पर रखकर चला करते। कई बार एक-एक दिनमें वे चालीस मील तक चले जाते। युद्धस्थल परसे घायल जुलूओंको डोलियोंमें उठाकर पड़ाव पर लाते और वहाँ उनकी शुश्रूषा किया करते। इस प्रकार लगभग ६ सप्ताह तक गांधीजीके सेवादलने बड़े परिश्रम और करुणाके साथ घायलोंकी निरन्तर सेवा की। इसके बाद बलवा शान्त हो गया और गांधी अपने दलके साथ युद्धस्थलसे फिनिक्सको वापिस लौट आये।

गांधी और उनके दलकी इस तपस्या और त्यागपूर्ण सेवाकी प्रशंसा करते हुये श्री डोकने लिखा है—"यह एक महीना

---

१. वही—पृष्ठ ३५२.

(भारतीय सेवादलका) बड़े कठिन परिश्रममें बीता, जिसमें उन्हें अत्यधिक आत्म त्याग करना पड़ा। ये लोग उस जातिमें से हैं, जिनकी रग-रगमें प्राचीन संस्कृति लहराती है, और जिनके पूर्वजोंसे दुनियाको सर्वोत्तम साहित्य तथा महानतम् विचार प्राप्त हुये हैं। ऐसे लोगोंका स्वेच्छासे निकृष्ट दशामें पड़े असभ्य लोगोंकी सेवा करना यथेष्ठ आत्मत्यागका कार्य था।"[1]

इस विवरणको समाप्त करनेसे पहिले यहाँपर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि जुलू विद्रोहके समय ही सेवा कार्य करते हुए गांधीजीको यह प्रतीत हुआ कि सेवाके लिये 'ब्रह्मचर्य' की बहुत आवश्यकता है। निःसन्देह सेवामें रत रहनेके लिये जरूरी है कि हम भोग-विलास और इन्द्रिय सुखसे अपनेको विलग रखें, क्योंकि इन रोगोंमें फँसा हुआ आराम-तलब एवं विलासी-व्यक्ति निश्चिन्त और निर्भीक होकर सेवाके कठिन कार्योंमें कूदने का साहस भी नहीं कर सकता। विलास जर्जर होनेसे हममें सेवाके लिये अपेक्षित बल हो भी कैसे सकता है। अतः इन विचारों से उद्वेलित और प्रेरित होकर १९०६ के मध्यमें फिनिक्स पहुंचने पर गांधीजीने ब्रह्मचर्यका व्रत ग्रहण किया जिसे उन्होंने महाभारतके यशस्वी रणधीर भीष्मकी तरह ही निभाया है। गांधीजीके त्यागका यह उज्वल विटप था। इस त्यागके बिरवेकी वृद्धि और विकासके लिए आगे चलकर गांधीजीने उपवास और अल्पाहार भी शुरू कर दिये और स्वाद तथा तृष्णाको तिलांजलि दे दी। 'भोजन' अब केवल आरोग्य और संयमकी दृष्टिसे किया जाने लगा। भोजनमें से चाय, दाल और नमक तकका परित्याग कर दिया गया। संयमका

1. An Indian patriot ; by J. J. Doke, pp.71.

खातिर गाय व भैंसका दूध तक छोड़ दिया गया, लेकिन बादमें आवश्यक होजानेसे 'बा' के दबाव पर गांधीजी को बकरी का दूध पीना स्वीकार कर लेना पड़ा। संक्षेपमें स्वादु भोजन और अन्न आदि का गांधीजीनेपरित्याग कर दिया था, और ज्यादातर अब वे मामूली फलोंके आहार पर ही रहने लगे।

इस प्रकार संसारकी सेवाके लिये अपनेको योग्य, सबल, और सशक्त बनानेके हित ऐहिक सुखों और ऐन्द्रिक भोगोंको तुच्छ, हीन एवं अवरोधक समझकर त्याग देना और ठुकरा देना हर एकके अधिकारकी चेष्टा नहीं हो सकती। इसीलिए हम कहते हैं, गांधी 'हरएक'के जैसा नहीं, अपने ही जैसा एक है।

सेनापति गांधी

महान् सत्याग्रह-युद्धका उदयारम्भ

अध्याय ९

गांधीजीको कब मालूम था कि प्रथमतः दक्षिण अफ्रीकामें ही उनको राष्ट्रका सेनापति होकर महान् सत्याग्रह युद्धका संचालन करना पड़ेगा ? सत्याग्रहके अहिंसात्मक युद्धमें पड़नेकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी ? यह केवल परिस्थितियोंके प्रभावका परिणाम था कि उन्हें पश्चिमी पशुबलसे भारतीय प्रतिष्ठा और भारतवासियोंके स्वाधिकारोंकी रक्षाके लिए, सेनापति बनकर भारतीय स्वभाव और संस्कृतिके अनुरूप, स्नेह और सत्यके शस्त्रको लेकर जूझनेको बाध्य होना पड़ा ! ये परिस्थितियाँ क्या थीं ?

रंगद्वेष—

पश्चिमकी गोरी जातियाँ एशियाकी काली जातियोंसे हमेशासे घृणा करती रही हैं। आज भी यही हाल है और जिस समयका हम उल्लेख कर रहे हैं, उस समयमें तो रंग-द्वेष अपनी सीमा पर पहुंचा हुआ था। अतः इस घृणाके कारण दक्षिण अफ्रीकाके गोरे एशियावासियों से चिढ़ते वा कुढ़ते रहते थे और जिस किसी प्रकारसे उन्हें दबानेकी सोचा करते थे। उन्हें

एशिया और भारतके लोगोंसे एक प्रकारकी घृणायुक्त चिढ़सी होगयी थी। इन लोगोंके संपर्कको वे अपनी सभ्यता और संस्कृतिके लिए अत्यन्त भयानक और खतरनाक समझने लगे थे। इसलिए गोरे नहीं चाहते थे कि भारतीय एक 'स्वतंत्र जाति'के रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें वास करें। लेकिन भारतका 'आत्मगौरव' क्या यह स्वीकार कर सकता था ? कभी भी नहीं! जिस भारतका इतिहास अपने गौरव, सम्मान और प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए 'जौहर' के अनुपम बलिदानोंसे परिपूर्ण है, उससे 'सम्मान' के मूल्य पर भला कैसे सौदा वा समझौता हो सकता था ? अतः दोनोंमें झगड़ा बढ़ना अनिवार्य था।

अकेला-व्यापार—

काले रंगसे द्वेष रखनेके अलावा गोरे वा अंग्रेज-व्यापारी यह भी नहीं चाहते थे कि भारतीय दक्षिण अफ्रीकामें रहकर उनके एकमात्र व्यापारमें विघ्न उपस्थित करें। भारतीयोंका व्यापार गोरे अपने व्यापारिक हितोंके लिए हानिकारक समझते थे। इसलिए वे नहीं चाहते थे कि भारतीय लोग दक्षिण अफ्रीकामें घुसें और अपना मनमाना व्यापार किया करें। वे तो दक्षिण अफ्रीकामें अपना ही अकेला सार्वभौम व्यापार चाहते थे, जिससे वे स्वयं बिना किसी रोक-टोकके आसानीसे अधिकसे अधिक धन इकट्ठा कर सकें। अतः उन्हें यह कैसे सहन होता कि अफ्रीकाके इस स्वच्छन्द व्यापारमें भारतीय भी हिस्सा लें।

फलतः प्रमुखतया रंग-द्वेष और स्वच्छन्द व्यापार ये ही दो कारण थे, जिनके हित ब्रिटिश सत्ताधारियोंने यह निर्णय किया

था कि भविष्यमें ट्रान्सवालमें नये आनेवाले भारतीयोंको प्रवेश न करने दिया जाय और जो पुराने भारतीय वहाँ पहिलेसे मौजूद हैं, उनकी स्थिति ऐसी दीन-हीन और कंटकाकीर्ण बना दिया जाय कि वे खुद बखुद ऊबकर, घबड़ाकर, और भयातुर होकर ट्रान्सवाल छोड़कर भाग खड़े हों और अगर इतने पर भी भागे नहीं तो न्यूनाधिक रूपमें मजदूर बनकर ही वहाँ रहने पावें।

ज्यादती और धोखा—

इतिहास बतलाता है कि अपने ऐच्छिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए पश्चिमके सत्ताधिकारी सर्वदासे अमानुषिक नियमों वा कानूनोंका सहारा लेते रहे हैं। दक्षिणके गोरोंने भी अफ्रीकामें यही किया। सन् १८८५ में वहाँ एक ऐसा कानून बनाया गया जिसके अनुसार यह तय हुआ था कि जो ऐशियावासी दक्षिण अफ्रीकामें व्यापार करें, वे पहिले एक निश्चित फीस देकर अपनी रजिस्ट्री करा लें और नगरोंके कुछ विशेष भागोंमें ही निवास किया करें जिससे कि उनके संसर्ग और संपर्कके दूषणसे गोरोंमें किसी प्रकारकी व्याधि न फैलने पावे। इस कानून तथा अन्य प्रकारकी ब्रिटिश सत्ताधारियोंकी ज्यादतियोंसे भारतीय बहुत असन्तुष्ट हो रहे थे, लेकिन मुक्तिका उन्हें कोई भी मार्ग सूझ न पड़ रहा था।

बोअर युद्ध आया; और समय ने ऐसा पलटा खाया कि जिन्हें घृणित समझा जाता था, उन्हीं भारतीयोंके सहयोगकी अंग्रेजों को आवश्यकता हो आई! भारतीयोंने भी परम उदारताके साथ गांधीजीके नेतृत्वमें बिना किसी हिचकके उन्हें मदद

पहुंचाई। भारतीयोंकी इस मददसे खुश होकर ब्रिटिशशाहीके उच्चाधिकारियोंने तब उछल-पुछल कर यहां तक कहना शुरू किया कि भारतीयोंकी दुर्दशाका असली कारण यह लड़ाई ही है, और इसलिए जहां विजय हुई और ट्रान्सवाल पुनः ब्रिटिश कॉलोनी हुआ कि भारतीयोंके तमाम दुख-दर्द दूर हो जायेंगे, और पुराने समयके बने कानून भारतीयोंपर आगे कभी नहीं लागू किये जायेंगे आदि !

किन्तु अन्त में मालूम हुआ कि यह सब धोखा था, प्रतारणा थी ! रंग-द्वेषी और अर्थ-लोभी गोरोंने लड़ाई जीतनेके बाद अपने सारे कायदोंको भूलाकर भारतीयोंकी सुखद भविष्यकी सुन्दर कल्पनाओं और आशाओं पर एकदम पानी फेर दिया। जिस १८८५ के अन्यायी कानून को तोड़नेका मुक्त-ध्वनिसे वायदा किया गया था, वह फिरसे भारतीयों पर निर्दयताके साथ लाद दिया गया तथा ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रवेश पर रोक भी लगा दी गई। इस प्रतिबन्धके परिणामसे भारतीय अब बिना सरकारी 'परवाने' के हासिल किये ट्रान्स-वालमें प्रवेश न पा सकते थे। दिखानेके लिए 'परवाने' का नियम गोरोंके लिए भी था, किन्तु उन्हें तो माँगते ही परवाना मिल जाता था, लेकिन भारतीयोंके लिए परवाना पाना एक नितान्त कठिन समस्या थी। भारतीयोंको दिक और परेशान करनेके लिए तथा प्रतिबन्धको सख्तीसे बरतनेके लिए भारतीयोंके खातिर ट्रान्सवालमें एक नये प्रकारका एशियाटिक महकमा भी खोल दिया गया था। यह एक बिल्कुल नयी सी बात थी ! इस महकमे और उसकी ज्यादतियोंका पिछले अध्यायमें कुछ

वर्णन किया जा चुका है । यहाँ पर हम केवल यह इंगित कर देना चाहते हैं कि 'परवाने' की पद्धति गोरोंके लिए कुछ समय बाद बिलकुल बन्द कर दी गई थी, किन्तु भारतीयोंके लिए वह 'परवाने' का कानून बराबर उसी तरह जारी रहा और इसका कारण स्पष्ट था, 'भारतीयोंको ट्रान्सवालमें न आने देना और न रहने देना'।

और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमारा पूर्व परिचित एशियाटिक विभाग ट्रान्सवालमें खड़ा किया गया था। इस एशियाटिक विभागका कार्य ऐसे सख्त और अपमानजनक कानून रचना और बनाना था, जिससे भारतीयोंका ट्रान्स-वालमें प्रवेश पाना और रहना दोनों कठिन हो जाँय। पिछले अध्यायमें एशियाटिक विभागकी दुष्टता पर प्रकाश डालते हुए हम बतला चुके हैं कि उक्त विभागमें गोरे अधिकारी 'पर-वाना' देनेमें किस बुरी तरहसे भारतीयोंको सताया करते थे।

उनकी ये दुष्टताएँ और ज्यादतियां रुकनेका नाम न लेती थीं। सन् १९०६ में एशियाटिक विभागके एक अधिकारी मि० लायनल कर्टिसकी सलाहपर भारतीयोंको जलील करनेके लिए परवानोंका स्वरूप आदि भी अपमानजनक कर दिया गया। मि० कर्टिस आदिकी रायके अनुसार यह तय हुआ कि परवानों पर प्रत्येक भारतीयके दस्तखत या अंगूठेकी निशानी ली जावे। परवानेका यह नियम बहुत ही अपमान पूर्ण था। भारतीयोंको इस नये नियमके अनुसार रजिस्ट्री आफिसमें जाकर चोरों, बदमाशों, और १० नम्बरी गुण्डे तथा अपराधियोंकी तरह अपने अंगूठेके निशान देने वा शिनाख्तके लिए तस्वीरें खिचानी

जरूरी कर दी गई थीं।[1] अतः भारतीय—हिन्दू तथा मुसलमान सभी इस नये 'परवाने'से क्षुब्ध हो उठे—किन्तु उन्होंने यह सोचकर कि कहीं उनके सिर पर और दूसरे अंकुश न कील दिये जावें, नवीन परवानोंको लेना स्वीकार कर लिया, यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे इन नये परवानोंको लेनेके लिए वे बाध्य न थे। भारतीयोंका यह भी खयाल था कि उनके इस व्यवहारसे शायद गोरी हुकूमत यह समझ सकेगी कि भारतवासी "ट्रान्सवालके किसी भी कानूनका उल्लंघन नहीं करना चाहते; और परिणामतः सरकार उनके इस व्यवहारसे खुश होकर उन्हें प्यार करने लगेगी, उनका आदर करेगी और उन्हें उनके नागरिक हक़ प्रदान कर देगी?" किन्तु उन्हें क्या मालूम था कि अफ्रीकाकी स्वार्थी गोरी सरकार भलाईका बदला बुराईमें चुकायेगी?

खूनी कानून—

नवीन कानूनोंके स्वीकार कर लेनेपर गांधीजी और दूसरे भारतीय नेताओंका विश्वास था कि अब सरकार हिन्दुस्तानियों-को आगे न सतायेगी। किन्तु यह भी बिलकुल भ्रम ही साबित हुआ। गांधीजी अभी जुलू-विद्रोहमें सेवादलके कार्य ही में लगे थे कि ट्रान्सवालसे उन्हें खबर मिली कि हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध एक और एशियाटिक कानूनका मसौदा तयार किया गया है, और उस मसौदेके अनुसार वहाँ (ट्रान्सवाल) की धारा सभामें पेश करनेके लिए एक बिल बनाकर उसे २२ अगस्त १९०६ के

---

१. दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह अनुः गोयदे. प्र० सस्ता साहित्य मण्डल पृ० १३७-१३८

सरकारी गज़टमें प्रकाशित भी कर दिया गया है। इस खेदपूर्ण समाचारके मिलनेसे गांधीजी अकुला उठे, और जल्दीसे फिनिक्सके अपने संगी-साथियोंसे मिल-मुलाकर जोहान्सबर्गके लिए चल पड़े।

निःसन्देह उपरोक्त बिलकी शर्तें बहुत ही भयंकर और गर्क कर देनेवाली थीं। उसके पास होने और कानून बननेका स्पष्ट अर्थ था, भारतीयोंका दक्षिण अफ्रीकासे समूल विनाश! इस भयंकर कानूनकी शर्तें इस प्रकारसे थीं:—(१) ट्रान्सवालमें बसनेकी इच्छा करने वाले हर एक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ या आठ वर्षसे ऊपर वाले बालक या बालिकाको एशियाई दफ्तरमें अपना नाम लिखाकर परवाना प्राप्त करना, और पुराने परवानोंको अधिकारीको लौटा देना; (२) नाम लिखनेकी अर्जीमें अपना नाम, स्थान, जाति, उम्र आदिका पूरा ब्योरा देना; (३) शरीरकी मुख्य निशानियोंको नोट कराना, और तमाम उंगलियों तथा दोनों अंगुठोंकी छाप देना; (४) जो नियत समयके भीतर इस प्रकारकी अर्जी न दें, उन भारतीय स्त्री-पुरुषोंका ट्रान्सवालमें रहनेका हक रद कर दिया जाना; (५) अर्जी न करना एक अपराध माना जाना जिसके लिये जुर्माना, जेल वा देशनिकाले की सजा भी दी जा सकती है; (६) बच्चोंकी तरफसे माता-पिताको अर्जी देना होगा; (७) अर्जीदारको अपने परवाने हर किसी पुलिस अधिकारीको जहाँ और जिस वक्त मांगें, फौरन हाजिर कर देना चाहिये, वरना उसे जुर्माना अथवा कैदकी सजा दी जा सकती है; (८) परवाना जाँचनेके लिये अधिकारी लोग भारतीयोंके मकानमें भी घुस जा सकते हैं। (९) जो भी भार-

तीय बाहरसे ट्रान्सवालमें आवें, वे अपने परवाने उन अधिकारियोंको जरूर दिखला दें, जो उन्हें देखना चाहें; (१०) सरकारी अदालत आदियोंमें जानेपर किसी भी भारतीयसे वहाँका अधिकारी परवाना माँग सकता है; (११) किसी अधिकारीके परवाना मांगनेपर बतानेमें इनकार करना जुर्म है, जिसके लिये कोर्ट इनकार करने वाले भारतीयको जुर्माना तथा कैद तककी सजा दे सकता है।

गांधी इस अनीतिपूर्ण कानूनको देखकर स्तब्ध हो उठे! उन्हें आश्चर्य हुआ कि मनुष्य अपने स्वार्थ साधनके लिये ऐसे पाशविक नियमोंका भी सृजन कर सकता है! वे लिखते हैं "मुझे जरा भी खयाल न था कि संसारके किसी भी हिस्सेमें स्वतन्त्र मनुष्योंके लिये इस प्रकारका कोई कानून हो सकता है।" वे विस्मित और चकित थे कि सारी भारतीय कौमको दक्षिण अफ्रीकाके गोरे 'जुर्मी' समझ बैठे हैं, क्योंकि उपरोक्त कानूनके अनुसार उंगलियोंकी छाप, गांधीजी लिखते हैं "केवल जुर्म करने वालोंसे ही ली जाती है। इसलिये जबरदस्ती उंगलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे बड़ी ही भयंकर मालूम हुई। स्त्रियोंके तथा सोलह वर्षके भीतरके बच्चोंके परवाने लेनेकी प्रथा भी कानूनमें पहले पहल ही दर्ज हुई थी।"

निःसन्देह इस भयंकर कानूनका स्पष्ट हेतु यही था कि भारतीयोंको इस तरहसे तंग किया जाय कि वे स्वयमेव ट्रान्सवालसे भाग खड़े हों। गांधीजी और भारतीय लोग गोरी सरकारकी इस मंशाको खूब समझते थे और यह भी जानते थे कि यदि उक्त बिल पास हो गया और भारतीयोंने उसके सामने

सिर झुका दिया तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें ही उसका अनुकरण किया जायेगा, और परिणामतः सारे दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय कहीं पर भी न रहने पायेंगे—उनका पूरा अस्तित्व ही मिट जायगा। अतः दक्षिण अफ्रीकासे इस प्रकार बेइज्जत होकर भगाया और मिटाया जाना भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए गांधी-जीको अत्यन्त घातक मालूम दिया। फलतः स्वभिमानी गांधी अब गंभीरतासे राष्ट्रको इस प्रकार अपमानित और अप्रतिष्ठित करनेवाले इस 'खूनी कानून'को पास न होने देनेका उपाय सोचने लगे।

जोहान्सवर्गमें विराट सभा—

पहले अफ्रीकाके कुछ गणमान्य भारतीयोंको बुलाकर गांधीजी ने इस खूनी कानूनकी उनसे चर्चाकी और उन्हें भली प्रकारसे उक्त कानूनकी प्रत्येक बारीकियोंको समझाया। इस कानूनकी पाशविकता और भयंकरताको समझा लेने पर भारतीय बेतहाशा बिगड़ उठे। उनके आवेशका ठिकाना न रहा। लेकिन उनके आवेशको नर्म करते हुए गांधीजीने उन्हें शान्ति और धीरजके साथ कानूनके पेचीदे मामले पर विचार करनेकी सलाह दी। आवेश और उद्वेग भरे मस्तिष्क वा हृदयसे कभी कोई काम ठीक ढंगसे नहीं हुआ करता, गांधीजी इसे खूब समझते थे। उतावलापन गांधीजीको प्रकृतितः पसन्द नहीं रहा है। अतः गांधीजीने भारतीयोंके आवेशको दबाते हुए कहा कि "इस बिलका यही हेतु मालूम होता है कि यहाँ (अफ्रीका) से हमारा अस्तित्व ही मिटा दिया जाय। यह कानून कोई आखिरी सीढ़ी नहीं है।

बल्कि हमें कष्ट देकर भगा देनेकी पहला सीढ़ी है।[1] इसलिए हमारे सिर पर केवल ट्रान्सवालमें बसने वाले १०-१५ हजार

१.—गांधीजीके कथनमें कितना सत्य था, यह दक्षिण अफ्रीकामें होनेवाली आज तककी घटनाओंसे प्रत्यक्ष है १९२१-२२ में नेटाल सरकारने तीन ऐसे आर्डिनेन्स पास किये जिनसे भारतीय व्यापारको धक्का पहुंचा, भारतीयोंको म्युन्सिपलिटीके अधिकारोंसे वंचित कर दिया गया और यूरोपियन क्षेत्रमें उन्हें बसनेसे रोक दिया गया।

१९२४ में भारतीयोंको तंग करनेके लिए एशिया रिजर्वेशन बिल, इमिगरेशन और रजिस्ट्रेशन बिलकी तजवीज पेश हुई। १९३० में डा० मलानने ट्रान्सवाल लैन्ड टिन्योर बिल पेश किया जो १९३२ में पास हुआ, यद्यपि १९३६ में होफमेयरकी वजहसे उसमें कुछ सुधार कर दिये गये। उसी साल सलमूस ऐक्ट भी पास हुआ जिससे गरीब भारतीयोंको खूब तंग होना पड़ा। १९३९ में श्री स्टाटफोर्डके जरिये एशियाटिक-बिल पेश हुआ। सन् १९४३ में जनरल स्मट्स द्वारा पेगिंग ऐक्ट और १९४६ में घिटो बिल पास हुआ जिसके कारण आज भारतवासी दक्षिण अफ्रीकामें जीवन और मरणके संघर्षमें फँसे हुए हैं।

पूर्वी अफ्रीकासे भारतीयोंको उखाड़ फेंकनेके लिए इस समय वहाँ भारतीयोंके विरुद्ध 'पूर्वी अफ्रीका प्रवेश बिल' पास करनेकी तजवीज हो रही है। इसे रुकवानेके लिए वहाँके व्यापारी संघके अध्यक्षने हाल ही में (१७ दिसम्बर १९४७ को बम्बईसे यह समाचार प्रकाशित हुआ है) महात्मा गांधी और पं० नेहरुको तार भेजा है कि ब्रिटिश सरकारसे अपील कीजाय कि गोल मेज सम्मेलन या शाही कमीशनकी नियुक्ति होने तक पूर्वी अफ्रीका प्रवेश बिल स्थगित रखा जाय। क्योंकि यह बिल

भारतीयोंका ही नहीं, बल्कि दक्षिण अफ्रीका भरके तमाम भारतीयोंकी जिम्मेदारी है। और अगर हम इस बिलका अर्थ अच्छी तरह समझ लें तबतो सारे भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जवाबदारी भी हमारे सिर पर आती है। क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान होगा, बल्कि इसमें तो सारे भारतवर्षका अपमान है। अपमानका मतलब ही यह है कि निर्दोष मनुष्यका मान-भंग किया जाय।"[1]

ऐसी स्थितिमें आवेश और आवेगको छोड़कर गांधीजीने भारतीयोंको गंभीरता और विवेकके साथ कार्य करनेकी सलाह दी और सचेत कियाकि "इस कठिन प्रसंग पर अगर हम जल्दबाजी करेंगे, अधीरता दिखायेंगे, क्रुद्ध हो जायेंगे तो हम उसके द्वारा इस हमलेसे अपनी रक्षा न कर सकेंगे। पर यदि शांति-

---

पास होकर कानून बन गया तो इससे पूर्वी अफ्रीकामें न केवल भारतीयों का प्रवेश बन्द हो जायगा, बल्कि उनके व्यापार आदिको भी गहरा धक्का लगेगा।

इस समय (जनवरी १९४८) इमीगरेशन ऐक्टके विरुद्ध दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रह चल रहा है। नेटालके सत्याग्रही रोज ट्रान्सवालकी सीमाको लाँघकर वहाँ प्रवेश करते जा रहे हैं। ईश्वर जाने गोरे अन्याय का कब खातमा होगा! ताज्जुब तो यह है कि हिटलरका बुरा-भला कहने वाले आज स्वयं कमजोरों और दूसरों पर 'हिटलर शाही' बरत रहे हैं।

१—दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह, अनु, वैजनाथ जगन्नाथ मोयदे पृष्ठ १४५-१४६.

पूवक उसका उपाय ढूँढ़ेंगे, वक्त पर उसका अवलम्बन करेंगे, एकता पूर्वक रहेंगे, और अपमानका प्रतीकार करते हुए जो मुसीबतें आवें, उनका स्वागत करेंगे, तो मुझे तो विश्वास है कि स्वयं परमात्मा ही हमारी सहायता करेंगे।"

गांधीजीकी इस विवेकपूर्ण सलाहको मानकर भारतीय नेताओंने अन्तमें यह निश्चय किया कि उपरोक्त खूनी कानूनके विषयमें गांभीर्यपूर्वक सोचने-विचारनेके लिए भारतीयोंकी एक विराट सभा की जाय! यह निश्चय सबको पसन्द आया, और इसलिए सभाको बुलानेके लिए यहूदियोंकी एक नाट्य-शाला भी किराये पर ले ली गई। इस सभामें भारतीय लोग गांधीजीका आह्वान पाकर खूब बड़ी संख्यामें शामिल हुए। सभामें शामिल होनेके लिये ट्रान्सवाल के विभिन्न शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। अतः सभाके दिन सारी नाट्यशाला भारतीयोंसे खचाखच भर उठी। इस सभाके अध्यक्ष ट्रान्सवाल ब्रिटिश इन्डियन ऐसोशियेशनके अधिपति मि० अब्दुलग़नी नियुक्त किये गये।

इस महती सभामें प्रथम गांधीजीने बिलके विरोधमें एक प्रस्ताव रखा जिसका आशय यह था—'इस बिलका विरोध करनेके लिए तमाम उपायोंका अवलम्बन किया जाय, पर यदि इतने पर भी यह पास हो ही जाय तो भारतीयोंको उसके आगे सिर न झुकाना चाहिए, और इस अवज्ञाके फलस्वरूप जो जो भी दुःख सहने पड़ें, वे सब सहे जायँ।' इस प्रस्तावका सबने जोरोंसे स्वागत किया। भारतीय वक्ताओंमें से सेठ हाजी हबीबने ईश्वरकी दुहाईके साथ प्रस्तावका समर्थन करते हुए

यहां तक कहाकि "परमात्माको साक्षी करके हमें इस प्रस्तावको स्वीकृत करना है।......मैं इस मजलिससे भी यही सिफारिश करता हूं कि वह भी अल्लाहको साक्षी करके इसी प्रकार प्रतिज्ञा ले।"

यकायक ईश्वरका नाम लेकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करने और करानेकी ललकारने गांधीजीके हृदयमें एक तूफ़ानसा पैदा कर दिया! इस प्रतिज्ञाकी बात कहे जानेसे पूर्व गांधीजी ठीक तरह से प्रस्तावके बारेमें अपना वा देशवासियोंके कर्तव्या-कर्तव्यको ठीक तरहसे निश्चित न कर सके थे। किन्तु ईश्वरके नामपर सेठ हवीब द्वारा प्रतिज्ञाकी आवाज़ने उन्हें चेता सा दिया! उनका अंतर मानो 'ईश्वर'के नाम लिये जानेसे जाग सा उठा! महात्मा होनेके बादसे गांधीजीको बहुधा अंतरकी प्रेरणा ही चेताती रही है, लेकिन इस समय उनको चेतानेवाली प्रेरणा अन्तरसे नहीं, बाहरसे मिली थी! यह प्रेरणा सेठ हबीबके कथनसे ऊर्जित हुई थी।

गांधीजीने लिखा है कि बिलके "समर्थनमें और भी कई जोशीले भाषण हुये थे। पर जब सेठ हवीब बोलते-बोलते कसम खाने पर आये तब मैं एकदम सावधान हो गया! बस उसी समय मुझे अपनी और कौमकी जिम्मेदारीका पूरा-पूरा खयाल हुआ...!"

प्रस्ताव केवल पास करनेके लिये ही नहीं होने चाहियें, किन्तु उनपर चलना भी जरूरी है, नहीं तो उससे प्रतिज्ञा तोड़नेका पाप होता है, गांधीजी इस बातको पूरी तरह समझते थे! स्वयं गांधीजीने अभीतक प्रतिज्ञा करने और लोगोंसे भी प्रतिज्ञा

करवानेकी बात न सोची थी, किन्तु हबीबके कथनने उन्हें प्रतिज्ञा करनेका जो मार्ग दिखलाया, वह बहुत ही पसन्द आया !

अतः गांधीजीने हबीबका अनुसरण करते हुए अब जनतासे भी 'प्रतिज्ञा' करवाने की ठानी ! लेकिन प्रतिज्ञा करानेसे पहले उन्होंने निश्चय किया कि "जनताको उसके तमाम परिणामों-से परिचित करा देना चाहिये, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूप से उसे समझा देना चाहिये और इतने पर भी यदि वह प्रतिज्ञा करे तो उसका सहर्ष स्वागत करना चाहिये। और अगर न करे तो मुझे समझ लेना चाहिये कि लोग अभी अंतिम कसौटी पर चढ़नेके लिये तैयार नहीं हुये !"

इस निश्चय के अनुसार गांधीजीने अब अपने देशवासियोंको जांचना और टटोलना शुरू किया ! गांधीजीकी यह भी एक महान् विशेषता है कि वे अपने पीछे लोगोंको कभी बहकाकर या धोखे में डालकर ले जाना पसन्द नहीं किया करते ! उनको अहंकारी व झूठे नेतृत्वका कभी शौक नहीं रहा ! वे तो हमेशा सेवक रूपसे रहे हैं और इसलिये अपने साथ निरहंकारी, सच्चे और त्यागी व्रतधारियोंको ही चाहते रहे हैं ! इसी उसूल पर चलते हुये उन्होंने भारतीयोंको प्रतिज्ञा लेनेसे पहिले उसका कठिन स्वरूप खुले और भयप्रद शब्दोंमें जाहिर कर दिया !

भारतीयोंको सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा कि वे ही लोग कसम खायें जो अपनेमें कसम खानेकी शक्ति प्रतीत करें ! कसम-के कुपरिणामों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजी ने बतलाया कि "यदि अधिकांश भारतीय कसम खांय और अपनी-अपनी कसम पर कायम रहें, तो यह कानून पास भी न हो और यदि हो भी

जाय तो फौरन् रद हो जाय ! " पर इस आशापूर्ण चित्रके साथ गांधीजी ने नैराश्यपूर्ण गर्त्तकी ओर भी लोगोंका ध्यान खींचा, और स्पष्टतया यह बतला दिया कि 'दूसरी तरफसे केवल निराशा-वादी बनकर कसम खानेके लिये भी उन्हें तैयार रहना चाहिये !' और तब गांधीजी ने जनताके सामने होने-वाले संघर्षके कड़ुवे और कठोर परिणाम पेश किये—"हमें जेलमें जाना होगा ; वहां अपमान सहन करना होगा; भूख-प्यास और धूप भी सहना होगा; सख्त मजदूरी करनी पड़ेगी। उद्धत दारोगाओंके हाथकी मार भी खानी पड़े तो आश्चर्य नहीं ! जुर्माना होगा और कुर्कीमें माल असबाब भी बिक जा सकता है।...अर्थात् संक्षेपमें कहना चाहें तो आश्चर्य नहीं कि आप जितने दुःखकी कल्पना कर सकते हों, वे सभी हमें सहने पड़ें, और समझदारी तो इसी में है कि हरएक आदमीको यही सोचकर प्रतिज्ञा लेनी चाहिये कि यह सब अकेले मुझीको सहना पड़ेगा।" और ऐसा होने पर गांधी जीने उन्हें इस बातका पूरा विश्वास दिलाया कि विजय हमारी ही होगी, क्योंकि उन्होंने कहा—"यह तो मैं हिम्मत और निश्चयके साथ कह सकता हूं कि जब तक अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहने वाले मुट्ठीभर आदमी भी बने रहेंगे, तबतक इस युद्धका अंत एकही प्रकारसे हो सकता है अर्थात् हमारी ही जीत होगी।"

स्मरण रखिये कि गांधीजी के नेतृत्व की महानता इसी बातमें है कि वे दूसरोंको ही किसी कार्यविशेष के लिये प्रेरित नहीं करते, किन्तु स्वयं भी वे उस कार्यके पीछे होते हैं, जिसके पीछे चलनेको वे दूसरोंको आमंत्रित किया करते हैं ! वे अपने उठाये हुये कार्यकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी वस्तुतः अपने पर ही

समझते हैं। उपरोक्त अवसर पर अपनी जिम्मेदारी पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने उद्घोषित किया—"यद्यपि मैं आपको प्रतिज्ञा लेनेसे सामने आनेवाली कठिनाइयां दिखा रहा हूँ तथापि मैं आपको प्रतिज्ञा लेनेके लिये प्रेरित भी कर रहा हूँ। इसमें मैं अपनी जिम्मेदारी बराबर समझता हूँ। हो सकता है कि आवेश या रोषके कारण इस सभाका वहुत बड़ा हिस्सा यह प्रतिज्ञा करे, पर मुसीबतके समय कमजोर साबित हो और आखिरी ताप सहन करनेके लिये मुट्ठी भर आदमी हो रह जावें।"

अतः बचनोंमें दृढ़ और आत्मविश्वास पर अटल आस्था रखनेवाले गांधीने दृढ़ और लौह शब्दोंमें लोगोंको जतला दिया कि ऐसी स्थितिमें "मेरे जैसे आदमीके लिये तो केवल एक ही रास्ता बचा है—मर मिटना, पर इस कानूनके वश न होना। मैं तो यह भी मानता हूँ कि कर्त्तव्य कीजिये—यद्यपि ऐसा होने की जरा भी संभावना नहीं तथापि मान लीजिए—कि सभी फिसल पड़ें और अकेला मैं ही रह जाऊ तथापि मुझे यह पूरा विश्वाश है कि उस हालत में भी मुझसे प्रतिज्ञाका भंग कदापि नहीं हो सकता।" और फिर गांधीजीने मुड़ कर मंच पर बैठे अन्य नेताओंकी ओर देखते हुये कहा कि जो कुछ उन्होंने कहा है उसे कोई थोथा घमंड न समझें, किन्तु यह सब "इस मंच पर बैठे नेताओंको सावधान करनेके लिये कहा गया है। अपना उदाहरण लेकर नेताओंको मैं विनयपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि अगर आपमें यह शक्ति न हो कि आपके केवल अकेले रह जाने पर आप उस पर दृढ़ न रह सकेंगे तो वह प्रतिज्ञा मत कीजिये।"

लेकिन आगत संकटों और विपत्तियोंका इतना विराट रूप दिखलाने पर भी पूरी सभाने खड़े होकर और परमात्माकी साक्षी देकर हर्ष और स्वच्छन्दताके साथ प्रतिज्ञा ली कि 'यदि कानून पास भी हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकावेंगे।' इस प्रतिज्ञा और जनताके अदम्य तथा अपूर्व उत्साहका गांधीजीके हृदयपर बड़ा ही अमिट प्रभाव पड़ा। उस प्रभावोत्पादक दृश्यका उल्लेख करते हुये गांधीजी लिखते हैं कि "यह दृश्य ऐसा था कि मैं उसे कभी भूल नहीं सकता।"'[1] इस विराट सभाके बाद दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय कार्यकर्ताओंने सर्वत्र जगह-जगह खूनी कानूनके विरोधमें सभायेंकीं और लोगोंसे प्रतिज्ञा करवाई। देखते ही देखते सारा दक्षिण अफ्रीका इन प्रतिज्ञाओंकी ज्वालासे प्रज्वलित हो उठा और लोग आगत 'संघर्ष' की बाट जोहने लगे।

इस प्रकार गांधीजीके नेतृत्वमें दक्षिण अफ्रीकामें प्रथमतः अपने अधिकारों और अन्यायके विरुद्ध लड़नेके लिये उस अन्दोलनका सूत्रपात्र हुआ जो आज संसारमें 'सत्याग्रह'के नामसे प्रसिद्ध है और जिस युद्ध-पद्धतिका अनुसरण कर भारत आज स्वतंत्र हो गया है।

संघर्ष छेड़नेसे पूर्व शांति द्वारा मामला तय करने की गरजसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नेताओंने स्थानीय सरकारसे मिलनेके लिये भी प्रयत्न किये! एक भारतीय शिष्ट-मण्डल (Deputation) औपनिवेशिक सचिव मि० डन्कनसे भी मिला। सचिवको भारतीयोंकी प्रतिज्ञा के बारेमें भी सचेत किया गया। सेठ

1. Satyagraha In South Africa, M. K. Gandhi, Trans., by Govindji Desai, pp. 169–170.

हाजी हबीबने, जो डेप्यूटेशनके एक मेम्बर थे, खुले शब्दोंमें सचीवको यहां तक अगाह किया कि 'अगर मेरी औरतकी उगंलियोंकी छाप लेनेके लिये कोई अधिकारी आवेगा तो....उसे मैं जानसे मार डालूंगा और खुद भी मर जाऊंगा।' इस अदम्य साहसको देखकर सचिव घबरासा उठा। अतः शिष्टमण्डलको आश्वस्त करते हुए उसने कहा कि औरतोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धाराएं उठा दी जावेंगी; लेकिन बाकी कानूनको उन्हें भल-मनसाहतके साथ स्वीकार कर लेना चाहिये। शिष्ट-मंडलने स्त्रियोंसे संबंध रखनेवाली धाराको हटानेका वायदा देनेके लिये तो सचिवका आभार प्रकट किया पर कानूनकी शेष शर्तोंको मान लेनेकी उनकी नेक सलाह अपनानेसे साफ इन्कार कर दिया!

स्त्रियों परसे खूनी कानूनकी शर्त्तोंका हटाया जाना निःसन्देह भारतीय आन्दोलनकी प्रथम विजय थी! इस विजयसे भारतीय आन्दोलनको शक्ति और बल तो मिला ही, किन्तु यह भी प्रकट होगया कि होनेवाले आन्दोलनकी प्रखरताका गोरी सरकार भी अनुभव करने लगी है। इसके अलावा भारतीयोंको यह विश्वास भी होगया कि संगठित होकर दृढ़तासे कार्य करने पर निश्चयपूर्वक किसी और कैसी भी शक्तिका सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। निःसन्देह गांधीने उन्हें ऐक्यकी महिमा और आत्मकी शक्तिका प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया था।

आन्दोलनका नामकरण—

आन्दोलनका इस प्रकार निश्चय कर लिये जाने पर गांधीजी अब इस बातकी चिन्ता करने लगे कि अपने

शान्तिमय अवज्ञा आन्दोलनका नाम क्या रखा जाय ? अतः पहले उन्होंने इस आन्दोलनका नाम "पैसिव रिजिस्टेन्स" (Passive Resistance) रखा। किन्तु इस नामसे वे संतुष्ट न हो सके, क्योंकि एक तो इस नामसे वह अर्थ पूर्णतया व्यक्त न होता था जो गांधीजी चाहते थे, और दूसरे वे अपने आन्दोलन को अंगरेजी नामसे पुकारनेमें संकोच भी मालूम कर रहे थे। फलतः गांधीजीने आन्दोलनके नामके लिये 'इंडियन ओपीनियन' द्वारा भारतीयोंसे सुझाव मांगे। इन सुझावोंमें एक सुझाव श्री मगनलाल गांधीका था कि आन्दोलनका नाम "सदा ग्रह" रखा जाय। यह सुझाव गांधीजीको पसन्द आया। पर इस नामके 'द' को 'त' बनाकर और उसमें 'य' जोड़कर गांधीजीने "सदाग्रह" को "सत्याग्रह" में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रकार सत्याग्रह शब्दका जन्म हुआ और गांधीजीके आन्दोलन सत्याग्रहकी संज्ञासे पुकारे जाने लगे। इस नामकी उपयुक्तताको समझाते हुए गांधीजीने लिखा है "सत्यके अंदर शान्तिको समाविष्ट मानकर किसी भी वस्तुके लिये आग्रह किया जाय तो इसमेंसे बल उत्पन्न होता है। इसलिये "आग्रह" के द्वारा उसमें बलका भी समावेश करके भारतीय आन्दोलनका नामकरण "सत्याग्रह" अर्थात् सत्य और शान्तिसे उत्पन्न होनेवाला 'बल' करके उसका प्रयोग शुरू कर दिया। तबसे इस युद्धको "पैसिव रिजिस्टन्स" नामसे पुकारना बंद कर दिया गया। "सत्याग्रह" के नामसे पुकारे जाने वाली वस्तुका और सत्याग्रहका जन्म इस प्रकार हुआ है"।[1]

---

1. Ibid. pp. 172–173.

विलायतको डिप्यूटेशन—

भारतीयोंके आन्दोलनकी धमकीसे स्त्रियों से संबंध रखने वाली धाराएं तो औपनिवेशिक सचिवके वायदेके अनुसार कानूनसे हटा दी जा चुकी थीं। लेकिन शेष कानून १२ सितंबर १९०६ को प्रायः उसी रूपमें पास कर दिया गया, जिस रूपमें मूलतः वह प्रकाशित हुआ था।

किन्तु भारतीय इससे निराश न हुये। वे हिम्मत बाँधकर वहाँकी गोरी सरकारसे जूझनेको तैयार हो चुके थे और केवल उपयुक्त अवसरकी बाट देखी जा रही थी। गांधीजीकी सलाह भी थी कि युद्ध छेड़नेसे पूर्व जितने वैध प्रयत्न हो सकते हैं, उन सबका पहले प्रयोग कर लिया जाना चाहिये। ट्रान्सवाल उस समय क्राउन कॉलोनी था। उक्त प्रकारकी कॉलोनी के कानून और उनके व्यवहारके लिये बड़ी सरकार उत्तरदायी रहती है। इसलिये उनकी मंजूरीके लिये कॉलोनीकी सरकारको बादशाहकी सम्मति लेना आवश्यक होता है। इसलिये गांधीजीने युद्ध छेड़नेसे पहले भारतीयोंको उपरोक्त खूनी कानूनके विरोधमें एक डिप्यूटेशन बड़ी सरकारके पास इंगलैंड भेजने की सलाह दी। गांधीजीकी यह राय सबको पसन्द आई और निश्चय हुआ कि औपनिवेशोंके मंत्री लार्ड एल्गिन के पास भारतीयोंकी ओरसे दो प्रतिनिधि इंगलैण्ड भेजे जाँय। इस निश्चयके अनुसार गांधीजी और मि० हाजी वजीर अलीको जो ट्रान्सवाल ऐसोसियेशनके मेम्बर थे, सर्वसम्मतिसे इंगलैण्ड जानेके लिए प्रतिनिधि चुन लिया गया।

फलतः अक्तूबर २०, १९०६ को गांधीजी मि० हाजी वजीर

अलीके साथ विलायत पहुंचे, और तुरन्त ही वहाँ अपने काम पर लग गये। वह अर्जी जो उनको सचिव लार्ड एल्गिनको देनी थी, छपवा ली गई। पर सचिवसे मिलनेसे पूर्व गांधीजी पहले दादा भाई नौरोजीसे जाकर मिले और उनके जरिये उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमिटीसे भी परिचय प्राप्त कर लिया। दादाजीने गांधीजीको अपने आन्दोलनको बढ़ाने और मजबूत करनेके खातिर सब पक्षोंका सहयोग लेनेकी सलाह दी। यह सलाह गांधीजीको बहुत पसन्द आई, और इसलिए जहाँतक बन पड़ा, वे अपना पक्ष लेकर सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों और दलोंसे मिलनेका यत्न करते रहे। इसी सिलसिलेमें उन्होंने मैंचेरजी भावनगरीसे भी मुलाकात की, जिनसे उनको अपने कार्यमें यथेष्ठ सहयोग प्राप्त हुआ। इसी तरह गांधीजी कई एक एंग्लो-इंडियन और पार्लियामेन्टके सदस्यों आदिसे भी अपने मामलेके विषयमें जाकर मिले और उन्हें अपने पक्षकी सारी बातों और दक्षिण अफ्रीकाकी वस्तु-स्थितिसे परिचित कराते रहे। दादा और भावनगरीने गांधीजीको यह भी सुझाया कि भारतीय डिप्यूटेशन जब लार्ड एल्गिनको मिलने जाय तो सुविख्यात एंग्लो-इंडियन श्री लेपल ग्रीफन, जिनका इंगलैंडमें काफी प्रभाव था, उनको भी साथ ले लिया जाय। गांधीजीने इस रायका महत्व समझा और डिप्यूटेशनके साथ ग्रीफनको शामिल होनेके लिये तैयार कर लिया। अतः भेंटके समय गांधीजी, हाजीके अलावा ग्रीफनको भी डिप्यूटेशनमें साथ लेकर एल्गिन तथा भारत-मंत्री श्री मोर्लेसे मिले। लार्ड एल्गिनने बाहरी रूपसे डिप्यूटेशनके साथ खूब हमदर्दी दिखलाई और उसके प्रतिनिधियोंको वचन भी दिया कि उनसे जो कुछ बन पड़ेगा, वे

अवश्य करेंगे। लार्ड मोर्लेने भी इसी प्रकार डिप्यूटेशनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की और स्थितिमें सुधार किये जानेका दिलासा दिया।

स्थाई समितिकी स्थापना:—

इसी समय गांधीजीके मनमें यह खयाल उठा कि यदि वे स्थाई रूपसे इंगलैण्डमें अपने पक्षका समर्थन चाहते हैं तो उन्हें वहाँ पर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंसे सहानुभूति रखने वाले लोगोंकी एक स्थाई समिति स्थापित कर लेनी चाहिये। इस निष्कर्ष पर पहुंचकर दक्षिण अफ्रीकाको वापिस लौटनेसे पूर्व उन्होंने एक दिन सुबहको प्रमुख १०० सदस्योंको अपने यहाँ आमंत्रित किया और अपना पक्ष तथा स्थाई समितिकी योजनाको उनके सामने रखा। इस योजनाको सभीने पसन्द किया और तुरन्त ही दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके हित काम करनेके लिए 'साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी' (South Africa British Indian Committee) नामसे लन्दनमें एक संस्था स्थापित कर दी गई जिसके पहले मंत्री मि० रिच नियुक्त हुये। इस कमिटीकी स्थापनासे जैसा कि गांधीजीने सोचा था निःसंदेह उनके आन्दोलनके प्रचार कार्यमें बड़ी सहायता मिली।

इस प्रकार विलायतमें ५-६ सप्ताह निरन्तर आन्दोलनके कार्यमें व्यतीत करनेके पश्चात गांधीजी और मि० हाजी वजीर अली दक्षिण अफ्रीकाको लौट चले। मदिरामें पहुंचनेपर यकायक गांधीजीको मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने यह प्रकट किया है कि ट्रान्सवालके एशियाटिक एक्टको नामंजूर

करनेके लिये सचिव मंडलने बादशाहसे सिफारिश कर दी है। गांधीजी और अली इस खुश खबरीको पाकर स्वभावतः हर्षित हो उठे। अपने आन्दोलनकी इस सफलतासे उन्हें सचमुच बड़ा ही सन्तोष और आनन्द हुआ। किन्तु सरल और निष्कपट गांधीको तब क्या मालूम था कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बाहरसे क्या कहते हैं और भीतरसे क्या कर गुजरते हैं? पर दक्षिण अफ्रीका पहुँच जानेपर यह भेद भी गांधीजीसे छिपा न रह सका।

सत्याग्रहका आरम्भ

अध्याय १०

ब्रिटिश चाल—

गांधीजीको तो लार्ड एल्गिनने यह आश्वासन दिया था कि वे उस खूनी कानूनको मंजूर न होने देंगे, लेकिन दूसरी तरफ उन्होंने ट्रान्सवाल सरकारके राजदूत सर रिचर्ड सालोमनको यह सलाह दी कि जब तक ट्रान्सवाल टाउन कॉलोनी या सल्तनती संस्थान है, तब तक तो वे बादशाहको ऐसे भेद भरे कानूनको पास न होने देनेकी ही सलाह देंगे, पर जनवरी १९०७ को जब ट्रान्सवालको उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दे दिया जायगा, तब उस समय यदि यह कानून पुनः उत्तरदायित्वपूर्ण शासनकी धारा सभामें स्वीकृत किया गया तो बड़ी सरकार उसे नामंजूर नहीं करेगी।

लार्ड एल्गिनका छिपकर ट्रान्सवालके राजदूतसे इस प्रकारकी सलाह करना एक प्रकारसे भारतीयोंके साथ दगा और अन्याय करना था। गांधीजीके शब्दोंमें "सच पूछा जाय तो लार्ड एल्गिनने अपने इन वचनों द्वारा ट्रान्सवालके गोरोंको भारतीयोंके खिलाफ अपनी हलचल जारी रखने के लिये एक तरह से उत्साहित ही किया।"[1]

---

1. Satyagraha in South Africa ; P. 195.

भारतीयों में रोष और प्रतिक्रिया

अतः जब गांधीजी और अली जोहान्सबर्ग पहुंचे तो उन्हें यही बात सुनने को मिली कि लार्ड एल्गिनने और बड़ी सरकार ने भारतीयोंके साथ धोखा किया है। इस धोखे की बातसे भारतीय क्षुब्ध और क्रोधित हो उठे। भारतीय कौममें ऐसे अन्यायके खिलाफ उठने की भावना अब पूर्णरूपसे प्रबल हो उठी। उनके अन्तर का विद्रोह हृदयके बांध को तोड़कर भूमिपर उतर आया। भारतीयोंने बड़ी और छोटी सरकार की जीर्ण शीर्ण चिन्ता और खौफ अपने दिल वा दिमागसे निकाल कर दूर फेंक दी, और अपने आत्मबल तथा न्यायबल का सहारा लेकर दृढ़ताके साथ लड़ने को प्रस्तुत हो गये। संक्षेपमें जनबल ने साम्राज्यवादके पशुबल को चुनौती दे दी थी।[1] इस हलचलके कारण विश्वकी आँखें विस्मयसे भरकर अफ्रीका की ओर घूम उठीं। गोरे भी सोचने लगे यह कैसा दुस्साहस !

ट्रान्सवाल की नयी सरकार और खूनी कानून—

पहली जनवरी १९०७ को ट्रान्सवालमें उत्तरदायित्वपूर्ण शासन भी कायम हो गया। इस नयी उत्तरदायी सरकारने पहला गैर उत्तरदायी काम यह किया कि अपनी पार्लियामेण्टकी पहली बैठकमें ही सरासर कानून पास करनेकी सारी कार्रवाइयाँ पूरी करके 'खूनी कानून'को जैसाका तैसा मूल रूपमें पास कर दिया। २ भारतीयोंने पहलेकी भाँति अपनी तरफसे इस कानूनके

1. An Indian Patriot. by j. j. Doke p 74.

विरोधमें अर्जियाँ आदि नई सरकारको भी भेजीं, किन्तु उनपर गौर करने वाला वहां कौन बैठा था ? फलतः सरकार द्वारा उक्त कानूनके आधार पर भारतीयोंसे नवीन प्रकारके परवाने लेनेके लिए उसी सालके (१९०७) अगस्तकी पहली तारीखका दिन भी निश्चित कर लिया गया।

सत्याग्रहकी तैयारी—

सरकारने जिस निर्भीकताके साथ उस कानूनको पास किया, उसी निर्भीकताके साथ भारतीयोंने भी उसका स्वागत किया। भारतीय इस बार खूनी कानूनको पास हुआ देखकर डरनेके बजाय उससे भिड़नेके लिए तनकर खड़े हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि मर मिटेंगे; लेकिन ऐसे अमानवीय कानूनको सिर न झुकायेंगे। गांधीने उनमें निःसन्देह अपने आत्मबलका आश्रय और 'सत्याग्रह'का अपूर्व सहारा पैदा कर दिया था। अतः खूनी कानून क्या पास हुआ कि भारतीय हृदयोंसे खूनी राजशक्तिका भय ही निष्कासित हो उठा ! सत्य असत्यके सामने क्यों और कैसे पराभूत हो सकता है,—ये भाव गांधीजीने भारतीय हृदयोंमें पूरी तरहसे रोप दिये थे। फलतः गांधीके नेतृत्वमें सरकारकी कुनीति और असत्यका सामना करनेके लिए निर्भीक होकर सम्पूर्ण भारतीय सत्यकी अर्चना करते हुए सत्याग्रह करनेकी तैयारी पर जुट गये। इस सत्याग्रहके आन्दोलनको संगठित करनेके लिए 'पैसिब रिजिस्टेन्स ऐसोसियेशन' अथवा सत्याग्रह मण्डलके नामसे एक मण्डल भी स्थापित कर लिया गया। आन्दोलनमें शरीक होने वाले सभी सत्याग्रहियोंको इस मंडलके सदस्य बनना

आवश्यक था। सत्याग्रह्के लिए सिपाही तैयार करनेके लिए सर्वत्र सभाएँ भी की जाने लगीं। जनताको खूनी कानूनके पास होनेसे जो नवीन परिस्थिति पैदा हो गयी थी समझाई गई, और उन्हें फिरसे यह प्रतिज्ञा लेनेको उत्साहित किया गया कि वे खूनी कानूनके विरोधमें अन्त तक देशवासियोंका साथ निभावेंगे। और उमंगसे भरी जनताने सर्वत्र ही बड़े उत्साह और तत्परताके साथ अपनी तरफसे खुशी-खुशी कौमको मुक्त होकर सहयोग देनेका वचन दिया।

सत्याग्रहकी तैयारीमें सबसे विराट सभा ३१ जुलाईको प्रिटोरियामें हुई थी। इस सभामें लोग बड़े जोश और उत्साह के साथ बहुत बड़ी संख्यामें शामिल हुए थे। खूनी-कानूनके अनुसार नये परवानोंके लागू किये जानेके दिन भी तब निकट आ पहुंचे थे। इससे भारतीय और गोरी सरकार दोनोंमें गहन स्तब्धता छा उठी थी। दोनों ही कानून के परिणामों का मन ही मन चित्र खींचनेमें तल्लीन थे। भारतीय भावी सत्याग्रह-संग्रामकी कल्पनामें चिन्तातुर थे और गोरी सरकार इस चिन्तासे ग्रस्त थी कि क्या वह एक कौम को सचमुच बल प्रयोगसे झुका सकेगी ? अतः प्रिटोरियामें जब सभा हो रही थी, गोरी सरकारकी तरफसे मि० हास्किनके मुखसे भारतीयोंको यह संदेश दिया गया—"ट्रान्सवाल सरकार की शक्तिसे भारतीय भलीभांति परिचित हैं। इस कानूनमें बड़ी सरकारकी भी सम्मति है।... जिस हालतमें पहले भारतीय कौमका विरोध सफल नहीं हुआ और कानून पास हो गया, उस हालतमें अब भारतीय कौमको चाहिये कि वह उक्त कानूनको

मान ले ... । उन कानूनके आधार पर जो कुछ धाराएं बनाई गई हैं, यदि उनमें कोई हलका सा फेर-फार कराना हो और उसके विषयमें कुछ कहना सुनना हो तो जनरल स्मट्स निश्चय ही आपकी फरियाद ध्यानपूर्वक सुनेंगे।" पर भारतीय कौमने,जिसने परमुखापेक्षी और परावलंबी न होनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था—और जिसने अपने आत्म-बलका सहारा लेकर अन्त तक असत्यसे जुझनेकी तैयारी भी कर ली थी, हास्किनकी इस भीरु, निष्क्रिय और फालतू सलाह पर ध्यान देनेसे साफ इनकार कर दिया !

प्रिटोरियाकी उस दिन की सभाके सर्वमान्य वक्ता श्री अहमद महम्मद काछलिया थे। इसलिए हास्किनको उत्तर देनेका उन्हीं पर भार पड़ा। काछलियाने इस उत्तरदायित्वको निश्चय ही एक सच्चे सत्याग्रही सैनिक की तरह पूरा किया जिससे प्रसन्न होकर गांधीजीने उन्हें 'पुरुष सिंह'की उपाधि प्रदान की ! इस पुरुषसिंहने गोरी सरकारको चुनौती देते हुए कहा—"ट्रान्सवाल सरकारकी ताक़तको हम जानते हैं। पर इस खूनी कानूनसे अधिक किस बातका डर हमें सरकार बता सकती है ? जेल भेजेगी, जायदाद बेंच देगी, हमें देशसे बाहर कर देगी—फाँसीपर लटका देगी। लेकिन यह सब हम सहन कर सकते हैं, पर इस कानूनके आगे सर झुकाना असंभव है।" और फिर गर्दन पर हाथ रखकर पुरुष-सिंह और भी जोरसे गरज उठा—'मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मैं कत्ल हो जाऊँगा, पर इस कानूनको नहीं मान सकता और मैं चाहता हूँ कि यह सभा भी यही निश्चय करे।"[1]

1. Satyagraha in south Africa. pp. 207–208

और सचमुच आत्मत्याग और बलिदानके लिए प्रस्तुत कौमने मुक्त हृदय और कंठसे उस पुरुषसिंहके निश्चयको स्वीकार किया। पुरुषसिंहके बाद गांधीजीने भी लोगोंको स्पष्ट शब्दोंमें यह जतला दिया कि "यदि इस समय हमलोग पीछे हट गये तो अपनी जाति और अपने देशको गिराने वा कलंकित करनेके आधारभूत कारण बन जायेंगे और हमारी संतानें हमें हमेशा इस कायरताके लिए धिक्कारा करेंगी—कोसा करेंगी। इसलिए उचित यही है कि हम अपनी और मातृभूमि की प्रतिष्ठा एवं गौरवकी रक्षाके लिए हर प्रकारसे कष्ट सहनेको प्रस्तुत रहें। हमें सत्याग्रहके द्वारा गोरे शासकों को भी अपने आत्मबल का प्रभाव दिखला देना चाहिए।" ये उपदेश वा भाषण के शब्द नहीं, क्रान्तिके स्फुलिंग थे, जिन्होंने भारतीयोंके हृदयों को पूरी लपटोंके साथ प्रज्वलित कर दिया। गोरी सरकार का भय भी इन्हीं लपटोंमें पड़कर जलकर खार हो गया, और भयमुक्त भारतीय कृतसंकल्प हो गये कि परवानोंके दफ्तर खुलने पर वे उनमें जाकर कभी रजिस्ट्री न करावेंगे चाहे उसका जो भी परिणाम हो। यह निश्चय कोई मामूली निश्चय नहीं, सत्याग्रह संग्रामका श्रीगणेश था।

प्रारम्भमें भारतीयोंके इस सत्याग्रह आन्दोलनमें चीनी लोगोंने भी भाग लिया, क्योंकि वे भी उस खूनी कानून की कक्षा में आते थे। लेकिन अधीर होकर चीनी लोग सत्याग्रहके संग्राममें भारतीयों की भांति अंत तक डटे न रह सके और जल्दी ही उससे पृथक हो गये।

पिकेटिंग और पकड़ा धकड़ी—

जुलाई महीनेमें ट्रान्सवाल सरकारने खूनी कानूनके अनुसार भारतीयोंको रजिस्टर करने और परवाने लेनेके अनेक स्थानोंमें दफ्तर खोल दिये। अगस्त पहलीसे ये दफ्तर चालू होने को थे। किन्तु भारतीय प्रिटोरिया आदिकी सभाओंमें पहले ही निश्चय कर चुके थे कि वे कतई परवाना न लेंगे। अतः उन दफ्तरोंके खुलने पर गांधीजी की सलाह पर यह निश्चय कर लिया गया कि उनपर पिकेटिंग (धरना) की जाय, और इस हेतु दफ्तरों को जानेवाले रास्तों पर स्वयंसेवक खड़े किये जांय जो दफ्तरको जानेवाले भारतवासियोंसे परवाना न लेने के लिए अनुनय-विनय किया करें। इस स्वयं-सेवकके कार्यके लिए अधिकतर १२ वर्षसे १८ वर्ष तक के युवक ही भर्ती किये गये। युवक स्वयंसेवकोंने बहुत ही सुन्दरता और योग्यताके साथ इस गुरुतर कार्यको संपादित किया। उनकी कार्य-कुशलतासे गांधीजी बहुत खुश हुए। उन्हें यह देखकर भी बड़ी प्रसन्नता हुई कि जिस विनय. सरलता और शांतिके साथ उन्होंने युवकदलको कार्य करनेको कहा था, उसका अन्त तक अक्षरशः पालन किया गया!

दूसरी ओर भारतीयोंके इस विप्लवसे ट्रान्सवालकी सरकार परेशान थी। भारतीयोंके बहिष्कार आन्दोलनके कारण दफ्तरों का खुलना बेकार हो रहा था। गांधीजी के नेतृत्वमें भारतीय सरकारी दफ्तरोंकी तरफ पीठ फेरकर निश्चल और अडिग होकर खड़े थे। भारतीयोंके इस पौरुष और दृढ़ता की सराहना करते हुए १८ सितम्बरको गोखलेने भी गांधीजी को बधाईका तार भेजा

था। इधर सरकार सोचमें थी कि क्या करे ? पहले तो उसे यह आशा हुई कि स्यात् भारतीय डरकर और स्वार्थमें पड़कर खुदही काफी संख्यामें रजिस्ट्री करा लेंगे, लेकिन जब सरकारको यह आशा जल्दी पूरी न होती दिखाई दी तो उसने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रजिस्ट्रीकी अवधि ३० नवम्बर तक बढ़ा दी। निःसन्देह वह अभी तक अपना कर्तव्या-कर्तव्य निर्धारित ही न कर सकी थी। अवधि बढ़ानेसे भी वह समस्याको न सुलझा सकी, क्योंकि उसके बाद भी ४०० से अधिक भारतीयोंने रजिस्ट्री न करवाई। ये रजिस्ट्रियां खुल्लमखुल्ला भी नहीं हुई थीं। इन रजिस्ट्री करानेवालोंमें केवल उन भीरुओंने कौमसे लुक-छिप कर परवाने लिये थे, जो नितान्त स्वार्थी थे, और इसलिए कष्ट तथा आर्थिक हानि सहन नहीं कर सकते थे।[1]

लेकिन इन परवाने लेने वालोंके कारण एकत्वमें थोड़ा-बहुत विघ्न जरूर हुआ; क्योंकि गांधीजीके शब्दोंमें उनके उक्त कार्यसे, "There was a rift in the lute."--"एक स्वरमें बजती हुई बांसुरीमें फूट पड़ गई थी।"[2] परन्तु सौभाग्यसे इन फूट डालनेवालोंकी संख्या फिर भी नगण्य थी। इस समय कुल भारतीयोंकी संख्या वहांपर १३,००० थी, अतः परवाना लेने वालोंके बाद १२,५०० भारतीय तब भी दृढ़ और अचल होकर ट्रान्सवाल सरकारका मुकाबला करनेको कटिबद्ध थे।

नेताओंकी गिरफ्तारियां--

भारतीयोंकी इस एंठको देखकर ट्रान्सवाल सरकार आखिर चिढ़ उठी। उसने अब बल प्रयोग द्वारा भारतीयोंको झुकानेका

१. वही पृ० २१३ २. वही पृ० २१४

इरादा किया। इस दिशामें जर्मिस्टनके भारतीयोंपर सरकारका पहला प्रहार हुआ। सरकारने सबसे पहले जर्मिस्टनके पण्डित रामसुन्दर नामक एक भारतीय नेताको गिरफ्तार किया और मुकदमा चलाकर उसे एक महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। यह अभिनय भारतीयोंको दहलाने और दबानेके लिए ही किया गया था, किन्तु सरकारकी इच्छाके विपरीत उसका परिणाम भारतीयोंके लिए बहुत ही प्रभावोत्पादक हुआ। दबानेसे चीज और भी उभड़ती है—यह एक प्राकृतिक सत्य है। इसलिए सरकारकी इस जबरन दबानेकी नीतिसे भारतीय स्वभावतः और भी क्रुद्ध और संतप्त हो उठे। परिणाम यह हुआ कि जिस अनीति और अत्याचारका भय उन्हें अब तक दबोचे हुए था, वह उनके हृदयोंसे दूर जा छिटका, और सैकड़ों भारतीय जेल जानेके लिए तैयार हो गये। अतः कह सकते हैं कि सरकारकी दबाने और डरानेकी नीतिने भारतीयोंको शक्ति ही प्रदान की।

किन्तु रामसुन्दर जो सरकारकी दमन नीतिका पहला शिकार हुआ था, बड़ा ही कमजोर व्यक्ति साबित हुआ। इसलिए जैसे-तैसे जेलसे छूटनेके बाद वह सहसा कार्यक्षेत्रसे ही गायब हो गया। रामसुन्दरका यह उदाहरण निःसन्देह दूसरोंको हतोत्साहित करने वाला था, पर सौभाग्यसे उसके डर कर भाग जानेसे दूसरे भारतीयोंपर कोई बुरा असर न पड़ सका, क्योंकि उनका असली और सच्चा नेता गांधी तो वहाँ मौजूद ही था। अतः गांधीके रहते हुए एक अशक्त रामसुन्दरके लिए घबड़ानेका कोई प्रश्न ही न था। निःसन्देह सशक्त गांधी अन्त तक अपने कौमका पूर्ण सहारा बन कर हर प्रकारसे भारतीयोंके आत्मबल और

उत्साह को थामे रहे! अपने पत्र 'इंडियन ओपीनियन' (Indian opinion)के द्वारा एक तरफ तो वे अपने साथियोंको हर प्रकारसे मार्ग दिखलाते और सुझाव देते रहे, और दूसरी तरफ भारतीय आन्दोलनका देश-विदेशमें पूरी तरह प्रचार भी करते गये। फलतः गांधीजीके इस दुहरे प्रचारसे भारतीयोंका आन्दोलन दिनों-दिन तेजी पकड़ने लगा।

इधर आन्दोलनकी बढ़ती हुई प्रगति और तेजीको देखकर सरकार भी मन ही मन उसके कुचलनेका जाल बुनती जा रही थी। वह जनताके उत्साह और बलको दिनोंदिन बढ़ता देखकर क्रुद्ध और परेशान हो उठी थी। पर कई दिन तक तो वह इसी उधेड़बुनमें पड़ी रही कि क्या करे और क्या न करे। अन्तमें उसे सूझा कि गांधी आदि बड़े और खासखास नेताओं को जब तक गिरफ्तार नहीं कर लिया जाता आन्दोलनको रोकना बहुत कठिन है। इस निष्कर्षपर पहुंचकर १९०७ दिसम्बर २८ को ट्रान्सवालकी सरकारने गांधीजी तथा उनके २५ साथियोंको, जिनमें चीनी नेता 'क्वीन' और थंबी नायडू आदि शामिल थे, अदालतमें हाजिर होनेके नोटिस-प्रेषित कर दिये। नोटिस पाने पर गांधीजी तथा उनके साथी सरकारकी आज्ञाके मुताबिक अदालतमें हाजिर हुए। वहां मजिस्ट्रेटने गांधीजी तथा उनके कुछ अन्य साथियोंको एक घण्टेके अन्दर ट्रान्सवालसे निकल जानेकी आज्ञा सुनाई। किन्तु गांधी और उनके साथी इस आज्ञाका पालन कर दक्षिण अफ्रीकासे भारतीयोंको निर्मूल करानेके लिए विद्रोही न हुए थे। अतः गोरी सरकारकी इस अनीतिपूर्ण आज्ञाकी किसीने परवाह न की, और इस तरह

निश्चित होकर ट्रान्सवालमें डटे रहे, मानों उन्हें कोई आज्ञा ही नहीं मिली थी। फलतः १० जनवरी १९०८ को जिस समयके अन्दर उन्हें चला जाना चाहिये था, गांधी और उनके साथी फिर अदालतमें बुलाये गये। आज्ञानुसार गांधीजी और उनके साथी पुनः अदालतमें हाजिर हुए और जब मजिस्ट्रेटने उनपर 'अवज्ञा' करनेका जुर्म प्रकट किया तो सबने बिना हिचकके अपना-अपना अपराध स्वीकार किया। पर गांधीजीने 'अवज्ञा' के अपराधका सारा दोष अपने ही ऊपर लेकर अदालतको बयान दिया कि—"अपना धर्म समझकर ही मैं इस खूनी कानूनका सामना कर रहा हूँ। मेरे साथियोंने यदि अदालतकी आज्ञा न माननेमें कोई अपराध किया है तो उनसे अधिक अपराध मेरा है, इसलिए मुझे अधिकसे अधिक जो सजा हो मिले।"[1] यह बयान देकर और सारे अपराधोंको अपने सिरपर लेकर गांधीजीने एक सच्चे नेताका कर्तव्य निभाया था। लेकिन मजिस्ट्रेटने गांधीजीके बयान पर ध्यान न देकर उन्हें कुल २ महीनेकी ही सादी कैदकी सजा दी।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकामें देश और जातिके लिए लड़ते हुए गांधीजी प्रथम बार कैदी बने। ट्रान्सवालकी उस अदालतमें जिसमें वे कई बार वकीलकी हैसियतसे आ-जा चुके थे, देशकी मर्यादाको रखनेके लिए आज अपराधीके पिंजड़ेमें खड़े थे। किन्तु इसका उन्हें कोई क्षोभ न था। देशकी आन और शानके लिए ही उन्हें अपराधी बनना पड़ा था; और इसलिए आज वे दुःखी होनेके बजाय बहुत खुश थे! देशके लिए कुछ करने और सहने की भावनासे उनका हृदय प्रफुल्ल था और आत्मा प्रसन्न थी!

1. Satyagraha In South Africa. pp. 230-231

निःसन्देह सच्चा और वास्तविक सुख आत्मसुखको मिटाकर सर्वहितके लिए निछावर होनेमें ही है। जिस समय गांधीजीको यह सजा हुई थी, वे एक फलते-फूलते और विकसित होते हुए बैरिष्टर थे। इस सजासे उनके वैभवका सारा बाग वीरान होने जा रहा था। और यद्यपि इस विचारने उनके हृदयमें क्षणभरके लिए एक तिरता हुआ क्षोभ अवश्य पैदा किया, किन्तु उनकी इस मानवीय कमजोरीको उनके आत्मबल और परदुःख कातरतासे उत्पन्न होनेवाली करुणाने शक्ति और तेजसे ढँक दिया, और क्षण ही भरमें वे अपने कष्टों और मुसीबतोंको ही 'पियाकी सेज' समझकर प्रसन्नतासे खिल उठे।

कैदी गांधीको जोहान्सवर्गकी जेलमें पहुँचा दिया गया। उनके जेलमें प्रवेश करनेके कुछही समय बाद उनके कई एक साथीभी वहाँ आ पहुंचे। गांधीको सींकचोंमें डालकर सरकारने सोचा था कि उनके अनुयायी घबड़ा उठेंगे और सारा आन्दोलन सरकारके भयके नीचे दबकर शान्त हो जायगा। लेकिन सरकार द्वारा इस प्रकार अपने आराध्य बन्धु और नेताके छीने जानेसे भारतीय भयसे पिघलनेके बजाय असंतोषसे प्रज्वलित हो उठे। इस असंतोषकी बड़वाग्निमें पड़कर सरकारका भय मानों जलकर राख हो गया। अतः निर्भीक होकर भारतीय जनताने गांधीजीकी गिरफ्तारीके विरोधमें काले झण्डोंको लहराते हुए एक विराट जुलूस निकला। उनके हाथोंमें लहराते हुए वे काले झण्डे मानों सरकारके काले कारनामोंको चुनौती दे रहे थे। इस प्रदर्शन—इस चुनौतीको सहना स्वेच्छाचारी गोरी सरकारके लिए असह्य हो उठा। उसने पुलिसको इशारा किया और देखतेही

देखते जुलूसको तोड़ने और उफनते हुए जन-समुद्रको रोकनेके लिए लाठियोंकी बरसा होने लगी। लेकिन लाठियोंकी मार ने क्या कभी जनताके उभारको रोक सका है? इतिहास बतलाता है कि जनशक्तिके आत्मबलको इस प्रकार शस्त्रोंके पशु-बलसे दबानेमें राजसत्ता हमेशा ही असफल रही है! सचमुच उभड़ती हुई शक्तिको क्या कहीं हाथ पांवके जोरसे रोकके रखा जा सकता है? शक्ति तो उठकर ही रहेगी। अन्यथा वह शक्ति ही नहीं हो सकती!

फलतः सरकारकी इस दमन नीतिका वही परिणाम हुआ जो बहुधा हुआ करता है! दमन से विरोध और असंतोषकी ज्वाला दबनेके बजाय और भी तीव्रतासे फैल उठीं। गांधीजीकी गिरफ्तारीके बाद तो भारतीयोंने पूरी तरहसे निश्चय सा कर लिया कि उनमेंसे अब कोई बाहर न रहेंगे और अपने नेताका अनुसरण करते हुए जेलोंको भर देंगे! परिणामतः सत्याग्रहके वीर सैनिक झुण्डके झुण्डमें सरकारी कानूनोंको तोड़ते हुए इस प्रकार गिरफ्तार होने लगे मानों मरमिटनेके सिवा उनमें कोई दूसरी साधही नहीं है। फल यह हुआ कि गांधीजीकी गिरफ्तारीके कोई एक सप्ताहके अन्दरही लगभग १०० सत्याग्रही कैद हो गये और उसी तेजीसे आगे भी होते रहे।

सत्याग्रहियोंकी इस बढ़ती हुई संख्याको देखकर सरकार और क्रोधित हो उठी! भारतीयोंकी इस अहमन्यता और शक्तिकी उपेक्षाको वह बर्दाश्त न कर सकी। अतः भारतीयोंको कुचलनेके लिए सरकारने न्यायाधिकारियोंको गुप्त सूचनाएँ प्रेषितकीं कि भविष्यमें वे सत्याग्रहियोंको सादीके बजाय सख्त कैदकी सजा दिया करें। किन्तु सरकारका यह खयाल भी गलत निकला। वे

भारतीय जो अपने मान और शानके लिए मर मिटनेका कौल कर चुके थे, अब सख्त कैदकी सजाके डरसे क्योंकर भाग खड़े होते ? सजा सख्त मिले या नरम इसकी चिन्ता उन्होंने अपने बजाय सरकारपर छोड़ रखी थी। सरकार चाहे जैसा बर्ताव करे, सत्याग्रही इससे विचलित न होनेवाले थे। कुछभी हो, व तो आगे बढ़ने और आगे बढ़नेको कटिबद्ध थे। उनके सामने सरकार नहीं, मंजिल थी! फलतः एक ओर जैसी तेजीसे सरकार अधिकाधिक सख्तियाँ करने लगी दूसरी ओर उसी तेजीसे सत्याग्रही भी बढ़ने लगे। परिणाम यह हुआ कि थोड़ेही समयके अन्दर सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या १५० से भी ऊपर पहुँच गई।[1]

सरकार का झुकना और प्रथम समझौता—

सत्याग्रहियोंके इस विकट साहसको देखकर सरकारको मालूम हो गया कि दमनसे अब उसका काम नहीं चल सकता, और इसलिए उसे इस फैलती हुई आगको रोकनेके लिए अवश्य कोई दूसरा रास्ता निकालना चाहिए। अतः बहुत सोच-विचारके पश्चात् सरकारने अपने तनावको ढीला कर भारतीय नेता गांधीसे मिलकर समझौता करलेने में ही अपना कल्याण मालूम किया। इस समझौतेका माध्यम ट्रान्सवाल सरकारके अध्यक्ष जनरल स्मट्सने 'ट्रान्सवाल लीडर'के सम्पादक कार्टराइटको बनाया। स्मट्सके निर्देशानुसार कार्टराइट जेलमें जाकर भारतीयोंके नेता गांधीजीसे मिले। गांधीजीके सामने कार्टराइटने स्मट्स रचित समझौतेका मसविदा दिखलाया।

---

1. Ibid, p. 237

समझौतेके इस मसविदेमें कहा गया था कि "भारतीय स्वेच्छा-पूर्वक अपने परवाने बदलवा लें। उनपर कानूनका कोई अधि-कार न होगा। नवीन परवाना भारतीयोंकी सलाहसे ही सरकार बनावे। और यदि इसे भारतीय स्वेच्छापूर्वक ले लें तो खूनी कानून रद कर दिया जायगा, और स्वेच्छापूर्वक लिए गये नवीन परवानोंको वैध बनानेके लिए सरकार एक नया कानून बनावेगी।" गांधीजीने प्रथम इस मसविदे पर अपने जेलके साथियोंसे सलाह-मसविरा किया, और तब इस शर्त्तके साथ कि मसविदेमें खूनी कानूनको रद करनेकी बात पूरी तरहसे स्पष्ट कर दी जाय, उन्होंने अपने साथियों सहित उस (मसविदे) पर दस्तखत कर दिये।

जनरल स्मट्ससे भेंट—

मसविदे पर दस्तखत करनेके २-३ दिनके बाद ही ३० जनवरी १९०८ को गांधीजी जोहान्सवर्गके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के द्वारा जनरल स्मट्ससे भेंट करनेके लिए प्रिटोरियो ले जाये गये। इस भेंटमें गांधीजी और स्मट्समें बहुत सी बातें हुईं। स्मट्सने मसविदेकी भाषामें गांधीजी जैसा कुछ परिवर्तन व परिवर्द्धन चाहते थे, वह भी कर दिया। साथ ही स्मट्सने गांधीजीको विश्वासपूर्ण शब्दोंमें यह भी जतला दिया कि "जनरल बोथाके साथ भी मैं बातचीत कर चुका हूँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपमेंसे अधिकांश लोग परवाने ले लेंगे तो मैं एशियाटिक कानूनको रद कर दूंगा; तथा स्वेच्छापूर्वक लिये जाने वाले परवानेको मंजूर करनेका जो मसविदा तैयार किया जायगा, उसकी भी एक नकल आपके

पास समीक्षाके लिए भेज दूंगा।" स्मट्स इस समय भारतीयों के आत्मबल और सत्याग्रहकी विभीषिकासे बहुत घबड़ाये हुए से थे, इसलिए गांधीजीसे आन्दोलनको शांत करवानेकी याचना सी करते हुए वे आगे बोले—"मैं नहीं चाहता हूँ कि यह आन्दोलन फिरसे जागे। आपके भावोंका मैं सन्मान करता हूँ।"[1] उसके इन शब्दोंमें स्पष्टतया भारतीयोंकी मांगोंको पूरा करनेका आश्वासन भरा था किन्तु यह सब एक चोरकी 'मनौती' थी, जो विपत्तिमें पड़कर 'देवता'को खुश करनेके लिए प्रत्येक वचन दे डालता है, लेकिन संकट टलने पर सब कुछ भुला देता है!

स्मट्सकी यह कूटनीति सफल हुई और गांधीजीने उक्त शर्त्तोंपर सरकारके साथ समझौता करना स्वीकार कर लिया। फलतः समझौता हो जानेसे गांधीजी और उनके साथी जेलसे तुरन्त रिहा कर दिये गये। स्वतंत्र होते ही गांधीजी उसी दिन प्रिटोरियासे शामको जोहान्सबर्गके लिए रवाना हो गये, क्योंकि वे चाहते थे कि वहाँके भारतीयोंको भी उक्त समझौतेकी सारी बातें और शर्त्तें तुरन्त मालूम करा दें।

समझौतेका विरोध—

गांधीजी रात नौ बजेके लगभग जोहान्सबर्ग पहुंचे, और वहाँ सेठ इसप मियाँके यहाँ टिके। पहुंचते ही गांधीजीने रात को ही इसप मियाँसे भारतीयोंकी एक सभा बुलवानेका अनुरोध

1. Ibid pp. 241–242

किया। अतः गांधीजीके निर्देश पर उसी वक्त सभा बुलवा ली गई। जब सभा बुलाई गई रात आधी बीत चुकी थी, लेकिन तिसपर भी करीब १००० आदमी सभामें आ डटे। सभामें आये हुए सभी व्यक्ति इस समय यह जाननेको उत्सुक हो रहे थे कि समझौता किस प्रकारसे हुआ ?

सभा भरने पर गांधीजी ने समझौते का वह स्वरूप जो वे स्वीकार करके आये थे, लोगोंको स्पष्ट करके बतला दिया। शर्तोंके सुन लेने पर सभामें से कुछ लोगोंने तुरन्त अपना यह सन्देह प्रकट किया कि अगर जनरल स्मट्स अपना काम निकालनेके हित परवानों पर दस्तखत लेनेके बाद विश्वास-घात कर बैठें और खूनी कानूनको रद्द करनेसे मुँह मोड़ दें— तो क्या होगा ! इसलिए संकाशील व्यक्तियोंने इस बातपर जोर दिया कि खूनी कानून रद्द होनेके पहले ही दस्तखत करके वे अपना हाथ क्यों काट डालें ? इस प्रश्नकी बारिकी, बुद्धिमत्ता और गंभीरता पर खुश होते हुए गांधीजी ने लोगोंको सत्याग्रही के चरित्र और कर्तव्य पर प्रकाश डालते हुए उत्तर दिया "सत्याग्रही डरको तो सौ कोस पर रखता है। इसलिए वह किसी भी बातका विश्वास करनेमें कभी न डरेगा। बीस बार उसके साथ विश्वासघात होने पर भी इक्कीसवीं बार वह विश्वास करनेको तैयार हो जायगा।" और फिर और स्पष्ट शब्दोंमें सत्याग्रहके दर्शनका उन्हें ज्ञान कराते हुए गांधीजी ने बतलाया कि "सत्याग्रही अपनी नैया विश्वासके ही सहारे पर चलाता है। इसलिए इस समय यह कहना कि समझौतेको स्वीकार करना अपना हाथ कटाना है, सत्याग्रहका अज्ञान प्रकट करना होगा।" लेकिन

इतनेसे ही संतुष्ट न होकर सत्याग्रहके गुरुने उनकी समझमें पूरी तरहसे बात बिठानेके लिए पुनः उदाहरण देकर समझाया कि "फर्ज कीजिए कि हम नये परवाने ले लें, और पीछे सरकार विश्वासघात करे—खूनी कानूनको रद्द न करे, तो क्या उस समय हम फिर सत्याग्रह न कर सकेंगे? अगर हम परवाने ले भी लें पर जब वे मांगे जावें तब बतानेसे इन्कार कर दें तो उन परवानोंका महत्व ही क्या रह जायगा?" "सत्याग्रही तो" उन्होंने कहा कि "जब किसी कानूनको मानता है तो वह उसके दंडके भयके कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छापूर्वक और यह समझकर कि उससे जनताका कल्याण होगा। और यही स्थिति आज हमारे परवाने लेनेके बारेमें है, जिस पर सरकारके विश्वासघातका कोई असर नहीं पड़ सकता। इस स्थितिके उत्पन्नकर्त्ता हम स्वयं हैं, और हमीं उसे बदल सकते हैं। जब तक सत्याग्रहका शस्त्र हमारे हाथमें है, हम स्वतंत्र हैं, निर्भय हैं।" सत्याग्रह और सत्याग्रहीके अर्थ और कर्त्तव्यकर्त्तव्यको स्पष्ट करनेके बाद गांधीजीने लोगोंके इस प्रश्नका भी कि आज लोगोंमें यथेष्ठ जोश और उत्साह है और बादमें वह ढीला पड़ सकता है—उत्तर देते हुए कहा "यदि आज कोई ऐसा सोचते हैं कि कौममें अभी जो उत्साह है बादमें शीतल पड़ सकता है, तो मैं उन्हें कहूंगा कि आप सत्याग्रही नहीं हैं, और आपने सत्याग्रहको समझा भी नहीं। ऐसा कहने वालोंका अभिप्राय तो यह होगा कि आज जो शक्ति देख पड़ रही है, वह यथार्थ नहीं, शराबके नशे जैसी झूठी और क्षणिक है। और यदि ऐसा है तो हम जीत नहीं सकते"।

गांधीजीकी इस वक्तृतासे निःसन्देह उनके जीवनके प्रवाह और सिद्धान्तोंको समझनेमें इतिहास और राजनीतिके विद्यार्थियोंको काफी सहायता मिल सकती है। गांधीजीने सचमुच आज तक अपने ही विश्वास और बलपर काम किया है। उन्हें कभी इस चिन्ताने व्यग्र नहीं किया कि दूसरा उनके साथ कैसा विश्वास या अविश्वासका बर्ताव करेगा। उन्हें जो सत्य लगा है, उसपर वे अटल रहे हैं। उन्होंने अफ्रीकामें ही नहीं, भारतमें भी अनेक बार अपने ही विश्वास और बलपर प्रतिद्वन्द्वी सरकारसे सन्धियाँ और समझौते किये हैं, और कभी यह चिन्ता नहीं की कि अगर प्रतिद्वन्द्वीने काम निकालनेके बाद समझौता तोड़ दिया तो क्या होगा? वे चिन्ता करते ही क्यों, जब कि उन्हें मालूम है कि जिस शक्तिसे पराभूत होकर प्रतिद्वन्द्वीने एक बार समझौता किया है, वह शक्ति उनकी अपनी निजी शक्ति है, और जब तक वह शक्ति उनके पास है, वे निर्भय हैं। उनकी यह शक्ति सत्यपर अटल रहनेकी शक्ति है! हमें मालूम है कि गांधीजीने भारतमें भी कई एक बार जब समझौते किये तो बहुतसे उनके साथी और राजनैतिक दल प्रारम्भमें उनका विरोध करते रहे, लेकिन अन्तमें उन्हें अपने विरोधमें ही त्रुटियाँ मालूम पड़ीं और गांधीजीके कार्योंकी कुशलता तथा निपुणता को स्वीकार करना पड़ा। इस विषमता अथवा भेद का कारण स्पष्टतः गांधी और दूसरों के बीच में दृष्टिकोण की असामनता या पार्थक्य रहा है; दूसरे शब्दों में इस भेद का कारण यह है कि गांधीकी दृष्टिका प्रकाश स्रोत हृदय रहा है और दूसरोंकी सीमाओंसे वेष्ठित बुद्धि! १९४६ में विधान-निर्मातृ सभाको बुलानेके ब्रिटिश प्रस्तावके समय भी कांग्रेसके अनेक नेता जब उसे ब्रिटिश चाल

कह कर शामिल होनेसे हिचक रहे थे, तब गांधीजीने ही कांग्रेस और देशको अपने आत्मबल और सत्यपर भरोसा रखकर उसमें प्रवेश करनेको तयार किया था। ब्रिटिश मंत्री-मंडल के यहाँ आने पर भी जब बहुतसे राजनैतिकदलोंने उन्हें साम्राज्यवादके षड़यन्त्रकारी बतलाया और मुल्कको उनसे दूर रहनेकी सलाह दी, तो उस समय अकेले गांधीके विश्वासनेही काँग्रेस को मंत्री-मंडलसे समझौता करने को अनु-प्रेरित किया था। और अन्तमें इसी समझौतेके परिणामसे १९४७ के १५ अगस्तको भारत स्वतंत्र हो गया! गांधीके विश्वास काही यह सुखद परिणाम था! फलतः यह कहना एक अलंघ्य सत्य है कि १९०८ का सत्याग्रही गांधी और आज १९४८ का सत्याग्रही गांधी दोनों एक हैं, और समयका उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है, वरन् समय को ही उन्होंने प्रभावित किया है। निःसन्देह गांधी और उनके सिद्धान्त सूर्य की तरह प्रकाशवान, उज्वल, और अटल हैं! सूर्य की भांति वे इसबातकी चिन्ता भी नहीं करते कि उसके प्रकाशमें कोई अलगसे अपना दीपक जला रहा है, और अपने अन्तरके अंधकारसे इस जगतको भी अंधकारमें डूबा देखता है। ❀

❀ पुस्तक छपही रही थी कि यकायक भारत और संसारके दुर्भाग्यसे ३० जनवरी १९४८ को गांधीजी की हत्या कर डाली गई? हम यहां पर इस बात का संकेत कर देना चाहते हैं कि गांधीजी की एक अर्थ में यह 'हत्या' नहीं है, यह उनका अपने विश्वासके लिए बलिदान होना और मर मिटना है। हिन्दु-मुस्लिम और सिक्खों की एकता उनके जीवन का परम ध्येय और लक्ष रहा है; क्योंकि उनका विश्वास था कि

सत्य और विश्वाससे परिपूर्ण गांधीको तो सारा जगत ही सत्य और विश्वाससे जगमगाता दीखता है। झूठ और प्रतारणा उनके सामने अस्तित्वहीन छायाएँ हैं। इसीलिए तो सत्य और विश्वास का पुजारी दूसरोंके झूठ और विश्वासघातसे कभी डरा नहीं करता, वरन् अनेक बार बराबर धोखा खाने पर भी वह हरबार शत्रुका विश्वास करनेको तैयार रहता है। और इस प्रकार अपनी न्याय-परायणता तथा विनम्रता और विश्वासके द्वारा वह अन्त तक विरोधीके हृदय पर कब्जा करनेका प्रयत्न करता ही जाता है। वह तो मानता है, कि वैर वैरसे नहीं जीता जा सकता और न घृणा घृणा द्वारा जीती जा सकती है। वैरको खतम करनेके लिए मैत्री और घृणा का अन्तकरनेके लिए प्रेमके कोमल शस्त्रों की वह आवश्यकता समझता है। और गांधी निःसन्देह, इन्हीं कोमल और अहिंसक शस्त्रोंसे लड़ने वाला एक सिपाही है।

अतः निर्वैर और निर्द्वन्द गांधीके भाषणके प्रभावसे उक्त सभामें जो शंकामें पड़ कर अब तक समझौतेका विरोध कर रहे थे, सन्तुष्ट हो गये! किन्तु उक्त सभाके बाद ही फिर मध्यरात्रीमें एक और महती सभा हुई! उसमें भी गांधीजीने समझौतेका पूरा मसविदा लोगोंके सामने रखा और बतलाया कि "इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेवारी बहुत अधिक बढ़ जाती है। यह बतलानेके लिए कि हम छल-कपटसे एक भी बाहरी भारतीयको

बिना इसके राष्ट्र की कभी उन्नति नहीं हो सकती! अतः इस ध्येय की पूर्तिके लिये वे रोज हिन्दु-मुस्लिम आदिके ऐक्य का प्रचार करने में लगे रहे, जिससे कुछ साम्प्रदायिक हिन्दूषड्यंत्रकारियोंने उन्हें मारडाला।

ट्रान्सवालमें लेना नहीं चाहते, हमें स्वेच्छापूर्वक परवाने लेने होंगे। इसलिए यदि लोग अब परवाने न लेंगे तो इसका अर्थ होगा कि कौम समझौतेको मंजूर नहीं करती। अतः आप कह दीजिए कि आप समझौतेको स्वीकार करते हैं।"....गांधीजीके इस आह्वानको यद्यपि भारतीयोंकी महती संख्या अपना चुकी थी और उसके अनुसार कार्य करनेके लिये तैयार भी हो गई थी, लेकिन कुछ एक पठान अभीभी इस समझौतेकी बातसे सहमत न हुए। वे बिगड़ उठे और उन्होंने समझौतेके अनुसार नये परवाने लेने तथा १० ऊंगलियोंकी छाप देनेसे कतई इनकार कर दिया। पठानोंके अगुआने तो आवेशमें गांधीजी पर यहां तक आक्षेप किया कि उन्होंने कौमको धोखा दिया है, और उसे १५,००० पौण्ड रिश्वत लेकर जनरल स्मट्सके हाथ बेंच दिया है। गांधीजीको इस प्रकार घूस लेनेका दोषी ठहराकर उत्तेजित पठान खुदाका नाम ले-लेकर नये परवाने स्वीकार करनेवालोंको आगाह करने लगे, और न माननेवालोंको मारने तकके लिये कटिबद्ध हो उठे। पठानोंको 'समझौता' स्वयं गलत मालूम दिया हो, बात ऐसी न थी! असलमें उन बेचारे पठानोंको अपने स्वार्थ साधनके हेतु कुछ स्वार्थी और छली लोगोंने भ्रमा और बहका दिया था! ये बहकानेवाले एक तो वे थे जिन्होंने सत्याग्रहके समय कौमका साथ न देकर खूनी कानून के सामने 'सिजदा' किया था, और दूसरे वे थे जो ट्रान्सवालमें बिना किसी परवानेके धोखेसे घुस आये थे। अतः इन दो प्रकारके लोगोंका हितही इसमें था कि समझौता न हो सके और गड़बड़ी बनीही रहे। कौमको दगा देनेवाले मनसे सत्याग्रहियोंकी विजय भी पसन्द न

करते थे, और बिना परवानेके ट्रान्सवालमें घुसनेवाले भी यही चाहते थे, जिससे कि उन्हें परवाने दिखलानेकी कठिनाईका सामना न करना पड़े। इसलिए स्पष्ट है कि इन्हीं लोगोंकी कुमंत्रणार्थी, जिसने पठानोंको उत्तेजित कर रखा था[1]। लेकिन सीधे सादे और सरल बुद्धिके पठान उनकी चालोंको न समझ सके, और फलतः उनकी कुमंत्रणाके जालमें फँसकर अपनी बुद्धिकोभी खो बैठे! यही कारण था कि गांधीजीके लाख समझाने परभी वे न कुछ समझ सके, न कुछ समझ पाये। बहके हुओं को मार्गपर लाना कठिन होताही है! बहम और शककी दवा तो लुकमानके पासभी न थी।

इसलिए बेचारे गांधी भी, पठानोंके दिलमें जो बहम घुसा दिया गया था उसे निकाल न सके। गांधीजीके बाद सभापतिने भी लोगोंको समझौतेको खुलकर समझाया—और अपीलकी कि वे उसे निर्द्वन्द और निर्भय होकर स्वीकार कर लें। इन भाषणोंके बाद संतुष्ट होकर निःसंदेह सबके दिलोंसे सारे शक वा सन्देह बिदा हो गये, लेकिन पठान लोग तबभी बहकेही पड़े रहे। अतः जब सभाका मत लिया गया तो चार पठानोंको छोड़कर शेष सबने समझौतेके पक्षमें राय दीं!

गांधीजी पर हमला—

समझौतेके अनुसार जल्दीही सरकारके एसियाटिक आफिस ने ऐच्छिक-परवानोंको देनेकी तैयारी कर दी! इन परवानोंका रूपभी सत्याग्रहियोंके परामर्शानुसार बदल दिया गया था! अतः

1—Ibid-pp. 253-254 *ff*..

१० ता० फरवरीको गांधीजी और उनके साथी समझौतेकी शर्तों के अनुसार परवाना लेनेके लिये रजिष्ट्रारके आफिसको रवाना हुए। किन्तु वे आफिसको पहुंचभी न पाये थे कि रास्तेमें ही अविश्वासी पठान मीर आलम और उसके साथियोंने अनपेक्षित रूपसे गांधीजी पर वार कर दिया! गांधीजीके सिरपर लाठीसे प्रहार किया गया, जिससे वे मुंहके बल गिरकर बेहोश हो गये! लेकिन आक्रमणकारियोंने गांधीजीके बेहोश होने परभी उनको मारना न छोड़ा। यह घटना आम रास्ते पर हुई थी! इस मार-धाड़में यदि गांधीजीके साथी ईसप मियां और थम्बी नायडु उनपर झुककर बहुतसे प्रहार अपने ऊपर न ले लेते, और शोर-गुल मचनेके कारण ठीक अवसर पर गोरों और पुलिसके पहुंच जानेसे मीर आलम तथा उसके साथी गिरफ्तार न कर लिये गये होते तो उस दिन गांधीजीके प्राणोंका बचनाही कठिन था! किन्तु ईश्वरकी इच्छा तो गांधीजीसे अभी अनेक काम लेनेकी थी। इस-लिए उन्हें तब मारभी कौन सकता था? निःसन्देह गांधीजी पर अनेक बार ऐसे प्राणघाती संकट आये, लेकिन उन सबको वे हमेशा सफलता पूर्वक झेलते रहे हैं। ईश्वरकी 'इच्छा' का अतिक्रमण कर ही कौन सकता है? गांधी ईश्वरकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिए ही यहाँ पर हैं, और इसीलिए वे हमेशा अपने जीवन और प्राणोंको ईश्वर पर छोड़कर रखते हैं! उनका कोई निजी अस्तित्व है ही नहीं—अस्तित्व विहीन का अस्तित्व फिर कौन मिटा सकता है? *

---

* गांधीजी हमेशा अपनेको ईश्वर पर छोड़कर रखे हैं! उनका अटल विश्वास था कि वे इस दुनियासे तबतक हटाये नहीं हट सकते

इस दुर्घटनाके बाद पुलिस बेहोश और घायल गांधीको उठाकर पहले सड़कके पासही एक गोरे अफिसमें ले गई, लेकिन बादमें उन्हें रेवरेंड डोकके यहाँ पहुंचा दिया गया। होशमें आने पर निर्वैर गांधीने सबसे पहले अपने आक्रमणकारियोंके बारे पूछ-ताछकी, और तत्कालही भूले तथा अबोध अपराधियोंके लिए व्यग्र होकर अटर्नी जनरल (सरकारी वकील) को तार भिजवाया कि "मीर आलम और उसके साथियोंपर मुकदमा न चलाया जावे...। मैं आशा रखता हूं कि आप उन्हें मेरे लिए मुक्त कर देंगे"। यह तार पातेही सरकारी वकीलने गांधीजीके कथनानुसार मीर आलम आदिको रिहा कर दिया, लेकिन गोरोंके विरोध करनेपर उन्हें फिरसे गिरफ्तार कर लिया गया।

अपने ऊपर हुए हमलेके कुपरिणामोंका खयालकर गांधीजीने क्रोधित हिन्दुओंके नाम भी शान्त रहनेकी प्रार्थना करते हुए एक बहुतही सौजन्य और स्नेहसे पूर्ण अपील प्रेषितकी जिसमें उन्होंने लिखा था—"हिन्दूलोग अपने दिलमें जराभी क्रोध न लावें, मैं चाहता हूँ कि इस घटनासे हिन्दू-मुसलमानोंके बीच बैर नहीं, प्रेम पैदा हो।........

जबतक कि खुद ईश्वरही उन्हें यहाँसे न हटावे। अतः २० जनवरीकी बम्ब दुर्घटनाके बादभी उन्होने भारत सरकारको अपनी रक्षाके खातिर पुलिस और फौजका पहरा न रखने दिया और सरदार वल्लभ भाईके इस सुझावको कतई माननेसे इनकार कर दिया कि प्रार्थना सभामें किसी संदिग्ध आदमीकी खुफिया पुलिससे तलासी ली जावे। वे जानतेथे और मानते थे कि सब काम ईश्वरके सङ्केतोंपर होते हैं, और इसलिये यदि कोई उन्हें मारेगा भी तो वह ईश्वरकी इच्छासे ही ऐसा करेगा; और ३० जनवरीको ईश्वरके इसी विश्वासपर वे चल भी दिये?

सब मिलकर यही प्रयत्न कीजिये कि हममेंसे अधिकांश मनुष्य अपनी दसों ऊंगलियोंकी छाप देदें। कौमका और गरीबोंका इसीमें भला है।"

इस घटनासे गांधीजीके हृदयकी विशालता और सत्याग्रही के आदर्शपर समुज्ज्वल प्रकाश पड़ता है। गांधीजीके जीवनकी यह घटना मानव, प्रतिशोधी मानव और प्रतिहिंसात्मक मानवके लिए एक सबक, एक पाठ और एक उदाहरण उपस्थित करती है! इस घटनाके द्वारा गांधीजीने मनुष्य समाजको व्यवहारिक रूपसे सफलतापूर्वक यह दर्शा और बतलादिया कि बैर किस प्रकार मैत्री द्वारा और घृणा प्रेमके द्वारा विजयकी जा सकती है। निःसन्देह हिंसाको दबाने और प्रेमकी विजय करनेका यही एक रास्ता है। बुद्ध और ईसानेभी इसी सत्यको प्रचारित किया था! और इसी सत्यकी प्रतिष्ठा और प्रतिस्थापनाके लिए आज गांधीने भी अपने जीवनको होम कर डाला है! किन्तु खूनके रंगसे खेलने और खिलनेवाले हिंस्र मनुष्यने क्या अहिंसाके इस उज्ज्वल अभिप्रायको समझ सका है? प्रतिहिंसाका प्रेमी और शक्तिका उपासक मनुष्य-हिंसा और वैरको भला कैसे छोड़े? वह जानता है कि उसकी यह अपनी निजी कमजोरी है, लेकिन अपनी इस कमजोरीको ढकनेके लिए वह सत्यको दबाकर कहता यही है कि 'गांधीमें आदर्शवाद है; उनकी विचारधारा अलौकिक हो सकती है, लेकिन उनके सिद्धान्त अव्यवहारिक हैं।' निःसन्देह जिसका हम व्यवहार नहीं करना चाहते, (क्योंकि उसके व्यवहारसे हमारे स्वार्थों पर धक्का पहुँचता है) वह अव्यवहारिक ही तो हो सकता है?

कहना न होगा कि गांधीजीके इस निर्मल व्यवहार और मार्मिक अपीलने लोगोंके दिलोंको पूर्णरूपसे पराभूत कर डाला। वे निःसंदेह गांधीमय हो उठे। गांधीजीके निर्देश और गांधीके आदेश उनके लिए अब अपनी ही आत्माके निर्देश और आदेश प्रतीत होने लगे। फलतः उनके निर्देशानुसार भारतीय जनताने आँख मूंदकर परवाना लेने शुरू कर दिये। वे अब रुक भी कैसे सकते थे जब कि उनके नेता गांधीने स्वयं घायल अवस्था हीमें अपनी उंगलियोंकी छाप देकर परवाना ले लिया था।[१२]

किन्तु यह सब कुछ होनेके बाद भी पठानोंके दिल शांत न हो सके। अतः स्वस्थ होते ही गांधीजी समझौतेके विषयमें फैली हुई भ्रान्तियों और गलत फहमियोंको साफ करनेके इरादेसे दुबारा नेटाल पहुँचे। डरबनमें समझौतेके विषय पर पुनः सभा बुलाई गई और उसमें गांधीजीने फिर पठानोंको सारी बातें समझानेका प्रयत्न किया। लेकिन इस बार भी वे उन्हें समझानेमें सफल न हो सके। पठान पहिलेकी भाँति ही संदिग्ध और कठोर बने रहे। उनकी भ्रांति और उनका अविश्वास जरा भी कम न हो सका। अपने आक्रोशमें उन्होंने इस सभामें भी गांधी पर पुनः घातक आक्रमण करनेका प्रयत्न किया, किन्तु पुलिसके पहुंच जानेसे वे कुछ कर न पाये! फलतः गांधीजी इस बार भी हमलावारोंसे बच निकले, और सभा समाप्त होनेके बाद डरबनमें कोई विशेष कार्य न रहनेसे वहाँसे तुरन्त अपने बाल-बच्चोंसे मिलने फोनिक्स चले गये!

12—Satyagraha, In South Africa. p. 251-252

जनरल स्मट्सका बचन भंग और धोखा

गांधीजीने परवानोंके बारे जो निर्देश और आदेश दिये थे, उनका थोड़ेसे पठानोंको छोड़कर शेष भारतीयोंने पूरी तरहसे पालन किया था। बहुत थोड़े ही ऐसे लोग रहे होंगे जिन्होंने स्वेच्छासे परवाने न लिए हों। अतः परवानेके लिए एशियाटिक आफिसमें भारतीयोंकी इस कदर भीड़ लगी रहती थी कि परवाने देनेवाले तक घबड़ा उठते थे। इस प्रकार समझौतेके अनुसार भारतीयोंने अपने वायदेको जल्दी ही पूरा करके दिखला दिया था। भारतीयोंकी इस वचन-निष्ठाकी तब ट्रान्सवाल सरकारने भी खूब प्रशंसा और सराहनाकी थी।[1] अपनी तरफसे इस प्रकार समझौतेकी शर्तें पूरा करनेसे भारतीयोंको पूरी आशा थी कि सरकार भी अब अपने वचनोंका पालन कर 'खूनी कानून' को रद्द कर देगी। किन्तु उन्हें क्या मालूम था कि पाश्चात्य कूट-राजनीति 'धोखे' को भी एक सिद्धान्त मानती है? गांधीजी जैसा सच्चा और ईमानदार अपनेको समझते थे, वैसाही जनरल स्मट्सको भी मानते थे। किन्तु उनका यह विश्वास अन्तमें भ्रमपूर्ण ही सिद्ध हुआ!

चालबाज स्मट्सने अपना काम निकालकर अन्तमें सरल और निश्छल गांधी तथा उनकी कौमको धोखा दे ही दिया! उसने खूनी कानूनको रद्द करनेके बजाय स्वेच्छासे लिये गये परवानोंको कानूनी बनानेके लिए एक नया एसियाटिक बिल पास

1-Ibid·p 287

किया, जिसके आधार पर 'एसियाटिकोंके रजिस्ट्रेशनके लिए अन्य दूसरी धारायें तैयार कर दी गई'।' परिणामतः काला या खूनी कानून ज्योंका त्यों ही बना रह गया ।[1]

गांधीजी स्मट्सके इस नये बिलसे स्तब्ध हो उठे । उन्हें विश्वास न होता था कि पाश्चात्य नीतिमें वचनों और शर्तोंका कोई मूल्य नहीं हुआ करता । लेकिन जब स्मट्सके व्यवहारने इस कठोर सत्य को प्रत्यक्ष कर दिया तो उन्हें यह मानही लेना पड़ा। पर गांधीजी किसी प्रकार इससे चिन्तित या किंकर्तव्य विमूढ़ न हुए। उन्होंने इस भूठका अपने सत्य द्वारा प्रतिरोध करना निश्चित कर 'सत्याग्रह' की फिरसे तैयारियाँ शुरू कर दीं। उन्होंने तुरन्त सत्याग्रह कमिटीकी सभा बुलाकर उसे इस नयी स्थितिसे परिचित कराया और निर्देश दिया कि यदि ये बातें सही निकलीं तो फिरसे हमें सत्याग्रहके लिए तयार हो जाना है। सभामें अपना भविष्यका मार्ग निश्चित कर लेनेके बाद गांधीजीने जनरल स्मट्सको भी उसके बचनोंका स्मरण कराते हुए एक पत्र लिखा और उसे सचेत किया कि अपने नये बिलके द्वारा उसने समझौतेको तोड़ डाला है। इसके साथ ही गांधीजीने ट्रान्सवाल सरकारको भी सत्याग्रह कमेटीकी ओरसे एक अल्टिमेटम भेजा जिसमें कहा गया था कि—"हमें खेद है कि यदि समझौतेके अनुसार एसियाटिक ऐक्ट रद न किया गया और इसकी सूचना यदि सरकारने निश्चित समयके अन्दर भारतीयोंको न भेजी, तो भारतीय स्वेच्छासे लिये परवानोंको ढेरमें एकत्रित करके जला देंगे और विनय-पूर्वक सारे परिणामोंको भुगतनेको तयार रहेंगे।"[2]

1–Ibid pp. 292-293
2–Ibid p. 305-306

इस पत्रको पाकर ट्रून्सवालकी गोरी सरकारके अभिमान पर आग सी लग गई। वे अब तक भारतीयोंको बर्बर और अपनेसे निम्न मानते आये थे, इसलिए उन्हें कभी आशा न थी, वरन् स्वप्नमें भी खयाल नहीं था कि काले वर्णवालोंसे अल्टि-मेटम नामकी कोई स्वाभिमानयुक्त और चुनौती भरा पत्र आ सकता है। उन्हें मालूम न था कि गांधीजीके आत्मबलने भार-तीय कौमका गौरव इतना ऊँचा उठा दिया है कि वे अपनी प्रतिष्ठाके लिए किसी गोरे अथवा काले का भय और डर अपने दिलसे कभी का भगा चुके हैं। उन्हें दुर्भाग्यसे यह भी मालूम नहीं हो सका कि गांधीजीने भारतीयोंको बता और समझा दिया है कि "एक मनुष्यके रूपमें वे किसीसे हीन नहीं हैं; और यदि उनमें सहन करनेकी शक्ति हो तो वे सीधे-सीधे किसीका भी मुकाबला कर सकते हैं।"[1] वस्तुतः गोरोंकी आँखोंपर तो 'अहम्' का परदा पड़ा हुआ था, इसलिये वे इन बातोंको देख और समझ भी कैसे सकते थे। अतः अहंकारसे पीड़ित और अभि-मानसे ग्रसित ट्रान्सवालकी सरकारने भारतीयोंके विरोध पत्रकी तनिक भी परवाह किये बिना तिरिस्कारके साथ उसे ठुकरा दिया।

अल्टिमेटमके अस्वीकृत होने और ठुकरा दिये जानेपर भारतीयोंके लिए 'सत्याग्रह'को छोड़ अब दूसरा मार्ग ही न रह गया था। अतः गांधीजीने सरकारको दी गई चुनौतीके अनुसार ता० १६ अगस्त १९०८ को जोहान्सबर्गकी हमिदिया मस्जिदमें भारतीयोंकी एक विराट सभा बुलाई और सबके परवाने जमा

1–Ibid–P. 308

करा लिये। इस प्रकार जब लगभग २००० से भी अधिक परवाने गांधीजीके पास इकट्ठे हो गये तो उन्होंने आदेश दिया कि सबको पैराफिनसे भरी एक बड़ी सी कढ़ाईमें डालकर आगके हवाले कर दो! निर्देश पाते ही हर्षोल्लाससे पूर्ण भारतीयोंने तुरन्त परवानोंकी होलिका तैयार कर दी। देखते ही-देखते परवाने धू-धू करके जल उठे!

गांधीजीके इस विचित्र व्यापारको तत्काल बहुतोंने समझ ही नहीं पाया, और बहुतोंने उसे प्रयत्न करनेपर क्रोधका एक प्रदर्शन मात्र समझा। लेकिन कुछ ही समयके बाद सारे जगतको मालूम हो गया कि विचित्र गांधीने असलमें परवानोंकी इस चितामें गोरे दंभका प्रथम अग्नि संस्कार किया था। क्योंकि उस दंभको अनीति-मूलक असत्यका कल्मष समझकर गांधी संसारकी परिशुद्धिके लिए उसे मेट देना चाहते थे।

किन्तु इस दार्शनिक सत्यको छोड़कर, परवानोंकी 'होली' दक्षिण अफ्रीकाके मुट्ठीभर पर स्वाभिमानी और आत्मविश्वासी भारतीयोंकी तरफसे वस्तुतः ट्रान्सवालकी शक्तिशाली गोरी सत्ता के लिए एक खुली और दहकतीहुई चुनौती थी।

सत्याग्रह पूर्णता पर

अध्याय ११

रिस्ट्रिक्शन बिल—

परवानोंको जलाकर गांधीजीने सरकारको स्पष्टतः दूसरे सत्याग्रह की चुनौती दे डाली थी। किन्तु इसी बीच सत्याग्रहके लिए एक और कारण भी उपस्थित हो गया। जिस समय खूनी कानूनके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था उसी समय जनरल स्मट्सने अफ्रीकासे भारतीयोंकी जड़ उखाड़नेके लिए एक और बिल जिसे 'ट्रान्सवाल इमीग्रन्ट्स रिस्ट्रिक्शन बिल' कहते हैं, पास करा दिया था। इस बिलके अनुसार किसी भी नये आनेवाले भारतीयको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी इजाजत नहीं मिल सकती थी।

भारतीयोंके अस्तित्व पर निश्चयही यह एक जबर्दस्त आघात था। अतः गांधीजी और उनके साथियोंने खूनी कानूनके साथ साथ इस बिलके विरोध करनेका भी निश्चय कर डाला, और इसलिए उसेभी अपने सत्याग्रह आन्दोलनका एक अंग बना लिया।

चालाक गांधी—

अतः उक्त निश्चयके अनुसार गांधीजीने रिस्ट्रिक्शनबिलके बारेभी ट्रान्सवालकी सरकारसे लिखा-पढ़ी आरम्भकी, किन्तु

उसमें सुधार करनेके बजाय जनरल स्मट्सने उलटे गांधीजी पर ही दोषारोपण करने शुरू कर दिये। दक्षिण अफ्रीकामें इस समय गांधीजीका काफी प्रभाव छा गया था और पिछले सत्याग्रहकी सत्यता एवं त्यागपूर्ण सारल्यसे बहुतसे यूरोपियन तक भारतीय आन्दोलनका पक्ष लेने लगे थे। स्मट्स खूब समझता था कि यूरोपियन जनमत का यह रूख गांधीजीके पक्षको मजबूत बना देगा और उसकी सरकारको कमजोर कर डालेगा। अतः उसने अब यूरोपियन जनमतको भारतीय पक्षसे हटाकर अपनी ओर प्रवाहित करनेके लिए गांधी पर वार करना शुरू किया। उसे आशा थी कि अगर वह गांधीको यूरोपियनोंके हृदयसे गिरा सका तो मैदान मार ले जायगा। फलतः उसने यूरोपियनोंको यह बतलानेका निष्फल प्रयत्न किया कि 'गांधी एक बहुतही 'चालाक' वा 'मक्कार' आदमी है। वह हमेशा लड़ाई-झगड़ा मोल लेनेके लिए रोज नये-नये प्रस्तावोंको पेश किया करता है। वह असलमें उँगली पकड़कर पहुंचा पकड़नेकी चाहना रखता है। इसलिए ऐसे झगड़ालू, संघर्ष-प्रिय और महत्वाकांक्षी व्यक्तिको वह क्योंकर आश्रय दे? और वह क्यों ऐसे व्यक्तिको सर चढ़ानेके लिए उसकी एशियाटिक ऐक्टको रद्द करनेकी अनैतिक माँगको स्वीकार करे' ?

किन्तु स्मट्सकी ये भावोक्तियाँ निष्फल गईं। उन यूरोपियनोंको जो गांधीको बाहर और भीतरसे टटोल चुके थे, यह समझानेकी अब जरूरत न रह गई थी कि चालाक और मक्कार कौन है? वे पहले से ही यह समझे-बूझे थे कि मक्कार गांधी नहीं, स्मट्स खुद है। अतः इन निष्पक्ष यूरोपियनों पर स्मट्सके

प्रचारका कोई प्रभाव पड़नेके बजाय, उसीके विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी। परिणामतः स्मट्सके अनर्गल प्रलाप और झूठे दोषारोपणोंसे वे यूरोपियन भी जो अबतक गांधीके प्रशंसक मात्र थे, चिढ़कर उनके सक्रिय समर्थक बन गये और खुल्लम खुल्ला भारतीयोंके पक्षका समर्थन करने लगे।[1]

सत्याग्रहका आरम्भ १९०८—

इमीगरेशन ऐक्टमें एक धारा ऐसी थी जिसमें कहा गया था कि वही व्यक्ति ट्रान्सवालमें आनेसे रोका जाय जो किसी भी एक यूरोपियन भाषाको न जानता हो। अतः इस ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए सत्याग्रह कमेटीने ऐसे ही व्यक्तियोंको चुना जो अंग्रेजी तो पढ़े-लिखे थे, पर पहले कभी ट्रान्सवालमें नहीं आये थे। इस निश्चय के अनुसार गांधीजीके निर्देश पर सबसे प्रथम व्यक्ति जो सत्याग्रहके लिए चुने गये, वे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सोराबजी पारसी थे।

एशियाईयों का ट्रान्सवाल पर अहिंसक आक्रमण—

इस प्रकार इमीगरेन्ट्स ऐक्टके विरुद्ध जिहाद घोषित कर भारतीयोंने नेटालसे ट्रान्सवाल पर आक्रमण करनेके लिए अपने प्रथम सैनिक सोराबजीको रवाना किया।[1] सोराबजीने ट्रान्सवाल सरकारको रवाना होनेसे पहले सूचना भेजकर यह आगाह भी कर दिया था कि उक्त अनैतिक कानूनको अस्वीकार करते हुए वे ट्रान्सवालमें प्रवेश करेंगे। पर सरकारने आरम्भमें इसे

---

1. Satyagraha in South Africa p. 319.

बच्चोंका सा खिलवाड़ समझा और इसलिए उनकी सूचना पर कोई ध्यान न दिया। सोराबजीने भी सरकारकी चिन्ता न की और ३ जुलाई १९०८ को टान्सवाल की सीमामें प्रवेश कर दिया। जोहान्सबर्गमें पहुंचने पर सोराबजीने वहाँके पुलिसके अध्यक्षको भी तुरंत अपने आनेकी सूचना कर दी। इस खुली और निर्भीक अवज्ञासे चिढ़कर अन्तमें सरकारकी पुलिसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। कानून तोड़नेके जुर्ममें १० जुलाई-को पुलिसने उन्हें अदालतमें भी पेश किया। अनधिकार प्रवेशके जुर्ममें मजिस्ट्रेटने सोराबजीको हुक्म दिया कि वे एक हफ्तेके अन्दर ट्रान्सवाल छोड़कर चले जावें। किन्तु इस हुक्मका पालन करनेके लिए सोराबजीने ट्रान्सवालमें प्रवेश न किया था। वे तो भारतीयोंके वहाँ रहनेके हकको कायम करनेके लिए ही सत्याग्रही सैनिकके रूपमें ट्रान्स-वालमें घुसे थे। अतः सोराबजी मजिस्ट्रेटके हुक्म की चिन्ता न कर, ट्रान्सवालमें डटे ही रहे। इस अवज्ञाके कारण २० जुलाईको वे पुलिस द्वारा फिरसे गिरफ्तार होकर अदालतमें पेश किये गये। इस बार मजिस्ट्रेटने उन्हें हठी समझ कर अवज्ञा के अपराधमें एक महीनेकी सख्त कैदकी सजा देकर सीकचोंमें बंद करवा दिया।[1]

सरकार समझती थी कि इस प्रकार सोराबजीको बंद कर देनेसे अन्य भारतीय डरकर ट्रान्सवालका रास्ता छोड़ देंगे और

---

१ आज जनवरी, फरवरी–१९४८ में भी इस ऐक्टके विरुद्ध नेटाल के भारतीयोंका ट्रान्सवालमें आन्दोलन चल रहा है!

सारा आन्दोलन भयसे दबकर स्वतः शांत हो जायगा। किन्तु इस दमनका परिणाम सरकारकी मनोकल्पनाके विपरीत हुआ। दमनने दबानेके बजाय विप्लवको और भी उभाड़ डाला जैसा कि उसका स्वभाव है। सोराबजीके कैद किये जानेपर भारतीयोंने उसे सरकारकी तरफसे खुलकर लड़नेकी चुनौती समझा, जिसे उन्होंने अपनी तरफसे भी खुलकर स्वीकार किया। अतः नेटालके भारतीय कृतसंकल्प हो गये कि नेटाल और ट्रान्सवालके बीच वे किसी प्रकारकी सीमा न रहने देंगे। उन्होंने मानों नेटाल और ट्रान्सवालके बीच सीमाका होना ही अस्वीकार कर दिया और सहज रूपसे उसे लाँघनेके लिये सत्याग्रहियोंकी टोलियाँ रवाना कर दीं।

सोराबजीके पश्चात् सत्याग्रहियोंकी पहली टोलीके नेता नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष श्री दाऊद नियुक्त हुए। सत्याग्रहियोंकी इस छोटी किन्तु दृढ़ टुकड़ीने नेटालसे प्रस्थान कर निर्भयतापूर्वक ट्रान्सवालकी सीमाको पार कर दिया। पर इस बार ट्रान्सवाल सरकारभी सत्याग्रहियोंका सामना करनेके लिए पहले ही से तैयार बैठी थी, अतः ट्रान्सवालमें प्रवेश करतेही सारी सत्याग्रही सैनाको पकड़ लिया गया। इसके बाद १८ अगस्त १९०८ को उन्हें अनधिकार प्रवेशके जुर्ममें अदालतमें पेश किया गया। मजिस्ट्रेटने सोराबजीकी तरह उन्हें भी एक हफ्तेके भीतर ट्रान्सवालसे निकल जानेका आदेश सुनाया। किन्तु 'सत्य' पर चलनेवाला सत्याग्रही कभी किसीके झूठे आदेशोंकी परवाह नहीं किया करता। सत्यपर आरूढ रहनेवाले असत्यसे भयाभिभूत भी नहीं हुआ करते! ट्रान्सवालमें घुसे सत्याग्रही ट्रान्सवालमें आने और रहनेका अपना अधिकार समझते थे। अतः उन्होंने अपने इस

अधिकारकी प्रतिष्ठाके लिए मजिस्ट्रेटकी आज्ञाकी कोई परवाह न की। फलतः हफ्ता बीत जाने परभी जब सत्याग्रही ट्रान्सवालसे न हटे, तो सरकारने उन्हें २८ अगस्तको फिर प्रिटोरियामें गिरफ्तारकर ट्रान्सवालकी सीमासे बाहर खदेड़ दिया! किन्तु वे शूर तीन दिनके अंदरही पुनः ट्रान्सवालमें घुस आये। परिणामतः अवज्ञाके जुर्ममें वे फिर पकड़ लिये गये और ८ सितम्बरको वोलक्रस्ट (Volksrust) की अदालत द्वारा उन्हें तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा दे दी गई।

किन्तु इस प्रकारके दमनसे आन्दोलन थमनेके बजाय बढ़ते बढ़ते कुछही समयके भीतर पूर्णताको पहुंच गया। दाऊदकी सत्याग्रही टोलीके बाद नेटालसे सत्याग्रही बराबर ट्रान्सवालकी सीमाओंको लांघकर प्रवेश करते ही रहे, और सरकार भी अपनी तरफसे उन्हें जेलोंमें भरती चली गई।

ट्रान्सवालके प्रति सरकारकी चुप्पी—

नेटालके भारतीयों द्वारा इमीगरेशन ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चलानेके बावजूद गोरी सरकार ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रति अभी तक उदासीनताकी नीति ही धारण किए हुए थी। ट्रान्सवालके भारतीयोंने परवनोंको जलातक डाला था; लेकिन तिसपर भी वह जहरकी घूँट पीकर चुप हो रही थी। वह जानती थी कि इस समय जब कि नेटालके भारतीय विद्रोही हो रहे हैं, ट्रान्सवालके भारतीयोंसे परवानोंके विषयमें छेड़ना आहुतिमें घी का काम करेगा। अतः आन्दोलनके व्यापक और तीव्र होनेके भयसेही सरकारने ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रति

चुप्पी साध रखी थी। इसके अलावा सरकारका यहभी विचार था कि रजिस्ट्री करा लेनेसे भारतीय ट्रान्सवालमें रह तो सकतेही हैं, इसलिए इस समय उनसे उदासीनतासे ही काम लेना ठीक होगा, क्योंकि संभव है, सरकारकी इस नीतिसे वे स्वयं शांतभी हो जायँ!

अतः अपने हितके लिये सरकारने ट्रान्सवालके भारतीयों से किसी प्रकारकी छेड़-छाड़ करना हानिकारक समझ परवानों के मामले पर मौन धारण कर रखा था! पर भारतीय स्वयं इस मौन स्थितिके लिए तैयार न थे! वे अपने अधिकारोंका निपटारा करानेको व्याकुल हो रहे थे, और इसके लिए ट्रान्सवाल सरकारसे मोर्चा लेनेको पूरी तरहसे तैयार हुए बैठे थे। अतः सरकारके मौनको तोड़ने और अपने अधिकारोंके हित संघर्ष छेड़नेके लिए वे अपनी तरफसे ही प्रेरणा लेनेको उतावले हो रहे थे! फलतः उनकी इस मनोदशाको समझकर गांधीजी आगे बढ़कर उनका नेतृत्व करनेके लिए सन्नद्ध हो उठे! जोहान्सबर्गके भारतीय यही चाहते थे! उनके हर्षका सचमुच अब ठिकाना न था, क्योंकि जिस संघर्षके लिए वे उतावले हो रहे थे, उसका नेतृत्व स्वयं उनके नेताने अपने हाथमें ले लिया था! इसके साथ साथ उन्हें इस बातकी भी खुशी थी कि उनके ट्रान्सवालके आन्दोलनसे नेटालके भारतीय आन्दोलनको भी सहारा मिल सकेगा!

ट्रान्सवालके भारतीयोंका अवज्ञा-आन्दोलन—

लेकिन अब प्रश्न यह था कि संघर्ष छेड़ा कैसे जाय! ट्रान्सवालमें उस समय भारतीयोंको व्यापारमें भी मुक्त-हस्त न

था। सरकारने एक ऐसा नियम बना रखा था जिसके अनुसार यदि कोई भारतीय व्यापार करना चाहता हो तो वह पहले अपना रजिस्ट्रेसन सर्टिफिकेट देकर व्यापारके लिये प्रमाण पत्र या लाइसेन्स हासिल कर ले। लेकिन इस समय किसी भी भारतीयके पास वे सर्टिफिकेट न थे क्योंकि स्मट्सके वचन भंग करने और समझौता तोड़नेपर उन्हें पहलेही जला दिया जा चुका था। भारतीयोंने ऐसा करके एक प्रकारसे तब सरकारके विरुद्ध संघर्ष की घोषणा कर दी थी। किन्तु जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, सरकारने मौन धारण कर इस संघर्षको टालसा रखा था! अतः इस टाले हुये संघर्षको उत्तेजना देने और छेड़नेके लिए भरतीयोंने यही उचित समझा कि सरकारके व्यापार पर लगाये प्रतिबन्धोंको तोड़ दिया जाय! इस निष्कर्ष पर पहुँचकर उन्होंने लाइसेन्स की परवाह न कर अब खुल्लमखुल्ला व्यापार करना भी शुरू कर दिया!

इस प्रकारके व्यापारका स्पष्ट अर्थ था—अवज्ञा आन्दोलन और सरकारकी प्रतिष्ठापर एक जबरदस्त आघात! स्वभावतः भारतीयों की इस गर्वपूर्ण 'अवज्ञा'से ट्रान्सवालकी सरकार जो नेटालके सत्याग्रहसे परेशान होकर अबतक ट्रान्सवालके भारतीयों के परवाना जलानेके कांडके प्रति अपना रोष थामकर उदासीन हो रही थी, बौखला उठी, और उसने झुंझलाकर ट्रान्सवालके भारतीयोंपर भी प्रहार करना शुरू कर दिया! सरकारकी इस रौद्रतासे भारतीयोंको खुशी ही हुई, क्योंकि वे यही चाहते थे! उनका लक्षही इस समय सरकारको जोश और रोष दिलाकर मैदानमें उतारना था! वे कभीसे एक बार खुलकर मैदानमें

आत्मबल और पशुबलकी शक्तियोंको नाप लेनेके लिये उत्सुक हो रहे थे ! और इसमें वे आखिर सफल हुए। भारतीयोंकी इच्छाके अनुरूप वे और ट्रान्सवालकी प्रतिद्वन्दी सरकार दोनों अब मैदानमें उतर आये थे। इन दोनोंं प्रतिद्वन्दियोंमें एकको आत्मबल का भरोसा था, दूसरेको शस्त्रबलका ! एकमें सहनेकी शक्ति थी, दूसरेमें 'दबाने' की ! अतः जैसे जैसे सरकार दमनको तीव्र करती जाती थी, सत्याग्रहकी लहरें उग्रतर होती जाती थीं। सरकारको आश्चर्य था, इस बातका कि कोई भी प्रहार, कोई भी आघात मानों भारतीय सत्याग्रहियोंपर असरही नहीं करता, और आन्दोलन बढ़ता ही जाता है।

गांधीजी फिर गिरफ्तार—

ट्रान्सवालकी सरकार अब बहुत आफतमें थी ! एक ओर से नेटालके सत्याग्रहियोंकी अहिंसक टोलियां बराबर ट्रान्सवाल पर आक्रमण करती जा रहीं थीं, तो दूसरी तरफ ट्रान्सवालके भारतीयोंका 'अवज्ञा आन्दोलन' अबाध गतिसे बढ़ता ही जाता था। सरकार यह भी समझ रही थी कि इस आन्दोलनकी जड़ में गांधीकी ही प्रेरक शक्ति काम कर रही है ! अतः सरकारने आन्दोलनको खतम करनेके लिए जड़को ही उखाड़ फेंक देनेका निश्चय किया। जिस समय यह कुमंत्रणा हो रही थी, गांधीजी नेटाल गये हुए थे, इसलिए जब वे ट्रान्सवालको लौटने लगे तो वार करनेका यह अच्छा मौका देख सरकारने उनसे परवाना मांगा ! लेकिन परवाना था कहां ? उसे तो गांधीजी पहिले ही अपने साथियोंके साथ कड़ाईमें डालकर भून चुके थे। फलतः परवाना न पेश करनेके बहाने वे गिरफ्तार कर लिये गये, और

१५ अक्टूबर १९०८को उन्हें २ महीनेकी सख्त कैदकी सज़ा देकर जेलमें डाल दिया गया। गांधीजी निरपराध थे और इसीलिए एक बेकसूरको दण्ड देते समय गोरे मजिस्ट्रेट का हृदय भी पसीज उठा था। गांधीजीकी निर्भीक और सत्यवाणीने मजिस्ट्रेटके हृदयको सचमुच हिलासा दिया था। सत्याग्रह आन्दोलनके मूल-भूत कारणों पर प्रकाश डालते हुए गांधीजीने कोर्टसे कहा था—'खूनी कानूनको रद्द करानेके लिए मैंने यथासाध्य बहुत प्रयत्न किया; किन्तु सरकारने एक बार वचन देकर भी इस संबंध में कुछ न किया, ऐसी अवस्थामें निरुपाय होकर ही हम भारत-वासियोंने फिर सत्याग्रह आरम्भ किया। अतः इस अपराधके लिए मुझे जो दण्ड मिले, मैं सहनेके लिए तैयार हूं।'[1] किन्तु इस सरल और सत्य कथनका भूठ और कूटनीति पर आश्रित गोरी सरकार पर क्या असर हो सकता था? इसलिए हृदयसे गांधीको निरपराधी समझते हुए भी गोरे मजिट्रेटको उन्हें कैदकी सजा देनी पड़ी! सजा भुगतनेको कैदी गांधी वोलक्रस्ट जेलमें भेज दिये गये!

सत्याग्रहियोंका दमन—

वोलक्रस्ट जेलमें गांधीजीको मिलाकर कुल ७५ कैदी रखे गये थे। सत्याग्रही कैदियोंको तोड़ने और मरोड़नेमें इस बार गोरी सरकारने कोई कसर न उठा रखी। सब सत्याग्रहियों और गांधीजी पर बहुत बुरी तरहसे सख्तियाँ की गयीं। और जिस तरहसे हो सका, उन्हें परेशान करनेका प्रयत्न किया गया!

१ महात्मा गांधी, लेखक. श्री रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ. ५१-५२.

सत्याग्रहियोंको तंग करनेके लिए जेलमें पाखाना साफ करनेका कामभी उन्हींको दिया गया ! इस प्रकार जितनेभी कठिन कार्य हो सकते थे,—पत्थरोंको कूटना, पथरीली जमीन खोदना, और कुएँ तयार करना आदि—सब उनसे कराये गये ! पर वीर सत्याग्रही इन सब कठिनाइयोंको मानों कठिनाइयाँही नहीं समझते थे, और हँसते मुस्काते सब सहज भावसे झेलते जाते थे। 'सहना' उनके जीवनका इष्टही हो गया था ! गांधीने उनमें यह विश्वास पैदाकर दिया था कि 'सहने' से ही अत्याचारीके अत्याचारोंका अन्त किया जा सकता है। यही कारण था कि वे बिना किसी रोष और प्रतिहिंसाके सरकारके अत्याचारोंको झेलते जाते थे ! उनके हृदयमें यह विश्वास जम गया था कि इसका परिणाम अन्ततः अत्याचार ढाहनेवालेके लिए ही घातक होगा। अतः गांधीके साथ मिलकर वे सब यातनाओंमें झूलते हुए भी खुश थे, प्रसन्न थे। कोई भी सख्ती या कठिनसे कठिन कार्य उनसे 'आह' न निकाल सकता था। पथरीली जमीन पर कुदाल चलानेके कारण उनके हाथों पर बहुतसे छालेभी पड़ गये थे, लेकिन तबभी बिना 'उफ' किये वे कड़ी मेहनत करनेसे न हटे ! उनका आनन्द-स्रोत और सबसे बड़ा सहारा गांधी जब उनके बीचमें था, और वोलक्रस्ट जेलमें जब वे ही खाना बनाकर उन्हें खिलाते पिलाते भी थे, तो फिर छालोंकी क्या बिसात थी कि उनके इस आनन्दमें बाधा डाले !

गांधीजीका तबादला और रिहाई—

गांधीजीको सरकार बहुत "खतरनाक कैदी[1]" समझती थी।

1. Gandhi world citizen, by Mureil Lester, p. 120.

इसलिए सरकारने अन्य सत्याग्रहियोंके बीचसे गांधीजीको वोलक्स्ट जेलसे हटा देनेका निश्चय किया। सरकारका यह भी खयाल था कि इस प्रकार अलगकर दिये जानेसे गांधी और उनके साथियोंका दिल और साहस दोनों टूट जायेंगे, और परिणामतः सत्याग्रह आन्दोलन भी शिथिल पड़ जायगा। अतः अपनी इस इच्छाकी पूर्तिके लिए सरकारने गांधीजीका प्रिटोरियाकी जेलमें तबादला कर दिया। इस वार सरकार गांधी पर इतनी बिगड़ी हुई थी कि प्रिटोरिया ले जाते समय जलील करनेकी गरजसे जेलसे स्टेशन तक उनको अपनी गठरी सिर पर लादे पुलिस गार्डके बीच आम रास्तेसे ले जाया गया![1]

प्रिटोरियाकी जेलमें गांधीजीको एक ऐसी कोठरीमें रखा गया, जिसमें केवल खतरनाक कैदीही रखे जाते थे। यहाँ सारा समय उन्हें तनाहीमें ही बिताना पड़ा! मुश्किलसे तब दिन-भरमें उन्हें अपनी कोठरीसे दो बार व्यायामके लिए बाहर निकाला जाता था। लेकिन कुछ ही समय बाद यकायक १३ दिसम्बर १९०८ को सरकारने गांधीजीको रिहा कर दिया। इस रिहाईके समयसे लेकर ६ नवम्बर १९१३ तक गांधीजी फिर बाहर ही रहे।

सत्याग्रहियों पर पाशविक अत्याचार—

गांधीजीको छोड़नेमें सरकारका कोई अच्छा अभिप्राय न

1. Gandhiji, His Life And work., published, october 1944 Bombay p. 341

था । अपने साथियों और दूसरे सत्याग्रहियोंसे अलग करनेके लिए ही उन्हें मुक्त किया गया था । इसीलिए गांधीजीको रिहा करने पर भी सरकार अन्य भारतीय सत्याग्रहियोंको सैकड़ोंकी संख्या में जेलमें ठूंसती ही चली गयी ! लेकिन भारतीय इससे पस्त-दिल न हुए ! वे सरकारका पहलेकी भांति ही डटकर तीव्रतासे सामना करते रहे । परिणामतः अन्तमें सरकारको ही घबड़ाकर यह सोचना पड़ा कि आखिर वह कब तक और कहां तक उन्हें जेलमें ठूंसती ही जायगी ? निःसन्देह जेलें अब काफी भर चुकी थीं और उससे सरकारी खर्चा भी बहुत बढ़ गया था !

फलतः कूटनीतिज्ञ सरकारने सत्याग्रहियोंको कुचलनेका एक नया और क्रूर ढंग सोच निकाला ! यह नया उपाय या अस्त्र निष्कासन दंडके रूपमें आया ! इसको उपयोगमें लाकर सरकारने अब सत्याग्रहियोंको जेलमें भरनेके बजाय उन्हें पकड़-पकड़ कर भारत भेजनेका क्रम जारी किया ! सत्याग्रहियोंके लिए यह सचमुच एक महान विपत्तिका अवसर था ! इस घातक निष्कासनके कारण उन्हें अपने परिवार और कारोबार सबसे हाथ धोना पड़ रहा था ! उन्हें यह भी पता न था कि भारतमें जहां वे छोड़े जायेंगे, वहां क्या होगा ! इसके अलावा निष्कासनके समय जहाजमें भी उन्हें बहुत तंग किया जाता था ! किन्तु ऐसी विकट और संकटापन्न स्थितिके उपस्थित हो जाने पर भी अनेक सत्याग्रही अपने सत्यके आग्रह पर डटे ही रहे ! इन शूर-वीरोंको अपने कर्त्तव्यके सिवा परिणामकी मानों कोई चिन्ता ही न थी !

इस विकट स्थितिमें गांधीजी अपनी तरफसे जैसेभी हो सका,

इन दृढ़-प्रतिज्ञ सत्याग्रहियों को हर प्रकारका सहारा पहुँचाते रहे। यकायक भारत भेजे गये निष्कासित सत्याग्रहियोंको वहाँ पहुंचने पर रहने और खाने पीने आदिका कष्ट न हो, इसका भी गांधी जीने अपने मित्रोंके जरिये प्रबंध करा दिया। इस बीच उनके नेतृत्वमें भारतीयोंने सरकारके इस पाशविक कार्यके विरुद्ध एक जोरदार आन्दोलन भी शुरू किया और सरकारके ही कानूनका आधार लेकर निष्कासन दण्डके विरुद्ध कोर्टमें अपील दायर करदी।[1] भाग्यवश भारतीयोंकी यह अपील मंजूर हो गई और सरकारको लाचार होकर अपने क्रूर निष्कासनके विधान को समेट लेना पड़ा।

गोरी पाशविकता—

सरकारने मजबूर होकर निष्कासनका दण्ड तो बन्द कर दिया, लेकिन सत्याग्रही कैदियोंको कष्ट पहुंचानेके लिये अब उसने अनेक प्रकारके दूसरे पाशविक ढंग अख्तियार कर लिये। पहले सत्याग्रहियोंको एक साथही रखा जाता था, लेकिन अब उन्हें तंग करने की गरजसे एक दूसरेसे अलग कर विभिन्न जेलोंमे डाल दिया गया। इसी तरह तंग करनेके वास्ते और भी जो जो तरीके हो सकतेथे, प्रयोगमें लाये गये! सरकार इस प्रकार अपने पशुबल के द्वारा सत्याग्रही सेना का दम तोड़ने पर तुल सी गई थी! लेकिन आत्मबलके सामने पशुबल की कोई पेश न चल पाती थी। सत्याग्रहियों को असहनीय शीतकाल में ट्रान्सवाल की सड़कके किनारे कैम्पों में भी रखा गया, कड़ाके की ठण्डमें प्रातःकाल

1. Satyagraha In South Africa; p. 311

उनसे खुली सड़कों पर सख्त मेहनत भी कराई गई; लेकिन इन सब कष्टोंके बावजूद उन्होंने अपने आन्दोलन की तीव्रता किसी प्रकार कम न होनेदी। वरन् जैसी जैसी सख्तियाँ बढ़ती जाती थीं, सत्याग्रह भी उसी तीव्रताके साथ बढ़ता जाता था। जेलके नारकीय कष्टोंकी मानों सत्याग्रहियोंके सामने कोई अस्तित्व ही न था, और जेलोंको तपोभूमि समझ कर वे उनमें घुसे ही चले जाते थे। सत्याग्रह की इस तीव्रता को देख कर क्रोधित सरकार जितना भी उग्र हो सकती थी, होती चली गई! उसने अब सत्याग्रहियों को और अधिक तंग करनेके लिये उन भयानक जेलोंकी काल कोठरीमें उन्हें ठूंसना शुरू किया जिनमें केवल खतरनाक कैदियोंको रखा जाता था। इन भयंकर जेलोंमें डाइप क्लूफ कन्विक्ट प्रिज़न का नाम सबसे मशहूर था। इस जेलमें सत्याग्रहियोंको तंग करनेके अलावा गालियों तथा कुत्सित व्यवहार द्वारा अपमानित भी किया जाता था। सत्याग्रही शारीरिक सख्तियोंको तो सह सकता है, लेकिन आत्माके आघात और अपमानको सहना उसके धर्मके विरुद्ध है। अतः उक्त जेलके बन्दियोंने 'अपमान' के विरोधमें भूख हड़ताल करनेका निश्चय किया। जघन्य पशुबलका सामना करनेके लिए आत्मबल पर निर्भर रहनेवाले सत्याग्रहीका भूख हड़ताल या अनशन ही वास्तवमें, सबसे बड़ा—

और अन्तिम अस्त्र है, जिसके प्रयोगसे वह अत्याचारीके हृदयको द्रवित कर सकता है। यह भूख हड़ताल सात दिनों तक चली सरकार इस कठोर आत्म-बलिदानके दृश्यको अधिक न सह सकी और अन्ततः अनशनके सातवें दिन उसने सत्याग्रहियोंकी मांगके

सामने सर झुका दिया तथा उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें उस रौरव समान जेलसे बदल भी दिया। निःसन्देह आत्मबलकी यह एक भारी विजय थी। यहाँ पर हम यह भी इंगित कर दें कि सत्याग्रहकी अहिंसात्मक लड़ाईमें भूख हड़तालका यह अहिन्सक अस्त्र पहले पहल इसी समय (नवम्बर १९१०) प्रयोग में लाया गया था।[1]

गांधीजी और दूसरा डिपुटेशन—

भारतीयोंका सत्याग्रह चल ही रहा था कि इसी समय (१९०९) अंग्रेज और बोअरोंने यह निश्चय किया कि दक्षिण अफ्रीकाके विभिन्न उपनिवेशों को मिलाकर एक यूनियन सरकार कायम कर ली जावे। इस ध्येयसे अतः बोअरों और अंग्रेजोंने मिलकर केबिनेटके पास अपना एक डिपुटेशन इंग्लैंड भेजा। यह डिपुटेशन अपने इष्ट साधनमें सफल हुआ और परिणामस्वरूप इंगलैंडकी पार्लमेण्टमें यूनियन बिल पास कर दिया गया।

यूनियन बिलके पास होनेपर गांधीजी और उनके साथियोंने समझ लिया कि यूरोपियनोंकी यूनियन स्थापित होनेसे उनकी दशा अब और भी शोचनीय हो जायगी, क्योंकि सभी यूरोपियन एक रूपसे भारतीय विरोधी थे। अतः भारतीयोंने यह आवश्यक समझा कि गांधीजी भी फिर भारतवासियोंकी तरफसे एक डिपुटेशन लेकर तुरन्त इंग्लैंड जांय और वहाँके जन-

1. Ibid,P. 346

मतको भारतीय-पक्षमें जागृत करने तथा ट्रान्सवाल सरकारके नेताओं (जनरल स्मट्स और बोथा) के साथ 'ऐशियाटिक ऐक्ट' को तोड़नेकी चर्चा चलानेका प्रयत्न करें। फलतः इस निश्चयके अनुसार गांधीजी और सेठ हाजी हबीब भारतीयोंके प्रश्नको लेकर २३ जून १९०९ को इंगलैंडके लिए रवाना हो गये।

इंगलैंड जाते समय गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकाके भारत-वासियोंके कष्टोंका प्रचार करने और भारतके लोकमतको उनके प्रति जागृत करनेके विचारसे एक डिपुटेशन यहाँ भी भेजा। मि० पोलक इस डिपुटेशनके अगुआ थे। मि० पोलकने भारतमें पहुंच कर बहुत ही सुन्दरता और योग्यताके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतवासियोंके दुखोंकी कथा यहाँके लोगोंको सुनाई। दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले अपने देश भाईयोंकी दुर्दशाकी गाथा सुनकर भारतकी जनताका मन स्वभावतः दुःख और सहानुभूति से भर उठा। अतः उन्होंने करुणार्द्र हृदयसे यह निश्चय कियाकि वे जहाँ-तक और जिस तरह बन पड़ेगा, अपने अफ्रीकाके प्रवासी बंधुओंको सहायता पहुंचाकर उनके कष्टोंको कम करनेका प्रयत्न करेंगे। भारतकी इस जन-चेतना के परिणामसे ही बादमें गांधीजीके बुलावे पर उस समयके सर्वमान्य भारतके नेता गोखले प्रवासी भारतीयोंकी समस्यासे आन्दोलित होकर दौड़े हुए दक्षिण अफ्रीका पहुंचे थे। लेकिन इस घटनाका जिक्र आगेके लिए छोड़कर अब हम पुनः गांधीजी और हबीबके डिपुटेशनको लौटते हैं। देखना है, भारतीय डिपुटेशनका इंगलैंडमें क्या हुआ?

इंगलैंड पहुंचते ही गांधीजी और हबीबने लार्ड अम्पत्हिल (Lord Ampthill) के जरिये जनरल बोथा से 'ऐशियाटिक-

ऐक्ट' को रद्द करने की चर्चा शुरू कर दी। किन्तु जनरल बोथा ने ऐक्ट और रंग भेद को रद्द करने से साफ इनकार कर दिया, यद्यपि छोटी मोटी मांगों को स्वीकार करने का उसने आश्वासन अवश्य दिया। बोथाकी भांति स्मट्स का व्यवहार भी भारतीय नेताओंके साथ अमित्रताका रहा ! अतः भारतीयोंकी मांगोंको पूरा करनेके बजाय बोअर और ब्रिटिश नेताओंने गांधीजी को धमकीके साथ यह कहलवाया कि जैसा वे कहते हैं, उस तरहसे बातें स्वीकार कर लें, अन्यथा उनकी शक्तिके प्रभाव और न मानने के कुपरिणामों को भी सोचकर रखें।

हवीब मालदार व्यापारी तपके के प्रतिनिधि थे। और यह व्यापारी व अमीर तपका ही ट्रान्सवाल में अधिक संख्यामें था। अमीर स्वार्थी और डरपोक तो होते ही हैं, अतः उनके प्रतिनिधि हबीबने बोथाकी बातोंको भयसे यह कहकर स्वीकार कर लिया कि 'वे अपने वर्ग को और अधिक कष्ट में डालना नहीं चाहते और इसलिये फिलहाल जितना जनरल बोथा देने को तैयार हैं, उसीसे संतुष्ट हो जायेंगे। रहा सिद्धान्त, उसके लिये बाद में देख लिया जायगा।'

किन्तु दूसरी और सत्यपर आस्था रखने वाले और दलित एवं दरिद्र वर्ग के एकमात्र आश्रय व प्रतिनिधि गांधी अपने ध्येय पर अटल बने रहे। जो सत्य पर निछावर होना जानते हैं, जो पर दुःखसे कातर हुआ करते हैं—उन्हें न कोई स्वार्थ हिला सकता है और न किसी का भय कंपा ही सकता है ! अतः गांधी जैसे सत्यनिष्ठ और परदुःखसेवी को कोई भी शक्ति विचलित न कर सकती थी, और इसीलिये उन्होंने जनरल बोथाकी शर्तों

का तिरस्कार करते हुए उसके पास यह दर्प-युक्त संदेश भेजा कि "वे भारतीय जिनका मैं प्रतिनिधित्व करता हूं, निश्चय गरीब और अल्प संख्यक हैं, तथापि वे प्राणों तक को होम करने को तैयार हैं, क्योंकि वे सिद्धान्तोंके लिए लड़ रहे हैं। हम जनरल बोथा की शक्तिसे भी परिचित हैं, लेकिन हम उससे अधिक अपने वचनोंको महत्व देते हैं और इसलिए उनका पालन करनेके हित सभी दुष्परिणामोंके लिए तैयार हैं...हम सत्याग्रही संख्यामें भी थोड़ेसे हैं, किन्तु आशा करते हैं कि अपने बलिदानोंसे हम जनरल बोथाके दिलको पिघला सकेंगे और उन्हें 'ऐशियाटिक ऐक्ट' को बदलनेके लिए बाध्य कर सकेंगे।"[1]

पर जनरल बोथाने गांधीजीकी इस चेतावनीसे भरे संदेशको तब एक बहकेका प्रलापसा समझा, और इसलिए उसपर कोई ध्यान न दिया। फलतः गांधीजी खाली हाथ १३ नवम्बर १९०९ को इंगलैंडसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए चल दिये। इस वापसी यात्राके समय मार्गमें गांधीजीने 'हिन्द स्वराज' (Indian Home Rule) नामकी एक पुस्तिका लिखी जिसमें उन्होंने 'सत्याग्रह' और 'अहिंसा' के संबंधमें अपने स्पष्ट विचार और धारणाएँ व्यक्तकी हैं। इस पुस्तिकाको लिखनेकी प्रेरणा गांधीजीको इंगलैंडमें रहनेवाले उन भारतीय नवयुवक क्रान्तिकारियोंसे मिली जो 'हिंसा' को अपना आदर्श समझते व मानते थे। उनके इस भ्रमपूर्ण आदर्श और घातक हिंसा पद्धतिकी गांधीजीने 'हिन्द स्वराज'में खुलकर विवेचनाकी है और स्पष्ट रूपसे इसपर जोर दिया है कि "भारतका हित हिंसासे नहीं, प्रेमके मार्गसे ही

---

1. Ibid pp. 350–55.

संभव है" अर्थात् भारतका हित मारनेमें नहीं, मरनेमें है। अतःहिन्द स्वराजमें 'पशुबल'का 'आत्मबल'से सामना करनेका उपदेश दिया गया है और 'पशुत्व'की धात्रि वर्तमान भौतिकवादी सभ्यताकी कड़ी आलोचना की गई है।[1]

टाल्सटाय फार्मकी स्थापना—

गांधीजी विलायतसे खाली हाथ लौटे थे! उनकी मांगोंको ठुकरा दिया गया था! अतः उन्होंने लौटने पर अब सत्याग्रहको और मजबूती और दृढ़ताके साथ तब तक चलाते रहनेका निश्चय किया जब तक कि सरकार भारतीयोंकी सही मांगोंको पूरी तरहसे स्वीकार न कर लेवे।

किन्तु अनिश्चित काल तक सत्याग्रहको चलानेके लिए गांधीजीके सामने दो प्रश्न थे—एक तो रुपयेका और दूसरा उससे भी अधिक सच्ची सत्याग्रही सेना तैयार करनका जो सफलतापूर्वक मजबूत और पशुबलमें प्रबल दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन सरकारसे उस समय तक लड़ती रह सके जब तक कि उसे अपने इष्टकी प्राप्ति नहीं हो जाती! लेकिन मोर्चे पर लड़ने वाले इन सत्याग्रही सैनिकोंके बाल-बच्चों और स्त्रियोंके रक्षण तथा भरण पोषणका भी प्रश्न गांधीजीके सामने था! क्योंकि सत्याग्रहियोंके लड़ाईमें वभे होने और पकड़ लिये जाने पर उनके कुटुम्बोंकी देख-रेख उनके सैनापतिको ही करनी थी! और इस देख-रेख का स्पष्ट अर्थ था—यथेष्ठ रुपैया!

1—Hind Swaraj by,M. K. Gandhi, Navajiwan press, Ahmedabad, pp. XXV-XXVI.

पर भाग्यवश गांधीजीको रुपयेके लिए अधिक चिन्ता न उठानी पड़ी, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका पहुंचते ही उन्हें तार द्वारा यह सूचना मिली कि रतनजी जमशेदजी टाटाने सत्याग्रह फंड के लिए २५,००० रुपये दान दिये हैं! अतः इस रुपयेको पाकर सत्याग्रहियोंके कुटुम्बकी व्यवस्था करनेके लिये गांधीजीने तुरन्त अब एक आश्रम कायम करनेका निश्चय किया! उनके इस निश्चयको मालूम कर उनके जर्मन मित्र कैलन बकने स्वतः ३० मई १९१०को १,१०० एकड़ जमीन मोल लेकर उसे निःशुल्क उन्हें (गांधीजी) सत्याग्रहियोंके लिए आश्रम बनानेको दे दिया! कैलन बककी यह जमीन जोहान्सबर्गसे २० मील पड़ती थी। इस इच्छित दानको पाकर गांधीजीने जल्दी ही उसमें 'टॉल्सटाय फार्म' नामसे अपना आयोजित आश्रम स्थापित कर दिया, और इस प्रकार भावी सत्याग्रहियोंके कुटुम्बियोंके प्रश्रयकी समस्या हल कर डाली!

इस आश्रममें गांधीजी की योजना पर स्त्री और पुरुषोंके रहनेके लिए अलग-अलग मकान बनाये गये। आश्रमके जीवनमें सादगी और स्वावलम्बन पर विशेष ध्यान रखा गया, क्योंकि गांधी 'सत्याग्रहियोंको उन अमीरोंके धन पर कोहना टेके नहीं देखना चाहते थे जो अब स्वार्थमें पड़कर सत्याग्रह संग्रामसे खिसके जा रहे थे।' अतः वे अपने प्रत्येक सत्याग्रही सैनिकको निज आत्मबल पर निर्भीकताके साथ अवस्थित देखनेकी आकांक्षा रखते थे। इसीलिए गांधीजीने प्राचीन आर्य ऋषियोंके तपाश्रमोंकी तरह स्वावलम्ब, चारित्रिक विमलता और सरलताको अपने आश्रमके आधार स्तम्भ बनाये। फलतः आश्रममें जीवन-

व्यापारके प्रत्येक कार्य आश्रम वासियोंको खुद करने पड़ते थे। दूसरेसे अपना काम लेना आश्रमके नियमके विपरीत था। आश्रममें पुरुषोंकी भांति स्त्री और बच्चोंको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करना अनिवार्य था। आश्रममें खाना पकानेका कार्य स्त्रियाँ ही करती थीं। इस कार्यमें गांधीजी स्वयं भी स्त्रियोंका हाथ बँटाते थे। खाना व भोजन स्वादके लिए नहीं बनता था। स्वास्थका ध्यान रखते हुए उनका भोजन बहुत ही सादा, स्वच्छ और साधारण हुआ करता था।

आश्रममें रहनेके मकान भी आश्रमवासियोंका स्वयं अपने हाथ और परिश्रमसे तैयार करने पड़ते थे। आश्रमवासी खुली जमीनमें किसानोंकी भाँति काश्त भी करते और फल-फूल वा तरकारी उगाया करते थे। घरेलु उद्योग-धन्धों का भी आश्रममें खयाल रखा जाता था। अपने जरूरतकी प्रत्येक वस्तु जहाँ तक हो सके, उन्हें स्वयं तैयार करनी पड़ती थी। अपने लिए चप्पलें तक गांधीजी और उनके साथी आश्रमवासी स्वयं अपने हाथोंसे तैयार किया करते थे। इसी प्रकार घरकी अन्य आवश्यक सामग्रियाँ जैसे तिपाई और सन्दूक आदि भी वे स्वयं ही तैयार किया करते थे। कोई कार्य आश्रमका ऐसा न था जिसे आश्रमवासी सत्याग्रही दूसरे पर छोड़ देते हों। पाखाना तक वे अपना आप ही साफ किया करते थे। निःसन्देह गांधीजी ने आश्रमके जीवनसे परावलम्बताको बिलकुल निष्कासित कर रखा था। आलस्य, निश्चेष्टता और दूसरेके ऊपर भोग करनेकी कुप्रवृतियोंके लिए आश्रमके पट कतई बन्द कर दिये गये थे। आश्रमके वासियों पर इन कठोर किन्तु सुन्दर नियमोंका

परिणाम भी अपेक्षित रूपसे सुन्दर हुआ । स्वावलम्ब और परिश्रम करनेकी शिक्षा और अभ्यासने निःसन्देह उन लोगोंको भी जो प्रारम्भमें कमजोर और आलसीसे थे शक्तिशाली और सचेष्ट बना दिया। फलतः आश्रमके सभी रहनेवाले सत्याग्रही अपनेको शक्तिसे पूर्ण प्रतीत करने लगे।[1]

आश्रमवासी सत्याग्रहियोंके बच्चोंको पढ़ानेकी भी गांधीजीने आश्रममें व्यवस्था कर रखी थी। इसके लिए उन्होंने अपने जर्मन मित्र कैलनबकके सहयोगसे एक बच्चोंकी पाठशाला कायम कर दी थी। आश्रममें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी सभी प्रकारके लोग जिस तरह एक संग रहते थे, उसी प्रकार स्कूलमें भी सबके बच्चे बिना किसी भेद भावके एक संग पढ़ा करते थे। बच्चोंमें जाति-भेदका कोई कुरोग पैदा न हो सके, इसके लिए गांधीजी सर्वदा इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि स्कूलके सभी बच्चे एक दूसरेके निकटतम सम्पर्कमें रहा करें। इस बातकी भी पूर्ण चेष्टाकी जाती थी कि बच्चोंमें पारस्परिक प्रेम और सर्व-जातीय सेवाका भाव पैदा हो। स्कूलमें बच्चोंसे भजन और प्रार्थनाएँ भी कराई जाती थीं। लड़कियां लड़कोंके संग ही एकसाथ पढ़ा करती थीं! लड़के लड़कियोंको परस्पर मिलने-जुलनेमें प्रारम्भमें कोई प्रतिबन्ध न रखा गया था! लेकिन पीछे चलकर गांधीजीको यह अनुभव हुआ कि लड़के और लड़कियोंका एक संग मिलकर पढ़ना और स्वच्छन्दपरूसे मिलना जुलना अच्छा नहीं है, क्योंकि इससे चरित्र गिरनेका डर रहता है।[2] अतः बादमें लड़कियोंके लिए अलग स्कूलकी व्यवस्था कर दी गई!

---

1. Ibid, pp. 371-374
2. Satyagraha In South Africa, pp. 363.

आश्रम के जीवनमें, चरित्रको शुद्ध और निर्मल बनानेके लिए सादगीको पूरी तरहसे अपना लिया गया! आश्रमके सारे निवासी अपनेको गरीब मज़दूर और जनसेवकसे बढ़कर न समझते थे! इस आदर्शके अनुकूल उन्होंने अपनी पोशाक भी बदल डाली थी। वैसे आम तौरसे पहिले सभी सत्याग्रही यूरोपियन पोशाक पहिना करते थे, किन्तु अब वे 'मज़दूरों'की मामूली पोशाकसे ही अपना काम चलाने लगे।

इस प्रकार आश्रमका जीवन सादगीसे पूर्ण और राग-द्वेष रहित था! विभिन्न जातिके होते हुए भी आश्रमवासी सब एक मन और प्राण होकर रहते थे! धर्मके नाम पर हिन्दू या मुसलमानोंमें आश्रममें कभी दंगा-फिसाद सुननेमें भी न आता था। सबमें आपसी मेल था, प्रेम था, और सहयोग! सब मेहनतके मधुर फलको खाते और खुश तथा स्वस्थ रहते थे! शारीरिक और मानसिक एवं धार्मिक व्याधियोंसे आश्रमवासी सब प्रकारसे मुक्त थे। सब अपनेको आश्रममें वस्तुतः एक ही कुटुम्ब वा परिवारका महसूस करते थे[1]।

निःसन्देह सत्याग्रहियोंका आश्रम 'टॉल्सटाय फार्म' एक पुण्य केन्द्र था। कोई इस केन्द्रसे जेलकी यात्राके लिए जाता तो कोई जेलसे मुक्त होकर यहाँ विश्राम पानेके लिए लौटता--इस क्रमसे सत्याग्रही फार्ममें नित्य आते और जाते ही रहते थे![2]

सत्याग्रहियोंके इस मेहनत, मजदूरी और प्रेम भरे जीवनका वहाँकी भारतीय जनता पर भी बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ा! चारि-

1. Ibid p. 391.
2. Ibid pp. 305-389.

त्रिक विशुद्धता और सेवाव्रती होनेसे सत्याग्रही लोगोंकी सच्ची सहानुभूति और विश्वासके पात्र बन गये। निःसन्देह यह इस सहानुभूति और विश्वासका ही परिणाम था कि १९१३में गांधीजीके जोर शोरसे सत्याग्रह संग्राम छेड़ने पर जनताने उनको पूरा पूरा सहयोग दिया। इस प्रकार टाल्सटाय फार्म गांधी जीके नेतृत्वमें दक्षिण अफ्रीकाके अन्तिम सत्याग्रह युद्धकी तैयारी एवं संचालनका एक जबर्दस्त केन्द्र साबित हुआ।[1]

गांधीजीके आश्रम और उनके ट्रान्सवालके कार्योंकी प्रशंसा में ७ सितम्बर १९१०के एक पत्रमें टॉल्सटायने गांधीजीको लिखा था–"ट्रान्सवालका, जिसे हम यहाँ दुनियाँके किसी दूरस्थ छोरपर स्थित समझते हैं, तुम्हारा कार्य बहुत ही जरूरी है और संसार में होने वाले आजके सम्पूर्ण कार्योंमें सबसे अधिक प्रमुखता रखता है।"

यूनियन सरकारका झूठा समझौता—

गांधीजीके ट्रान्सवालके सत्याग्रह युद्धके कारण भारतमें भी काफी हलचल पैदा हो गई थी। गांधीजी और उनके यूरोपियन मित्रों (श्री पोलक और रिच) आदिके प्रयत्नोंसे भारतका लोक-मत दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके प्रति काफी जाग्रत भी हो गया था। इस जागृतिके परिणामसे ही २५ फरवरी १९१० को गोखलेने भारतकी व्यवस्थापिका सभामें जब इस आशयका

---

1. Gandhiji, His life And work, Published, Bombay,

2. Oct. 1944. pp. 242-3.

एक प्रस्ताव पेश कियाकि नेटालको 'प्रतिज्ञाबद्ध मजदूरा' (Indentured labour) का भेजना रोक दिया जाय, तो वह सरलतासे स्वीकृत कर लिया गया।

लेकिन भारतकी नैतिक सहानुभूतिसे ही संतुष्ट न होकर गांधीजीकी उत्कट इच्छा हुईकि भारतका कोई नेता और विशेषकर गोखले इस समय दक्षिण अफ्रीका आवें और वहाँकी सही हालत का प्रत्यक्ष अनुभव करनेके बाद, तब जो मदद उनसे प्रवासी भारतीयोंकी बन सके करें। अतः इस विचारके मनमें आते ही गांधीजीने गोखलेको तार द्वारा वहाँ आनेका निमंत्रण भेजा। गोखले तत्कालीन भारतके यद्यपि सर्वमान्य और बहुत बड़े नेता थे, लेकिन गांधी जैसे प्रिय बन्धुका निमंत्रण वे किसी प्रकार टाल न सकते थे। इसलिए निमंत्रण पाते ही वे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गये। २२ अक्तूबरको गोखले केपटाउन में पहुंचे और वहाँ से फिर तुरन्त सत्याग्रहके मध्यस्थान जोहान्सबर्गको चले आये। मार्गमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंने स्थान-स्थानपर अपनी मातृभूमिके इस महान् नेताका सर्वत्र ही खूब शानदार और राजकीय स्वागत किया।

जोहान्सबर्गके बाद गोखले नेटाल गये और वहाँसे फिर वे सरकारके निमन्त्रण पर प्रिटोरिया चले आये। प्रिटोरियामें गोखले यूनियन सरकारके मेहमानके रूपमें ट्रान्सवाल होटलमें ठहराये गये! गोखले यहाँ सत्याग्रहियों और यूनियन सरकारके बीच समझौता करानेके उद्देशसे आये थे। इसलिए पहले गांधीजीसे भारतीयोंके प्रश्नको अच्छी प्रकार समझ-बूझ लेनेके बाद ही वे सरकारके प्रतिनिधि जनरल बोथा आदिसे मिले! लेकिन

चालाक यूनियन सरकारने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और भारतके संबंधको खराब न होने देनेके भयसे भारतीय नेतासे सहजही समझौता कर लिया! जनरल बोथाने गोखलेसे यह वायदा करनेमें कोई हिचक न दिखलाई कि दूसरे ही वर्ष खूनी कानून रद्द कर दिया जायगा, रंग भेद या वर्ण भेदको मिटा दिया जायगा और ३ पौंडका मजदूरों पर का सालाना कर बन्द कर दिया जावेगा!

इस प्रकार सारे मामलेको अनपेक्षित रूपसे तै हुआ देखकर गोखले सचमुच प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्हें वस्तुतः ऐसी आशा न थी, और यही उनकी खुशीका भी कारण था। उन्हें अब अपना दक्षिण अफ्रीका आना बहुत सार्थक प्रतीत हुआ। इस समझौतेसे सबसे बड़ी खुशी तो उन्हें इस बात की थी कि इससे गांधीका दक्षिण अफ्रीका का कार्य अब समाप्त हो जायगा, और वे उन्हें जल्दी ही महासभाके कार्यके लिए भारत बुला सकेंगे। इसीलिये जनरल बोथा आदिसे भेंट करनेके बाद वे जब गांधीजीसे मिले तो उनसे उन्होंने यही कहा कि "उन्हें (गांधी) अब एक वर्षके भीतर भारतको लौट आना चाहिए। सभी बातें तै हो गई हैं।" किन्तु सीधे और सच्चे मार्ग पर चलनेवाले भारतीय नेताको तब यह मालूम न हो सका कि गोरी राजनीति टेढ़ी और बांकी गतिसे भी चला करती है; और यूरोपियन राजनीतिज्ञोंकी कथनी और करनीमें बहुत अन्तर रहा करता है। गोखलेको यह बादमें भारत लौटकर ही मालूम हो सका, यद्यपि गांधीजीको जो अब गोरी राजनीतिसे काफी परिचित हो चुके थे, तभी इस समझौतेकी सच्चाई पर सन्देह हो गया था।[1] किन्तु

1. Satyagraha In south Africa, pp., 407-408

उक्त समझौतेके हो जाने पर विश्वासी गोखले भारतीयोंके प्रति निश्चिंत होकर, १७ नवम्बर सन् १९१२ को दक्षिण अफ्रीकासे भारतको लौट आये।

गोखलेके लौट जानेके पश्चात जैसा कि गांधीजी सन्देह कर रहे थे, यूनियन सरकारने भारतीय नेताको दिये अपने वचनोंको सहसा भुला दिया। जनरल स्मट्सने निर्लज्जता पूर्वक समझौते की एक भी शर्त माननेसे इनकार कर दिया। मजदूरोंसे लिए जानेवाले ३ पौंडके टैक्सके बारेमें उसने कपटपूर्ण लाचारी प्रकट करते हुए व्यवस्थापिका सभामें यह घोषित किया कि चूँकि नेटालके यूरोपियनोंकी राय उक्त टैक्सको हटानेकी नहीं है, इसलिए यूनियन सरकार ऐसे टैक्सको रद नहीं कर सकती। अन्य कानूनोंके बारेमें भी उसने इसी प्रकारकी दलीलें पेशकर उन्हें हटानेसे इनकार कर दिया। किन्तु भारतीय अच्छी तरहसे समझ रहे थे कि स्मट्सकी यह सब चालबाजी है, प्रतारणा है, और विशुद्ध धोखा!

प्रतारणाका फल और सत्याग्रहका विस्तार—

परन्तु स्मट्सकी इस प्रतारणा और धोखेका परिणाम यूनियन सरकारके लिये ही आगे चलकर हानिकारक साबित हुआ; और भारतीयोंको उस (प्रतारणा) से फायदा ही पहुंचा। स्मरण रहे कि गोखलेके साथ हुए समझौतेमें यह शर्त शामिल थी कि मजदूरोंसे सालाना ३ पौंडका जो कर लिया जाता है, वह हटा दिया जायगा! यह टैक्स मजदूरोंसे १८९५ से ही लिया जाता था! परन्तु अब तक उसे किसी तरह 'सत्या-

ग्रह' के कारणोंमें शामिल न किया गया था! किन्तु धोखेसे ही सही, जब एक बार सरकारने इस टैक्सको हटानेका वचन दे डाला और फिर अपने उस दिये वचनसे पीछे हट गये, तो गांधीजी और सत्याग्रह कमिटीने सरकारके इस वचन भंगके लिए 'टैक्स' का मामला भी सत्याग्रहमें शामिलकर दिया! परिणामतः सत्याग्रह युद्धका एक और कारण पैदा होनेसे सत्याग्रहका क्षेत्र भी व्यापक हो चला। क्योंकि वह 'मजदूर वर्ग', जो अबतक सत्याग्रहमें शामिल न हो सका था, ३ पौंडके करके खिलाफ 'जिहाद' लड़नेके लिए 'सत्याग्रह आन्दोलन' में कूदनेको आमंत्रित कर दिया गया! सरकारकी चालबाजीने इस प्रकार मजदूरवर्गमें भी गोरी दुर्नीतिके विरुद्ध प्रतिरोधकी भावना और शक्ति उत्पन्न कर दी।

यूनियन सरकारके इस धोखेकी सूचना गांधीजीने गोखलेको भी भिजवाई, लेकिन साथ ही यह भी कहला दिया कि वे अफ्रीकाके भारतीयोंके प्रति इससे चिन्तित व व्यग्र न हों! गांधीजीने उन्हें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी तरफसे यह विश्वासपूर्ण आश्वासन दिया कि "हम आखिरी दम तक प्राणोंकी बाजी लगाकर ट्रान्सवाल सरकारसे टैक्सको रद्द कराकर ही छोड़ेंगे!"[1]

गांधीजीसे यूनियन सरकारकी प्रतारणका समाचार पाकर गोखलेका दुखी होना स्वाभाविक ही था। उन्हें अब मालूम हुआ कि गोरी राजनीति कितनी झूठी, बांकी और मायावी होती है। अफ्रीकासे वे यही समझकर लौटे थे कि जो समझौता वे कर आये हैं, उससे वहाँकी स्थितिके सुधरनेमें अब कोई देर वा

1. Ibid. p. 416.

झंझट न होगी। इसलिए उनको आशा हो गई थी कि वहांके संघर्षोंसे मुक्ति पाकर उनके प्रिय-बन्धु और योग्य शिष्य गांधी भारतकी सेवाके लिए जल्दी ही मातृभूमिको लौट आवेंगे। किन्तु गोरी प्रतारणाने उनके इस स्वप्नको भंग कर डाला था! अतः आशाके इस प्रकार टूट जानेसे गोखलेका हृदय प्रकृतितः व्यथित हो उठा! इस व्यथाके अलावा उनका हृदय यह सोचकर और भी आशंकित होने लगा कि दक्षिण अफ्रीकाके मुट्ठी भर भारतीय किस प्रकार और कब तक उद्धत यूनियन सरकारके पशुबलका सामना कर सकेंगे।'[1] यूनियन सरकारके अपार पशुबलकी कल्पनासे गोखलेका संत्रस्त होना ठीक ही था, क्योंकि पशुबलके ऊपर सत्याग्रह और आत्मबलिदानकी प्रगल्भता और श्रेष्ठता अभी प्रत्यक्ष होनेको बाकी थी!

1. Ibid. p. 417.

सफल संग्राम

अध्याय १२

फोनिक्स—

सत्याग्रह के लिये अब जोरों से तैयारियां प्रारम्भ करदी गई थीं। पहले सत्याग्रह का केन्द्र 'टॉल्सटाय फार्म' था, लेकिन ३ पौंडके टैक्स को सत्याग्रहके कारणोंमें ले लेनेसे, अब नैटालका मजदूर वर्ग भी सत्याग्रहमें शामिल कर लिया गया था, इसलिए उनकी सुभीताके हेतु गांधी जी ने उक्त फार्म को बन्द कर, नैटाल स्थित 'फोनिक्स'के आश्रम को अब सत्याग्रह का केन्द्र बना दिया! इस केन्द्र-परिवर्तनसे निःसंदेह मजदूरोंके साथ सम्पर्क स्थापित करने और सत्याग्रहके संचालनमें बहुत सुगमता हुई। टॉल्सटाय फार्मके बन्द किये जानेसे उसके रहने वालोंको भी कोई विशेष कष्ट न हुआ, क्योंकि वे सब विशेषतया मूलतः नैटालके ही रहने वाले थे और राजनैतिक झगड़ोंके समाप्त हो जाने पर उन्हें लौटकर नैटालको ही आजाना था!

सत्याग्रहका एक और कारण—

सत्याग्रहकी तैयारियां हो ही रही थीं कि इसी बीच गोरी सरकारके अद्भुत न्यायकी कृपासे सत्याग्रहका एक और कारण आ उपस्थित हुआ। १४ मार्च १९१३ को 'केप सुपरीम कोर्ट'ने

यह फैसला दियाकि वे तमाम शादियाँ, जो ईसाई धर्मानुसार नहीं हुई और रजिस्ट्रार (Registrar of marriages) के द्वारा रजिष्ट्र नहींकी गई हैं—दक्षिण अफ्रीकाके कानूनके अनुसार बैध न समझी जायंगी। इस फैसलेके परिणामसे स्वभावतः, दक्षिण अफ्रीकामें हिन्दु-मुसलमान और जोराष्टर आदि धर्मके अनुसार हुई शादियाँ एकदम अवैध करार दे दी गईं। फलतः दक्षिण अफ्रीकाकी सभी विवाहित भारतीय हिन्दू-मुस्लिम वा पारसी स्त्रियोंका 'पत्नि'का दर्जा ही रद्द हो चला और वे 'रखेलियों'की स्थितिमें वदल दी गईं। अतः इस प्रकार स्थितिके बदल जानेसे इन स्त्रियों की सन्तानें भी अवैध हो गईं, और इसलिए उनका अपने पिताओंकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार न रह गया! गोरे न्यायकी इस विभीषिकाको देखकर भारतीय स्त्री और पुरुष अवाक् रह गये! लेकिन उनके हृदयों पर यह बात पूरी तरहसे गढ़ गई कि यह कानून वास्तवमें उनका मान मर्दनके लिए ही बनाया गया है! तो क्या वे ऐसा होने देगें? इस ख्यालके मस्तिष्कमें रेंगते ही सारे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय क्या हिन्दु और क्या मुसलमान वा पारसी रोष और आक्रोषसे प्रदीप्त हो उठे! निःसन्देह, भारतीय ललनाओं का गोरी सरकारने निर्लज्जतापूर्वक असहनीय अपमान किया था, अतः इसके प्रतिकारके लिए भारतीय पुरुष मरमिटनेके लिए उतावला हो चला! सचमुच अपमान और अनीतिकी यह स्थिती भारतीयोंके लिए असहनीय थी, और उसके प्रतिकारके लिए कुछ भी करनेको उनका बेचैन हो उठना स्वाभाविक था!

इस बेचैनीकी स्थितीमें यदि गांधीजी जैसा नेता भारतीयोंके सिर पर न होता तो संभव था, वे उतावलेपन और रोषमें आकर कुछ ऐसा कर बैठते जो उन्हींके लिए अहितकर हो सकता था ! उतावलेपन, रोष और जल्दी-बाजीमें काम बिगड़ते ही हैं, सुधरा नहीं करते ! अतः शांत-चित्त और प्रकृत पुरुष गांधीने भारतीयोंको शांत कर वैधानिक मार्ग लिया ! उक्त कानूनके संबंधमें उन्होंने पहले यूनियन सरकारको एक विरोध पत्र भेजा ! लेकिन संघर्षप्रिय निरंकुश गोरीशाहीने इस पत्रको ठुकराकर उद्दंडतापूर्वक कुछ भी करने और सुननेसे मुंह मोड़ दिया ! गांधीजीको मालूम हो गया कि सरकारका यह रूख बिना नैतिक और आत्मिक दबावके ठीक नहीं किया जा सकता, और इसलिए उन्हें अब 'स्त्रियों'के अधिकारकी रक्षाके लिए 'सत्याग्रह'का शस्त्र हाथमें ले लेना चाहिये ! फलतः गांधीके निर्देश पर 'सत्याग्रह मंडल'ने स्त्रियोंके अपमानके प्रतिकारके लिए भीषणसे भीषण 'सत्यसंग्राम' या सत्याग्रह करनेका भी निश्चय कर डाला ! वीर सत्याग्राहियोंने यहां तक निश्चिय कर लिया कि वे स्त्रियोंकी प्रतिष्ठामें अपने प्राण तक दे डालेंगे, और उस अपमान जनक कानूनको मिटाकर ही दम लेंगे । [1]

इस प्रकार मजदूरोंके अलावा स्त्रियोंको लेकर सत्याग्रह का एक और कारण पैदा हो जानेके स्वाभाविक परिणामस्वरूप, सत्याग्रहका क्षेत्र और भी विस्तृत तथा व्यापक हो गया !

---

1. Satyagraha In South Africa, pp. 420–421.

स्त्रियां संग्राम में—

उपरोक्त घटनासे पूर्व स्त्रियोंको सत्याग्रह संग्राममें शामिल न होने दिया गया था! लेकिन जब गोरीशाही ने सीधे उनके मान और प्रतिष्ठा पर ही प्रहार कर दिया, तो उसके प्रतिकारके लिए गांधीजी और सत्याग्रह मंडल ने स्त्रियोंको भी सत्याग्रहकी लड़ाई में भाग लेनेके लिए खुली आज्ञा दे दी। स्त्रियाँ इस आह्वानको पाकर खुश हो उठीं! पुरुषों की तरह इस अन्याय के विरुद्ध वे भी प्रतिकारकी भावनासे उत्तेजित हो रही थीं! पर यह सब होते हुए भी गांधीजी पहले यह जान लेना चाहते थे कि स्त्रियोंकी ये भावनायें जोशके क्षणिक उबाल पर तो नहीं आश्रित हैं! क्योंकि गांधीजी हमेशा इस बात पर ध्यान देते आये हैं कि हमारे जो भी कार्य हों, वे अस्थायी भावुकता पर नहीं, हृदयके दृढ़ विश्वास पर आश्रित होने चाहियें! अतः स्त्रियोंके संबंधमें इस बात की थाह लेनेके लिए वे स्वयं उनसे जाकर मिले और स्पष्टरूपसे उन्हें जेलकी भीषण यातनाओं और परेशानियोंसे अवगत कराकर खूब सोच समझ लेनेके बाद ही 'संग्राम' में कूदनेकी सलाह दी। लेकिन जेलके भयंकर चित्र उपस्थित किये जाने पर भी स्त्रियोंके उत्साहमें कोई शिथिलता या कम्पन न पैदा हो सकी! निःसन्देह भारतीय वीर ललनाओंका इतिहास अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादाकी रक्षाके लिए किये गये लोमहर्षक बलिदानोंसे परिपूर्ण है! भारतीय नारी अपने मान और शानकी रक्षामें कभी पीछे नहीं हटी है? उसके 'जौहर' की खूनी और रंगीन कहानियां, उसके त्याग और बलिदान दोनोंकी अमिट और अमर निशानियां हैं! अतः किसी भी प्रकार

का भय-प्रदर्शन या जेलकी यातनाओंका वर्णन दक्षिण अफ्रीका की भारतीय नारियोंके लिए अपनी प्रतिष्ठाके सामने तुच्छ और नगण्य सा लगा ! इसलिए गांधीजीकी शंकाओंको शांत करते हुए उन्होंने समेत स्वरसे निर्भीकता पूर्वक सहर्ष 'सत्याग्रह संग्राम' में कूदने की घोषणा करदी !

संग्राम प्रारम्भ—

स्त्रियोंकी इस घोषणा के साथ सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ कर दिया गया ! इस संग्राममें भाग लेनेवाली अधिकतर स्त्रियां तामिल थीं ! स्त्रियोंका सत्याग्रह परवानोंके अवज्ञा आन्दोलनके ही रूपमें शुरू किया गया ! अतः नेटालके सत्याग्रहियोंकी भांति स्त्री-सत्याग्रहियोंने भी बिना परवानेके नेटालसे ट्रान्सवाल में घुसनेका ऐलान कर दिया ! इस ऐलान या घोषणाके अनुसार ११ सत्याग्रहणियोंका एक जत्था बिना परवानोंके ट्रान्सवालकी सीमाओंमें प्रवेश भी कर गया ! पर सत्याग्रहके इस रूपको देखकर सरकार उत्तेजित होनेक बजाय, ठिठक सी गई ! स्त्रियोंसे झगड़ा मोल लेना उसे प्रत्यक्षतः झंझट मोल लेनेके समान प्रतीत हुआ ! फलतः सरकारने इन बिना परवानेके घुसनेवाली स्त्रियोंके प्रति निष्क्रियता और उदासीनताकी नीति बरतनेमें ही अपना कल्याण समझा !

सत्याग्रहिणियोंने जब सरकारको परवानोंके बारेमें अन्यमनसक देखा तो उन्होंने भी अब दूसरा पैंतरा बदला। उनका लक्ष ही इस समय सरकारको उत्तेजित कर सत्याग्रहके मैदानमें खींच लाना था । अतः स्त्रियोंने परवानोंके द्वन्दको छोड़कर

सरकारके कानूनके विरुद्ध व्यापारका लाइसेन्स (प्रमाणपत्र) प्राप्त किये बिना फेरी लगाकर माल बेचना शुरू कर दिया। लेकिन अवज्ञा पर अवज्ञा होते देखकर भी सरकार अपनी तलवारको म्यानसे न निकाल सकी। सरकार जानती थी कि यदि उसने स्त्रियों पर वार किया तो उससे दक्षिण अफ्रीकामें ही नहीं, भारतमें भी हड़कम्प मच उठेगा। सरकार अपनी अनैतिकताको भी खूब समझती थी और मन ही मन यह महसूस करती थी कि इस सत्याग्रहके लिए उनका अन्यायी कानून ही जिम्मेदार है, न कि उसमें भाग लेने वाली स्त्रियां। अतः इन्हीं सब कारणोंसे सरकार कमजोर पड़ रही थी और स्त्रियों पर कानूनका आघात करने तथा उन्हें जेल भेजनेसे हिचकिचा रही थी। उसकी साफ इच्छा थी कि स्त्रियोंसे जहाँतक हो सके बचकर ही चला जाय।

सरकारकी इस उदासीनताकी नीतिको देखकर सत्याग्रहके सेनापति गांधीजीको भी चिन्ता होने लगी। उन्हें भय हुआ कि यदि सरकार स्त्रियोंके सत्याग्रहके प्रति इसी प्रकार अन्यमनस्क बनी रही तो यह सत्याग्रह ही ठप हो जायगा। अतः सेनापति गांधी भी अब नवीन युक्तिसे काम लेनेकी सोचने लगे। इस अभिप्रायसे वे तुरन्त फोनिक्स पहुँचे और निश्चय किया कि वहांसे सरकारको बिना मालूम कराये चुपचाप सत्याग्रहिणियोंकी एक और सैनिक टुकड़ी ट्रान्सवालकी सीमाका अतिक्रमण करनेके लिए भेज दी जाय।

इस निश्चयपर पहुंचकर गांधीजीने अपना यह इरादा तत्काल फोनिक्सके आश्रमवासी स्त्री और पुरुषोंके सामने ला रखा।

लेकिन स्त्रियोंको उन्होंने इस बार भी पहले जेलकी सम्पूर्ण विभिषिकाओंसे अवगत कराया और तब गंभीरतापूर्वक सोचने-विचारनेके बाद ही उन्हें सत्याग्रही 'सैनिक टुकड़ी'में शामिल होनेका आदेश दिया। पर आश्रमकी ये स्त्रियां भी पुरुषोंसे किसी प्रकार बलिदान और त्यागमें पीछे हटनेवाली न थीं, जो जेलकी विभीषिकासे घबरा उठतीं। वे सबकी सब वीर थीं, निर्भीक थीं, और इसलिए किसी प्रकारकी यातना व कष्टोंका भय उन्हें कर्म-पथपर अग्रसर होनेसे रोक न सकता था। फलतः फोनिक्सकी अनेक स्त्रियां तुरन्त ही आक्रमणकारी सत्याग्रहिणियोंकी टोलीमें भर्ती हो गईं। वीर सत्याग्रहिणियोंकी इस टोलीमें गांधीजीकी पत्नी कस्तूर बा भी एक थीं।

इस सत्याग्रहके बारे गांधीजीका यह निर्देश था कि फोनिक्सके वीर सत्याग्रहणियोंकी टोली जब ट्रान्सवालकी सीमापर आक्रमण करे, तो उसी समय ट्रान्सवालमें सत्याग्रह करनेवाली स्त्रियोंकी टोली भी जो अबतक गिरफ्तार न की गई थी, नैटालकी सीमा को पार करजावे, और तिसपर भी यदि उन्हें पकड़ा न जाय तो वे सीधे कोयलेकी खानोंके केन्द्र न्यूकासिलको चली जावें और वहाँ पर भारतीय मजदूरोंका संगठन कर उन्हें ३ पौंडके टैक्सके विरोधमें हड़ताल करनेके लिए प्रेरित करें!

फलतः गांधीजीके निर्देश और निश्चयोंके अनुसार फोनिक्स से कस्तूरबा समेत १६ प्रतिभाशाली और दृढ़-प्रतिज्ञ सत्याग्रहिणी एवं सत्याग्रहियोंकी एक टोलीने सरकारको सूचित किये बिना ट्रान्सवालकी सीमाओंको लांघ दिया।[1] सत्याग्रही टोलीके इस

1. Ibid p. 427.

अनपेक्षित आक्रमणसे सरकार क्रुद्ध हो उठी और फौरन ही उसने सबको गिरफ्तार कर लिया ! २३ सितम्बर १९१३ को गिरफ्तार सत्याग्रहियों पर बाकायदा मुकदमा भी चला और सबको कठिन परिश्रमके साथ तीन-तीन महीनेकी कैदक सजा सुनाकर मारिज़-बर्ग (Mari Zburg) जेलमें भेज दिया गया ! [1]

यद्यपि इस तरफ तो सरकारने यह कड़ाईसे दिखलाई, लेकिन दूसरी तरफ ट्रान्सवालकी सत्याग्रहिणियोंकी टोलीके प्रति उसने उसी पहली वाली अन्यमनसकतासे काम लिया, और उनके नैटालमें घुस आनेपर भी कोई कारवाई न की ! अतः अपने सैनापति गांधीके निर्देशानुसार ट्रान्सवालसे आई हुई यह टोली मजदूरोंमें काम करनेके लिए सीधे न्यूकासिल जा पहुंची !

हड़ताल हो गई—

न्यूकासलमें पहुंचकर योजनानुसार सत्याग्रहिणियोंने मजदूरों को संगठित करनेका कार्य आरम्भ कर दिया ! उन्होंने सभाएँ करके मजदूरोंको उनकी गिरी हुई अवस्थाके प्रति सजग किया ! मजदूरों पर लादे गये ३ पौंडके कर की व्याख्या करते हुए सत्या-ग्रहिणियोंने उसे सरकारका एक घृणित और अमानुषिक कृत सिद्ध किया ! अत: उन्होंने मजदूरोंको ललकारा कि ऐसे कृत्योंको सहन करना अधर्म है और ऐसे पाप तथा गुलामीका जीवन बितानेसे तो मर जाना ही कहीं अच्छा है ।

स्त्रियोंकी इस ओज भरी ललकारने मजदूरोंकी शिथिल नाड़ियोंमें भी खून संचारित कर दिया ! उन्हें मालूम पड़ा कि

---

1. Ibid. pp. 427-428.

वे पतनकी खाईमें गिरे हुए हैं और स्त्रीयोंके रूपमें उनकी भाग्य लक्ष्मी ही उन्हें ऊपर खींचे लानेको वहाँ आई हैं! अतः इस अवसरको ईश्वरीय प्रदत्त समझकर वे ललनाओंकी ललकार पर करने वा मरनेको प्रस्तुत हो उठे, और ३ पौंडके करके विरोधमें उन्होंने तुरन्त हड़ताल आरम्भ भी कर दी! इस हड़तालने अब सरकारको बुरी तरहसे चौंका दिया। अब तक तो सरकार यह समझ रही थी कि ये स्त्रियाँ हैं-अबला और निर्बल, इसलिए थक-थका कर स्वयं शिथिल पड़ जांयगी; और सारा झगड़ा योंही शांत हो जायगा! लेकिन हड़तालके रूपमें उनका तांडव देखकर अब सरकारको मालूम पड़ा कि ऐसा सोचना उनकी भूल थी। फलतः अपनी भूलको सुधारते हुए सरकारने सत्याग्रहणियोंके जत्थेको तुरन्त गिरफ्तार कर लिया, और फोनिक्सकी टोलीकी भाँति उन्हें भी २१ अक्तूबर १९१३ को तीन-तीन महीनेका सपरिश्रम कारावासकी सजा देकर मारित्ज़-वर्ग जेलमें भेज दिया।[1]

स्त्रियोंकी अनुपम वीरता और त्याग--

स्त्रियोंने निःसन्देह, इस सत्याग्रहमें सच्चे सत्याग्रहियोंके धर्मका पालन करते हुए अपूर्व आत्म बलिदान, त्याग और तपस्याका परिचय दिया। जो सत्य और आग्रहका मार्ग उन्होंने पकड़ा था उसपर वे अन्त तक अग्रसर होकर बढ़ते रहे, चलते रहे। उनके सामने कठिनाईयाँ अनेक आईं लेकिन विचलित होनेका किसीने नाम न लिया। गांधीजीने उनकी इस अद्भुत

1—Ibid p. 429.

वीरताकी सराहना करते हुए उसे 'अवर्णातीत' बतलाया है। इन सत्याग्रहिणियोंके संबंधमें उन्होंने लिखा है--

"इन बहिनोंका आत्मबलिदान अत्यन्त विमल था। वे कानूनी दाँव-पेंचसे अनभिज्ञ थीं और बहुतोंको अपने मातृ-मुल्कका परिचय तक न था--उनके देश प्रेमका एकमात्र आधार 'विश्वास' था। उनमेंसे लगभग सभी अपढ़ थीं और समाचार पत्र तक न पढ़ सकती थीं। लेकिन वे इतना समझती थीं कि भारतीयोंकी प्रतिष्ठा पर विषम आघात किया जा रहा है। उनकी जेल-यात्रा अन्तस्तलसे उठने वाले दर्द और प्रार्थना की एक पुकार थी--आत्म-बलिदानका वह शुचितम स्वरूप था।[1]"

निःसन्देह इस सत्याग्रहमें अनेक स्त्रियोंने घोर कष्ट सहन किया, और वलीयामा जैसी वीर षोडशीने तो सत्याग्रहकी बलि-वेदी पर अपने प्राण भी निछावर कर दिये थे। उसने उल्लासमें भरकर एक बार कहा था--अपनी मातृ-भूमिके लिए मरना कौन न चाहेगा? और जैसा उसने कहा था, उसे पूरा करके भी दिखलाया। देश पर निछावर होनेवाली वलीयामाने सच-मुच अपनी कभी भी चिन्ता न की। देशके सिवा अपना उसके लिए कुछ था ही नहीं। इसीलिए गांधीजीने लिखा है कि वलीयामा जैसी नारी-रत्न दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह संग्राम की एक अपूर्व और पवित्र ज्योति थी, जो इतिहासमें हमेशा अमर रहेगी।

स्त्रियोंको इस अपूर्व वीरताका उस समय श्रीमती पोलकने भी 'इण्डियन ओपिनियन' में बहुत ही सुन्दर और पूर्ण विवरण

1. Ibid pp. 430-432.,

प्रकाशित किया था। श्रीमती पोलकने लिखा था "रस्किनने कहा है—स्त्रियोंके कर्त्तव्य दोहरे होते हैं; एक तो गृहस्तीके प्रति और दूसरा राज्यके प्रति। दक्षिण अफ्रीकाकी शायद ही किसी भारतीय स्त्रीने रस्किनका यह वाक्य पढ़ा हो। परन्तु सत्य बात अनेक स्थानों पर अनेक प्रकारसे स्वतः अपना प्रकाश करती है। दक्षिण अफ्रीकाकी भारतीय स्त्रियोंने भी मानों जान लिया था कि रस्किनका कथन नारी-जीवनका एक सत्य है। उनके कार्य्योंसे भी यह बात प्रमाणित हो गई कि उन्होंने वास्तवमें इस सिद्धान्तके अनुसार ही अपने कर्त्तव्यके गुरुत्वका पूर्ण पालन किया है। उन स्त्रियोंको सार्वजनिक जीवनकी कोई शिक्षा नहीं मिली थी; वे भारतीय स्त्रियोंकी तरह परदेमें रहनेवाली थीं; समाज शास्त्रका वे नाम भी नहीं जानती थीं; वे विशेषतया मजदूरोंकी स्त्रियाँ, माताएं और कन्याएं थीं, पर उनमें धैर्य था और कर्त्तव्य पालन तथा सेवा धर्मको वे अच्छी तरहसे जानती थीं। मौका पड़ने पर देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका उन्होंने पूर्ण पालन किया और ऐसी वीरता एवं दृढ़ताके साथ अपने देशकी सेवाकी, जो केवल उन्हींसे संभव थी।

पाश्चात्य प्रदेशके लोगों का यह ख्याल रहा है कि परदेमें रहनेवाली भारतीय स्त्रियां बिल्कुल अबला होती हैं, उनके विचार भी प्रशस्त नहीं हुआ करते, और सार्वजनिक कार्योंमें तो उनका कोई भी अनुराग वा सम्पर्क नहीं हुआ करता। लेकिन दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय नारी-आन्दोलनने अफ्रीका और यूरोपके गौरांगों की आंखे खोल डालीं। उन्हे आश्चर्य हो रहा था कि जिन्हे वे अबला समझे बैठे थे, वे ही भारतीय स्त्रियां—जिनमेंसे कुछका

गोदमें फूलसे बच्चे थे, कुछ का शीघ्र ही प्रसव होने वाला था, और कुछ बिलकुल युवती थीं, निधड़क और निर्भय होकर घर से निकल-निकल कर सत्याग्रहकी हर प्रकारकी कठिनाइयां सहनेके लिए प्रस्तुत हो उसमें सम्मिलित होती जाती हैं। निःसन्देह यूरोपियनोंके लिए यह एक नया अनुभव था। सत्याग्रहिणियोंकी इस अनपेक्षित वीरतासे खुश होकर उनकी प्रशंसामें गांधीजीने लिखा है—"नेटालसे जो स्त्रियां आई थीं, वे सब प्रतिष्ठित और भले घरोंकी थीं। वे पैदल चलकर वालक्रस्ट तक पहुंची थीं। यहां पर वे पकड़ी गयीं, और सैकड़ोंकी संख्यामें तीन-तीन महीनेकी कड़ी सजा भुगतनेके लिए जेल भेज दी गई थीं। ट्रान्सवालसे आनेवाली स्त्रियां रास्तेमें खानोंसे होती हुई और सभाएँ करती आई थीं। सभाओंमें वे पुरुषों को उपदेश करतीं थीं कि तुम लोग काम करना छोड़ दो और गुलामों की तरह जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना स्वीकार करो। इन स्त्रियोंके कहनेसे हजारों पुरुषों ने हड़ताल कर दी थी। मेरा तो यह विचार है कि यदि आरम्भमें ही ये वीर स्त्रियां इस प्रकार कार्य न करतीं तो जाति और देशकी मर्य्यादा की रक्षाके लिए जो आश्चर्यजनक कार्य हुआ है, वह कदापि न हो सकता'।

हड़ताल और गांधीजी—

अस्तु, जैसा कि ऊपर कह आए हैं, स्त्रियोंके प्रयत्नसे मजदूरोंने हड़ताल शुरू करदी थी, अतः जब स्त्रियां पकड़ली गई तो हड़तालने और भी उग्ररूप धारण कर लिया। इस हड़ताल की खबर तभी तार द्वारा तुरन्त गांधीजी को भी भेज दी गई थी। इस

लिये गांधीजी दौड़े दौड़े फोनिक्स से जल्दी ही हड़तालके केन्द्र नयूयार्क में चले आये थे ।

न्यूकासल पहुंचने पर गांधीजीको बहुत ही विकट स्थितिका सामना करना पड़ा। खानोंमें काम करने वाले मजदूरोंके निजी घर द्वार कुछ न था। वे अपने मालिकोंके बनाये घरोंमें ही रहा करते थे। लेकिन इस समय हड़ताल करदेनेसे उनके गोरे मालिकों ने उन्हें घरोंसे निकाल बाहर कर दिया था ! इन निकाले गये हड़तालियोंकी संख्या दस-पांच भी न थी कि उनका आसानी से इन्तजाम कर लिया जाता ! वे तो हजारोंकी संख्यामें बेघर-बार किये गये थे। अतः गांधीजीके सामने सबसे पहले इन असंख्य हड़तालियोंको सम्हालने का प्रश्न आ खड़ा हुआ ! गांधी जी स्वयं न्यूकासलमें गरीब लेकिन उच्च आदर्शों वाले लजारस नामके एक तामिल ईसाईके यहां टिके हुए थे ! ऐसी स्थितिमें उनके लिए हजारों मजदूर और उनके बीबी बच्चोंके लिए घरका इन्तजाम करना कठिन था !

परन्तु इस कठिनाई के होते हुए भी वे हार मानकर हड़ताल बन्द करनेको तैयार न थे ! मुसीबतों और कठिनाईयोंसे घबड़ा-कर पीछे हटना गांधी के दर्शनमें नहीं है। उन्होंने निश्चय किया कि कठिनाईके सामने झुकने और मुड़नेके बजाय वे कठिनाईको ही मोड़कर और झुका कर चैन लेंगे। और उसका तरीका यही है कि मनुष्य कठिनाईयोंको हंसकर सिर पर उठाकर चलनेको तैयार रहे, न कि उनके नीचे दबकर घुटने टेक देवे ! फलतः गांधी जीने भी यही किया और मकानोंकी कठिनाईमें पड़े हड़तालियों को आदेश दिया कि "यात्रियोंको भांति आसमान और खुली

जमीनका आश्रय लो, और मालिकोंके मकानोंको त्याग दो !"[1]
इस एक जादू भरे आदेशने मकानोंकी सारी समस्याही मानों हल कर डाला; गांधीजीका आदेश मिलते ही सारे मजदूर मालिकोंके मकानोंको तजकर अपने बीबी बच्चों समेत सत्याग्रहके यात्री बनकर खुले आकाशके नीचे चले आए ! इस प्रकार घर द्वार छोड़ कर आनेवाले हड़ताली मजदूरोंकी संख्या लगभग ५ हजार थी। गांधीजीके सामने अब इस अपार सत्याग्रही सेना को खाने पिलानेकी समस्या पेश हुई, पर इसके लिए उन्हें अधिक चिन्ता न उठानी पड़ी क्योंकि वहांके भारतीय व्यापारियोंने खाने पकानेके सब बर्तन और सामान देकर सारी समस्याको हल कर दिया !

परन्तु इतनी सेनाको इस तरह निरंतर ठाली रखकर दूसरे के भोजन और सामान पर कब तक सम्हाल कर रखा जा सकता था ? अतः जरूरी था कि उनके झगड़ोंका जल्दी ही निपटारा कर लिया जावे। इस विचार के अनुसार गांधीजीने अब सामुहिक आन्दोलन चलानेका निश्चय किया। इस आन्दोलनका रूप भी बिना परवानोंके 'सीमा' का अतिक्रमण करना रखा गया। फलतः इस योजनाके अनुसार मजदूरोंकी सत्याग्रही 'शांति सेना' को अब ट्रान्सवालकी सीमामें प्रवेश करना था। न्यूकासलसे ट्रान्सवालकी सीमा लगभग ३६ मील पड़ती थी। पर गांधीजीके पास रेल द्वारा इतनी बड़ी सेनाको वहां पहुंचाने के लिए धन तो था नहीं, इससिए पैदल ही 'अभियान' करनेका निश्चय किया गया।

1. Satyagraha In south Africa. p. 435.

गांधी और कान्फ्रेन्स--

अभियानकी तैयारियां हो रही थीं कि इसी बीच डरबनसे मिलमालिकोंने गांधीजीको अपनी कान्फ्रेन्समें आनेका निमंत्रण भेजा। गांधीजी इस निमंत्रणके बुलावे पर तुरन्त डरबन गये, और उनकी इच्छानुसार मिल मालिकोंसे मिले। किन्तु यह मिलना-जुलना किसी अर्थका न साबित हुआ। उनके साथमें मिल मालिकोंने व्यवहार तक अच्छा न किया। वस्तुतः गरीबोंको अपने मुखका नेवला समझनेवाले गोरे अमीर गांधीजी पर रुष्ट हो रहे थे, क्योंकि वे समझते थे कि हड़ताल कराकर गांधीने उनके आहार पर आघात पहुंचाया है। मजदूरोंको अपने आनन्दका जरिया भर समझनेवाले अमीर वास्तवमें मजदूरोंके निजी सुख और सौख्यको समझनेमें असमर्थ थे। अतः मजदूरोंकी भी माँग हुआ करती हैं, इससे वे बेखबर से थे। उन्हें तो केवल अपने काम और उसके हर्जेका खयाल था। इसलिए उन्होंने चिढ़कर और क्रुद्ध होकर गांधीजीको धमकी दी और आगाह किया कि यदि मजदूर जल्दी ही काम पर न लौटाये गये तो उन्हें भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। लेकिन गांधी कच्ची मिट्टीके न बने थे जो इस धमकीसे तिड़क जाते। उन्होंने मिल मालिकोंकी इस धमकीका शान्त होकर गम्भीर वाणीमें इतना ही उत्तर दिया कि "किसी व्यक्तिका अपने मान और प्रतिष्ठाके खोनेसे बढ़कर और भला क्या नुकसान हो सकता है? मुझे बहुत संतोष है कि मजदूर भी इस तथ्य को पहुंच चुके हैं।"[१] इस अनपेक्षित प्रत्युत्तरको पाकर मिलमालिक सोचमें पड़ गये कि इसका क्या अर्थ हो सकता है; और गान्धी उन्हें इसी चिन्तामें

1. Ibid pp. 443-444.

डूबते-उतराते छोड़कर तुरन्त डरबनसे न्यूकासल लौट आये।

महान अभियान—

न्यूकासलमें मजदूरोंका तांता बढ़ता ही जा रहा था! गांधी जीने वहां पहुंचते ही सबकी एक सभा बुलाकर मिल मालिकोंसे हुई बातचीत और समझौतेके भंग होनेका पूरा ब्योरा उन्हें बतला दिया। इसका जो कुपरिणाम होनेको था, उस पर भी उन्होंने समुचित प्रकाश डाला! अन्तमें उन्होंने मजदूरोंको अपने मानवीय अधिकारोंके लिए तैयार रहनेको अनुप्रेरित किया, लेकिन साथही उन्हें यह भी स्पष्टतया जतला दिया कि अपनी सामर्थ्यको भली-भांति जान और समझ कर ही वे आगेका माग लें। इस लिए गांधीजीने प्रत्येकको कड़ी चेतावनी दी कि जो व्यक्ति अपने को कमजोर पाता हो, कठिनाईयोंको उठानेमें घबराता हो, वह सत्याग्रह प्रारम्भ होनेसे पूर्वही उससे अलग हो जाय! किन्तु मजदूरोंमें एक भी ऐसा न निकला जो जीवनके संघर्षमें पड़नेसे घबरा उठा हो! निःसन्देह गांधीकी वाणीने उनमें आत्मबल और आत्मगौरव जागृत कर मानवोचित साहस पैदा कर दिया था! इसीलिए सत्याग्रहके विराट-रूपका अवलोकन करनेके बादभी वे। दृढ़ और गंभीर बने रहे! वे जरूर गरीब थे और अपढ़ थे, पर 'मुक्ति' के लिए प्यासे हो रहे थे! अतः सभी मजदूरोंने एकरूप होकर दृढ़ संकल्प किया कि वे गुलामीकी जंजीरको हिलाकर और झटका कर ही चैन लेंगे।

ऐसी शक्तिशाली सेनाको पाकर गांधीजीके लिए अब सिवाय कूच करनेके कुछ सोचनेको न रह गया था! फलतः उन्होंने ट्रान्सवालकी सीमाको लांघनेके हेतु २८ अक्तूबर १९१३ का दिन

'अभियान' के लिए घोषित कर दिया ! घोषणाके अनुसार नियत तिथिको गांधीजीके नेतृत्व में मजदूर सत्याग्रहियों की विशाल सैना ट्रान्सवालकी ओर अग्रसर हुई और चार्ल्स टॉउनमें उसने अपना पहला पड़ाव डाला ! मजदूरोंकी सत्याग्रही सैनामें इस समय कुल स्त्री, बच्चे और पुरुषोंको मिलाकर करीब ५ या ६ हजार व्यक्ति थे ! अतः इतने अधिक लोगोंके लिए चार्ल्सटॉउन जैसे छोटेसे नगरमें मकानोंका मिलना कठिन होने से स्त्री और बच्चोंके अलावा बाकी सबको नीले आसमानके तले खुली धरतीमें डेरा लगाना पड़ा ! इस सैनाके अभियान और प्रथम पड़ावके बारेके समाचार गांधीजी के मित्रोंको मालूम हो चुके थे, इसलिये उनके कुछ एक यूरोपियन और भारतीय साथी उन्हें सैनाके इन्तजाम आदिमें मदद पहुंचानेके लिए पहलेसे ही चार्ल्सटॉउन में आ पहुँचे थे।

सत्याग्रही सैनाकी संख्या भी रोज बढ़ती जाती थी, क्योंकि कोयलेकी खानोंसे गिरते पड़ते और रास्तेकी अनेक कठिनाइयोंको झेलते-उठाते मजदूर स्त्री और पुरुषोंका आना जारी ही था ! पर इस प्रवाह और बाह्य हलचलको छोड़कर चारों ओर शांत गंभीरता ही नजर आती थी ! सब मजदूर आनेवाले भविष्यकी प्रतीक्षामें मौन और तल्लीन से थे ! उनकी गंभीर और शांत मुद्रासे ऐसा प्रतीत होता था कि वे किसी धावे पर जानेवाले सैनिक नहीं, वरन् तापसी और तीर्थ यात्री हैं, जो भगवानकी खोजमें विरक्त होकर घरसे निकल पड़े हैं। अतः चार्ल्सटॉउनमें डेरा लगाकर वे शांत-गंभीरताके साथ निर्द्वन्द्व और निर्भय सा होकर पड़े थे ! वे जानते थे कि वे ट्रान्सवाल

सत्याग्रह के सेनापति [दक्षिण अफ्रीका]

[सन् १९१३] [पृष्ठ २७०]

सरकारसे भिड़ने जा रहे हैं, पर तब भी उनके चेहरों पर भय और चिन्ताके कोई लक्षण न दिखाई पड़ते थे ! उनका प्रकाश, उनका उल्लास और उनका पथप्रदर्शक तथा नेता गांधी जब उनके साथमें था, उन्हें भय और चिन्ता ही क्या थी ?

नवम्बर आया ! गांधीजीने सरकारको पुनःचेतावनीके तौरपर एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने लिखा था कि "मजदूर सत्याग्रहियों की सैना ट्रान्सवालमें बसनेके इरादेसे नहीं आ रही है, और उनका अभिप्राय केवल अपने ऊपर होनेवाली अनीतियोंका विरोध करना है। पर यदि सरकार ३ पौंडके करको हटा देवे तो हड़ताल खतम करदी जायगी और मजदूर सैना कामपर लौट आवेगी। लेकिन यदि कर हटानेसे इनकार किया गया तो सत्याग्रहियोंकी 'शांति सैना'—ट्रान्सवालकी सीमाओंका अतिक्रमण कर देगी ! इसलिए सरकार यदि चाहे तो उन्हें चार्ल्सटॉउनमें ही गिरफ्तार कर सकती है।" परन्तु इस पत्रका सरकारने अहंकारमें आकर उत्तर तक देना उचित न समझा ! उसका शायद यह खयाल था कि दीन-हीन मजदूर ताकतवर गोरी शाहीका मुकावला ही क्या कर सकेंगे ? यह तो उन्हें बाद में मालूम हुआ कि भारतके अहिंसक गैरिबाल्डी गांधी [1] और उसकी गरीब किन्तु तापसी 'शांति सैना' अपने आत्मबलसे

[1] गैरिबाल्डी इटलीके स्वातंत्र संग्रामका एक वीर योद्धा और नेता था। नेपोलिटन राजाओंसे उसने इटली को स्वतंत्र करानेमें आश्चर्यजनक कार्य किया था ! १८६० में केवल एक हजार मामूली सैनिक साथियोंको लेकर उसने नेपोलिटन साम्राज्यकी अपार शक्तिका मुकाबला किया, और सफलतापूर्वक उन्हें दो युद्धोंमें हराकर सिसलीसे हट जानेको मजबूर कर दिया !

भालोंके नोक और बन्दुकोंके कुन्दोंको तोड़ मरोड़ सकती है, और अन्यायको सिर झुकानेके लिए मजबूर कर सकती है !

यूरोपियनों का क्रोध—

गांधीजीकी 'शांति सेना' के आक्रमणकी तैयारियां देखकर वोलक्रस्टके यूरोपियनोंका खून खौल उठा। वे क्रोधसे उन्मत्त होकर बढ़-चढ़ के धमकियां देने लगे, और बहकमें यहां तक कह गये कि यदि भारतीयोंने ट्रान्सवालमें घुसनेका सचमुच प्रयास किया तो वे गोलियां चलाकर उन्हें रोकेंगे, पर आगे न बढ़ने देंगे। यूरोपियनोंकी जिस सभामें ये सब उग्रताएँ दिखाई जा रही थीं, उसमें गांधीजीके जरमन मित्र कैलनबक भी मौजूद थे। अतः उन्होंने बहके हुए यूरोपियनोंको सही रास्ते पर लाने की कोशिश करते हुए उन्हें यह समझाना चाहा कि "सत्याग्रही भारतीय-जन वीर पुरुष हैं। वे ट्रान्सवालमें बसनेको नहीं आ रहे हैं, वे तो केवल न्यायके विरुद्ध उनपर लगाये गये ३ पौंडके टैक्सका विरोध करना चाहते हैं। वे तुम्हारी गोलियोंसे डरनेवाले भी नहीं हैं। वे पीछे न हटेंगे--गोलियोंका सामना करते हुए वे आगे बढ़ते ही चलेंगे। इसलिये आपलोग सावधान हों और अत्याचार करनेसे हाथ रोकें।"[1] लेकिन क्या दुर्योधनि वृत्तिके यूरोपियनोंपर इस विदुर-उपदेशका कोई प्रभाव पड़ सका ? अत्याचारी, अन्यायी और निरंकुश सत्तावाले वस्तुतः जबतक अपने पशुबलकी निरर्थकताको प्रत्यक्ष नहीं देखलेते अकड़े ही रहते हैं। कृष्णने दुर्योधनको कितनी बार समझाया—किन्तु क्या वह माना था ?

---

1. Satyagraha In South Africa, pp. 457-59.

जनरल स्मट्सको आखिरी चेतावनी —

जैसा कि कैलनबकने गोरोंकी सभामें उद्घोषित किया था, गांधीजी और उनकी सत्याग्रही सैनापर यूरोपियनोंकी धमकीका कोई असर न हो सका। वे दृढ़ थे और अभियानकी पूरी तैयारी कर चुके थे। यूरोपियनोंकी सभाके दो ही दिन बाद गांधीजीने जनरल स्मट्सके सेक्रेट्री द्वारा उसको फोनसे अन्तिम चेतावनी भिजवाई कि "मैं अभियानके लिए पूरा तैयार हो चुका हूँ। वोलक्रस्टके यूरोपियन क्रोधमें हैं, और संभव है, हमारे प्राणोंके लिए संकट भी उपस्थित करें! आशा है, जनरल भी ऐसी चीजको पसन्द न कर सकेंगे! यदि जनरल ३ पौंडके टैक्सको रद्द करदें तो मैं अभियानको रोक सकता हूँ, मैं कानूनको तोड़नेके हित ही तोड़ना नहीं चाहता, किन्तु उसके लिए मजबूर किया जा रहा हूँ।" किन्तु सद्भावनाओंसे पूर्ण इन बातोंको तुच्छ समझकर यूनियन सरकारका सेक्रेट्री तक सुननेको तैयार न था। इसलिए उसने उक्त संदेशको स्मट्स तक पहुंचाये बिना स्वयं ही गांधीजीको यह रूखा और अहंकारपूर्ण उत्तर भेजा कि 'जनरल स्मट्स तुमसे कुछ वास्ता नहीं रखना चाहते, इसलिए तुम्हें जो करना हो करो[१]।"

अभियान आरम्भ—

उक्त सौजन्य रहित उत्तर गांधीजीको ५ नवम्बर १९१३ को प्राप्त हुआ था! यह उत्तर स्पष्टतः यूनियन सरकारकी तरफसे

---

1. Ibid. p. 456.

भारतीयोंको एक चुनौती थी, जिसका स्पष्ट मतलब था कि बिना युद्ध लड़े सरकार कोई बात सुननेको तैयार नहीं है ! अतः गांधी जो इस चुनौतीके लिए पहले ही से तैयार थे, युद्ध लड़नेके लिए प्रस्तुत हो गये ! पर सरकार और भारतीयोंके बीचका यह युद्ध एक प्रेक्षकके लिए प्रत्यक्षतः देखनेमें हाथी और चींटीके बीचका एक युद्ध था ! इस युद्धमें एक तरफ रौद्र और प्रबल गोरी सात्त थी, दूसरी तरफ निरीह और निहत्थी जनता ! संक्षेपमें यह हिंसा और अहिंसाकी एक ऐसी अनोखी लड़ाई थी, जैसी दुनियाने पहले कभी न देखी होगी ! अतः संसारकी आँखें गांधी और यूनियन सरकारके इस असामान्य संघर्षकी ओर आकृष्ट होकर उसके परिणामको देखनेके लिए उत्सुक हो उठीं !

युद्ध निश्चित हो जानेसे ६ नवम्बर १९१३ को प्रातः ६ बजकर ३० मिनटपर ईश्वरकी वन्दनाके साथ गांधीजीने अपनी 'शांति सैना' को, जिसमें २,०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे, लेकर ट्रान्सवालकी ओर कूच कर दिया ! दिनभर चलनेके पश्चात् संध्याको ५ बजे यह शांति सैना पल्मफोर्ड (Palmford) पहुंची ! योजनानुसार यह उनका पहला पड़ाव था ! अतः रातको सारी सैनाने वहीं पर विश्राम किया ।

गांधीजीकी पहली गिरफ्तारी —

रातको जब सारी सैना खा-पीकर निश्चिंत होकर सो रही थी, एक यूरोपियन पुलिस अफसर चोरकी भांति दबे पांव पड़ावमें आया और चुपकेसे गांधीजीको अलग बुलाकर उसने उन्हें गिरफ्तारीकी सूचना दी ! इस सूचनाके पाते ही सैनाका

नेतृत्व अपने साथी श्री. पी. के. नायडूके हाथोंमें सौंपकर गांधीजी गड़बड़ी फैलनेके भयसे बिना अपनी सैनाको खबर किये चुप-चाप पुलिस अफसरके साथ हो लिए। बेचारी 'शांतिसैना' इस समय निश्चिन्त होकर सो रही थी, इसलिए उसे सुबहसे पूर्व इस दुर्घटनाका पता भी न चल सका। सुबह जब सैनाको अपने नेताके छीने जानेका समाचार मिला तो उनके दुःखका ठिकाना न था।

इधर गांधीजी गिरफ्तार होनेके बाद ७ नवम्बरको वोलक्रस्ट की अदालतमें पेश किये गये। लेकिन अदालतने तुरन्त कोई काररवाई करनेके बजाय १४ ता० तकके लिए मुकदमा मुल्तवी कर दिया। इसपर गांधीजीने फिरसे मुकदमा पेश होनेके समय तकके लिए जमानत पर रिहाईकी अर्जी पेश करदी। अदालतने इस अर्जीको स्वीकार किया और ५० पौंडकी जमानत लेकर उन्हें रिहा कर दिया।

दूसरी गिरफ्तारी—

अदालतसे छूटते ही गांधीजी पुनः तुरन्त शांतिसैना में आ मिले। उनके इस आकस्मिक पुनर्मिलनसे अपने नेताके छिन जानेसे सैनिकोंके हृदयपर जो उदासी छा गयी थी, प्रफुल्लतामें विलीन हो गई। अपने नेताको अपने बीचमें देखकर सबके हृदय तरंगित हो उठे, और शिथिल हुआ जोशने फिर बल पकड़ लिया। इस प्रकार उमंगित और तरंगित होकर शांति सैनाका अभियान और तेजीसे आगे बढ़ने लगा। सैनाके इस द्रुत अभियानसे सरकार चिन्तित हो उठी। इस प्रगतिके तल पर

सरकारको स्पष्टतः गांधीजी की छाया दिखाई दी, और इसलिये उनका मुक्त रहना उसे बहुत ही खतरनाक मालूम दिया। फलतः घबड़ायी हुई सरकारने ८ नवम्बरको ही (गांधीजीको रिहा हुए अभी मुश्किलसे एक ही दिन हुआ था) स्टैनडूटन (Standerton) में गांधीजीको दुबारा गिरफ्तार कर अदालतके सामने ला खड़ा किया। लेकिन अदालतने इस बार भी उनका मामला २१ ता० तकके लिये मुल्तबी कर दिया, और ५० पौंडकी जमानत पर वे पुनः रिहा कर दिये गये। रिहा होनेपर गांधीजी पहलेकी भाँति तुरन्त फिर सत्याग्रही सैनामें आ मिले। पर इसी समय क्रुद्ध सरकारने श्री. पी. के. नायडू सहित गांधीजीके ५ अन्य साथियों और सहयोगियोंको गिरफ्तार कर जेलमें ठूँस दिया। सरकारके इस कृत्यसे स्पष्ट हो गया कि अब वह पूरी तरहसे उत्तेजित और चिन्तित हो उठी है और जिस किसी प्रकारसे शांति सैनाके बढ़ावको रोकनेके लिए उतावली हो चली है।

तीसरी गिरफ्तारी—

लेकिन सरकारके प्रहारोंकी परवाह न कर शांति सैना गांधीजीके साथ निर्बाध गतिसे आगे बढ़ती ही जाती थी। ९ नवम्बरको गांधीजी और उनकी सैना टीकवर्थमें आ पहुंची। यहाँपर गांधीजीके अंग्रेज मित्र पोलक भी उनसे आ मिले। गांधीजीकी इच्छा हुईकि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति और उनके आन्दोलन पर प्रकाश डालनेके लिए तुरन्त ही पोलकको भारत भेजें, परन्तु परिस्थिति वश ऐसा न किया जा सका। दुर्भाग्यसे
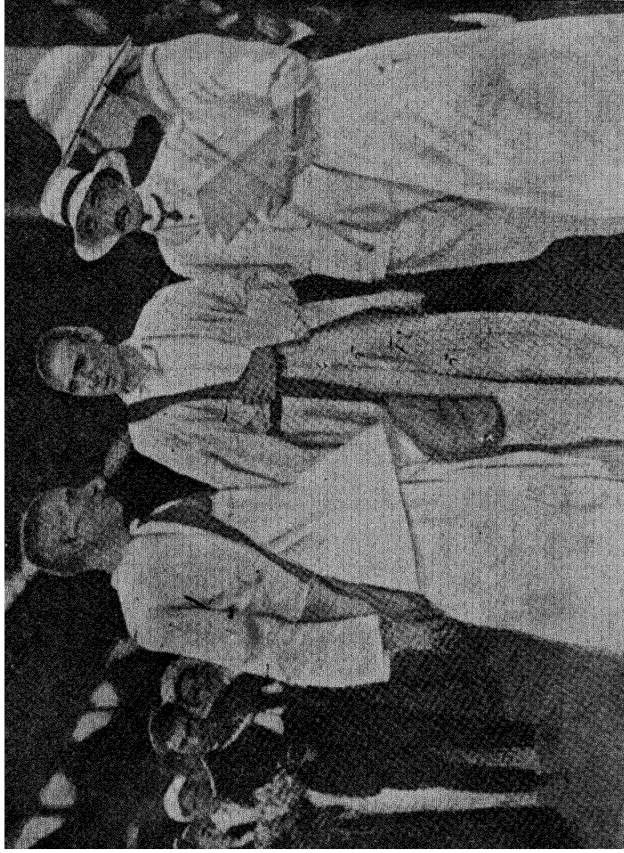
[सन् १९१४] दक्षिण अफ्रीका के अन्तिम सत्याग्रह युद्ध में [पृष्ठ २७६]
गांधीजी के साथ श्री कॅलनबॅक. श्रीमती पोलक आदि

गांधीजी तीसरी बार उसी दिन, जब उनकी पोलकसे भेंट हुई थी, गिरफ्तार कर लिये गये। इस स्थितिके उत्पन्न हो जानेसे शांति सैनाके संचालन और नेतृत्वका भार पोलकके सिरपर चला आया, और इसलिये उन्हें तत्काल भारत जानेका विचार छोड़ देना पड़ा।

गांधीजीको सजा —

गांधीजी इस बार डन्डो (Dundee) के वारन्ट पर गिरफ्तार किये गये थे। अतः गिरफ्तार होने पर वे डन्डी ले जाये गये, और ११ नवम्बरको वहाँकी अदालतमें उनपर मुकदमा भी पेश हो गया। गांधीजी पर सरकार द्वारा यह जुर्म लगाया गया था कि उन्होंने मजदूरोंको नैटाल छोड़नेके लिए उकसाया है। डन्डीकी अदालतने सरकारके इस दावेको स्वीकार किया, और बिना कुछ अधिक सोचे विचारे गांधीजीको ९ महीनेका सपरिश्रम कारावास दंड देकर सींकचोंमें डाल दिया। सरकार यह देखकर खुश हो उठी कि आँधीका सूत्राधार गांधी कठघरेमें फँस गया है, और इसलिये अब आंधीका वेग थम जायगा। लेकिन सरकार भूलमें थी। आँधी तो चल चुकी थी, और अब गांधीको बन्द कर उसके रोकनेका प्रयास निष्फल था।

गांधीके पकड़े जाने और कैद होनेके बाद भी शांति सेनाका बढ़ाव पूर्ववत् नियमित रूपसे जारी रहा। १० ता० नवम्बरको शांति सेना पोलकके नेतृत्वमें अग्रसर होती हुई टीकवर्थसे सुबहको ग्रेनलिन्गस्टाड (Greylingstad) होती हुए बलफोर (BalFour) में आ पहुंची! इस बढ़ावसे सरकार बहुत ही व्यग्र

हो उठी ! वह किसी भी हालतमें अब इस सैनाको और आगे न सरकने देना चाहती थी ! अतः मजदूरोंकी सैनाको गिरफ्तार करनेके लिए सरकारने पहले ही से इमीग्रेशन आफीसर चीमनीको पुलिस-दलके साथ बलफोर भेज रखा था ! साथ ही सरकारने गिरफ्तार मजदूरोंको नैटाल वापिस ले जानेके लिए तीन स्पेशल गाड़ियां भी स्टेशन पर तैनात कर रखी थीं ! अतः मजदूर सैना ज्योंही बलफोर पहुंची, पुलिस उन्हें गिरफ्तार करनेके लिए आगे बढ़ी। लेकिन पुलिसकी इस काररवाईसे मजदूर सत्याग्रहियोंकी प्राकृतिक शांतिको तजकर उग्र हो उठे ! उन्होंने स्पष्ट रूपसे यह जतला दिया कि जब तक गांधी स्वयं वहां आकर उन्हें अनुमति न देंगे, वे गिरफ्तार न होंगे ! सरकारी अफसर सत्याग्रहियोंके साथ किसी प्रकारके संघर्षकी आशंका न कर अपने साथ बहुत कम पुलिस लेकर आये थे। अतः स्थिति उग्र हो जानेसे वे बड़ी कठिनाईमें आ पड़े ! किन्तु अफसरोंको अधिक देर तक यह परेशानी न उठानी पड़ी, क्योंकि मजदूर सैनाके नेता पोलक और कच्छलिया सेठने अन्तमें मजदूरोंको सत्याग्रहियोंके आदर्श और कर्त्तव्य पर चलते हुए गिरफ्तार होने और जेल जाने के लिए तैयार कर लिया ! फलतः सरकारी अफसरोंको अब मजदूरोंके साथ कोई कठिनाई न उठानी पड़ी, और सरलतासे सारी शांति सैनाको गिरफ्तार कर वे नैटाल ले चले। सैनाके इस प्रकार गिरफ्तार होनेके कुछ ही समय बाद सरकारने गांधीजीके परम भक्त और सहयोगी श्री पोलक तथा कैलन बकको भी गिरफ्तार कर वोलक्रस्ट जेलमें डाल दिया।

तीनों साथी एक साथ--

डन्डीके मामलेके बाद सरकारने गांधीजी पर इस बातका लेकर कि उन्होंने अनधिकारी व्यक्तियोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेमें सहयोग दिया है, एक और मामला खड़ा कर दिया! अतः इस मामलेको लेकर सरकारने उनपर वोलक्रस्टकी अदालतमें एक और मुकदमा दायर किया! फलतः डन्डीके मुकदमेके दो दिन बाद ही १३ ता० को गांधीजी वोलक्रस्ट ले जाये गये, और १४ ता० को मुकदमेकी सुनवाईके लिए उन्हें वहां की अदालतमें हाजिर किया गया। सरकारकी मन्शाके अनुसार सरकारकी इस अदालतने गांधीजी पर आरोपित अपराधको सही स्वीकार कर उन्हें तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा दे डाली।

गांधीजीके अनन्य साथी कैलेनबक और पोलक पर भी १५ और १७ नवम्बरको इसी अदालत में हड़तालियोंको मदद पहुंचानेके अपराधमें मुकदमा चला और इन दोनों को भी तीन-तीन महीनेकी सख्त कैदकी सजा दे दी गयी।

इस प्रकार तीनों साथी बन्दी हुए और तीनों एक ही साथ वोलक्रस्ट जेलमें रखे गये। किन्तु सरकार तीनों मित्रोंका अधिक दिनों तक एक साथ रहना बरदास्त न कर सकी, और इसलिए जल्दी ही तीनोंको तीन अलग जेलोंमें कर दिया गया। गांधीजी को औरंजियाकी जेलमें रखा गया; कैलनबक प्रिटोरिया जेल भेजे गये, और पोलक जरम्सिटन जेलमें डाल दिये गये![1]

---

1 1.Ibid pp. 473-474.

मजदूर सत्याग्रहियों पर अमानुषिक अत्याचार--

गांधीजी आदि नेताओंको जेलमें ठूंसनेके बाद निश्चिन्त होकर सरकार मजदूरोंके साथ मनमानासा बर्ताव करने लगी। मजदूरोंको बलफोरमें गिरफ्तार करनेके बाद उन्हें घसीट कर नैटाल ले जाया गया, और वहाँपर खानोंके केन्द्रमें उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया। यहाँ पर उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया गया जैसा प्राचीन समयमें रोममें गुलामोंके साथ किया जाता था। सरकार हर किसी तरहसे मजदूरोंको खानोंपर काम करनेके लिए मजबूर करना चाहती थी। लेकिन बीर सत्याग्रही मजदूरोंने काम करनेके लिए हाथ उठानेसे साफ इन्कार कर दिया था। वे अब जागरूक हो चुके थे, इसलिए गुलाम बनकर जीवन-यापन करनेको कतई तैयार न थे। परिणामतः इस असहयोगसे खीजकर सरकारने उनको अनेक अमानुषिक तरीकोंसे पीड़ित करना शुरू कर दिया। उन बेचारे निहत्थे मजदूरोंकी पीठपर कोड़े बरसाये गये, उन्हें जितनी कठोरतासे हो सका पीटा और मारा गया, और आत्मिक-यन्त्रणा पहुंचानेके लिए उन्हें भद्दीसे भद्दी गालियां भी दी गयीं। किन्तु इन सब अत्याचारों और पीड़ाओं-को वीर 'शांतिसेना' शांतिके साथ बरदाश्त करती चली गयी। निःसन्देह गांधीजीके सत्याग्रहके सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तको वे हृदयंगमकर चुके थे, और इस बातको पूरी तरहसे समझते थे कि उनका कल्याण सब कुछ 'सहने' में ही है। और सचमुच मजदूरोंकी यह सहनशीलता बड़ी ही प्रभावोत्पादक साबित हुई। नेटालके उत्तरी और दक्षिणी किनारोंकी खानोंमें काम करनेवाले भारतीय मजदूर, जो अभी तक सत्याग्रहमें शामिल न हुए थे,

अपने न्यूकासलके निरीह और शांत मजदूर भाइयोंपर ऐसा अत्याचार होता देख बिगड़ उठे और फौरन काम बन्दकर नृशंस सरकारके विरुद्ध सत्याग्रहमें कूद पड़े।

मजदूरोंकी इस बढ़ती हुई धृष्टताको देखकर सरकार अब और भी आग बनकर भभक उठी। मजदूर सत्याग्रहियोंको दबाने और बलपूर्वक उन्हें काम पर लगानेके लिए सरकारने अब सशस्त्र घुड़सवार पुलिससे काम लिया, लेकिन इससे भी कोई फल न निकला। फौज और पुलिससे जरा भी चिन्तितन होकर सत्याग्रही अपने असहयोग पर डटे ही रहे और अड़े ही रहे।

सरकारने क्रोधसे उन्मत्त होकर तब गोलियाँ चलवायीं; लेकिन 'गोलियाँ' भी सत्याग्रहियोंको झुकानेमें असमर्थ साबित हुईं। क्योंकि मरनेका उन्हें भय ही न रह गया था, और झुकनेके लिए वे तैयार न थे। पर सरकारका अत्याचार तब भी रुकनेका नाम न लेता था।

भारत में प्रतिध्वनि--

गोरीशाहीके इन अत्याचारोंकी प्रतिध्वनि भारत भी पहुंची। गोखले भारतीय मजदूरों पर होनेवाले इन अत्याचारोंकी दारुण कथाओंको सुन सुनकर क्षुब्ध हो उठे। उनके साथ संपूर्ण भारत भी रोष और पीड़ासे कराह उठा। फलतः भारतमें सर्वत्र सभा-सोसाइटियों और समाचार पत्रोंमें गोरे अत्याचारोंकी निन्दा और भर्त्सनाकी जाने लगी। हिन्दुस्तानके तत्कालीन वाइसराय हार्डिंज तकका खून गोरोंके उक्त अत्याचारोंकी कहानी सुनकर खौल उठा। १९१३ दिसम्बरको क्रुद्ध वाइसराय

ने मद्रासकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए दक्षिण अफ्रीकाके सरकारकी कड़ी आलोचनाकी और मजदूरों पर होनेवाले अत्याचारों पर क्षोभ तथा क्रोध प्रकट किया। निःसन्देह भारतकी इस प्रतिक्रियाका दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आन्दोलन पर बहुत ही अच्छा असर पड़ा, और दूसरी तरफ गोरी सरकारकी अनीतिका भी सारी दुनियामें भंडा-फोड़ होगया।

भारतीयोंकी दृढ़ता और सरकारका झुकना--

इधर गोरी सरकार जितना बढ़कर और तीव्र होकर अत्याचार करती जाती थी भारतीय मजदूर सत्याग्रही भी उतनी ही दृढ़ता और शक्तिके साथ उनका सामना करते जाते थे! न्यूकासलमें सरकारने जो आग भड़काई थी, उसकी चिनगारियोंसे अब फोनिक्स भी भभक उठा था! फोनिक्स नैटालके उत्तरी तट के खानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंका केन्द्र था! पर सरकार इस समय चौकन्नी हो रही थी, इसलिए फोनिक्सके उठते हुए विप्लव पर प्रारम्भमें ही उसकी क्रोधित निगाहें जा पड़ीं, और उसने चुन-चुन कर वहाँके तमाम नेताओंको तुरन्त गिरफ्तार कर लिया! अपनी घबराहट और उत्तेजनामें सरकार अपराधी और गैर अपराधीका अंतर तक भुला चुका थी, और इसलिए बिना किसी कारणके उसने इण्डियन ओपीनियनके अंगरेजी भागके सम्पादक वेस्टको भी गिरफ्तार कर जेलमें डाल दिया। इन सब नेताओंके गिरफ्तार हो जानेसे सत्याग्रहियोंको सहायता पहुंचाने और मार्ग बतानेके लिए अब कोई भी नेता बाहर न रह गया था! और इस इच्छासे ही सरकारने नेताओंको सीकचोंमें डाला भी था। पर नेताओंसे विलग होकर अकेले पड़ जाने पर भी जागरूक

मजदूर निडर होकर अडिग बने रहे। वे किसी भी हालतमें सरकारकी कदम बोशीके लिए झुकनेको तैयार न थे। सरकार यह देख सोचमें पड़ गई। उसे सूझ ही नहीं पड़ रहा था कि क्या करे, क्या न करे? वह अब महसूस करने लगी थी कि शस्त्रोंके प्रहार इन निहत्थोंकी पीठ पर जैसे बेअसर हो जाते हैं।

भारतकी निगाहें भी इस समय दक्षिण अफ्रीका पर लगी हुई थीं! अतः वहाँके अत्याचारोंकी खबरसे चिन्तित होकर गोखलेने सी. एफ ऐन्ड्रूजको तुरन्त दक्षिण अफ्रीका जाकर सत्याग्रहियोंको सहायता पहुंचानेका आग्रह किया। भारतके दीनजनोंके बन्धु ऐन्ड्रूजने बड़ी प्रसन्नताके साथ इस पुनीत कार्यका भार अपने ऊपर लिया और तुरन्त अपने मित्र पिटर्सन के साथ दक्षिण अफ्रीकाके लिए चल पड़े।

लेकिन इसी बीच सरकार भी अपने दमन और अत्याचारोंसे खुद ही थक कर और परेशान होकर समझौताकी राह ढूँढ़ने लगी थी। अतः भारतीयोंको शांत करनेके लिए जनरल स्मट्सने भारतीय मामलेकी जाँचके लिए तुरन्त एक कमीशन नियुक्त कर दिया था। इस कमीशनके सदस्य तीन यूरोपियन थे। समझौतेके लिए जमीन तैयार करनेको चतुर सरकारने गांधीजी और उनके साथी—कैलन बंक तथा पोलकको १८ दिसम्बर १९१३ को बिना शर्त रिहा भी कर दिया। इनके बाद शीघ्र ही वेस्ट भी छोड़ दिये गये।

जेलसे छूटते ही गांधीजी तथा उनके साथी डरबन आये। यहांसे तुरन्त २१ दिसम्बर १९१३ को गांधीजीने स्मट्सको

एक जोरदार पत्र लिखा जिसमें उन्होंने मांग की थी कि कमीशनमें किसी भारतीय विरोधी यूरोपियनको न रखा जाय; कमसे कम एक भारतीय कमीशनका सदस्य हो; सब सत्याग्रही कैदी तुरन्त रिहा कर दिये जायँ; और यदि मजदूरों पर हुए अत्याचारोंके संबंधमें हमसे गवाही लेनी हो तो हमें खानों व कारखानोंके केन्द्रमें जाने दिया जाय। इस पत्रमें गांधीजीने यह भी साथही साथ घोषित कर दिया था कि अगर उनकी ये शर्तें स्वीकार न की गईं तो वे फिरसे सत्याग्रह शुरू कर देंगे।

किन्तु सरकार अभी भी ऐंठी हुई थी। २४ ता० दिसम्बरको सरकारके अध्यक्ष जनरल स्मट्सका गांधीजीको रूखासा उत्तर मिला कि कमीशनमें उनकी शर्तपर सदस्य नियुक्त नहीं किया जा सकता। फलतः गांधीजीने अपनी पूर्व घोषणाके अनुसार एक जनवरी १९१४ से पुनः सत्याग्रह करनेका ऐलान कर दिया।

इसी समय ऐन्ड्रूज़ भी डरबन आ पहुंचे। दोनों मित्रोंकी यह प्रथम मुलाकात थी। इधर घटना चक्र भी बदलता जा रहा था। दक्षिण अफ्रीकाकी यूनियन रेलवेके यूरोपियन कार्यकर्त्ताओंने यकायक हड़ताल बोल दी थी। अतः गांधीजीके कुछ भारतीय मित्रोंने उन्हें इस अवसरका फायदा उठाकर तुरन्त सत्याग्रह शुरू कर देनेकी राय दी। किन्तु गांधीजी किसीकी मुसीबतों पर पनपनेवालोंमें से नहीं हैं, उनके सत्याग्रहके सिद्धान्तमें दूसरे की मूसीबतोंसे अपना फायदा उठाना बिलकुल अमान्य और वर्जित है। फलतः गांधीजीने अपने मित्रोंकी इस पापपूर्ण आकांक्षाको दबाते हुए स्पष्ट घोषित कर दिया कि यदि सत्याग्रहकी आवश्यकता हुई तो रेलवे हड़तालके खतम होनेपर ही उसे छेड़ा

जा सकेगा। गांधीजीकी इस निर्मल घोषणा और अशत्रु भाव को देखकर प्रतिशोधी और प्रतिहिंसक संसार चकित हो उठा। शत्रुपर दया वा करुणा करनेका यह अद्भुत व्यापार निःसन्देह दुनियाके लिये नया सा था। अतः गांधीके शत्रु भी उनकी इस व्यापक करुणासे पिघल कर द्रवित हो उठे; तथा कठोर और गोरी सरकार भी भारतीयोंके इस अपूर्व बलिदान और त्यागसे प्रभावित हुए बिना न रह सकी। सत्याग्रहकी यह महत्वपूर्ण विजय थी। गांधीने अन्ततः—सरकारके हृदयको अपने स्नेहकी आंचसे नरम कर दिया था।

सरकारको विपद्ग्रस्त पाकर गांधीजी भी अब यह चाहने लगे थे कि अच्छा हो यदि किसी तरह भारतीयों और सरकारके बीच शांतिपूर्वक समझौता हो जाय। अतः उन्होंने स्मट्ससे मिलनेके लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा। यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और तदनुसार गांधी अपने मित्र एन्ड्रूजको लेकर स्मट्ससे मिलने प्रिटोरिया पहुंचे। यद्यपि इस बार स्मट्स बड़ी जल्दीसे मिलनेको तय्यार हो गये थे, लेकिन ये वे ही स्मट्स थे जिन्होंने 'अभियान' के प्रारम्भमें भारतीय नेताकी कोई बात तक सुननेसे इन्कार कर दिया था। तो क्या अब स्मट्सका हृदय बदल गया था? ऐसा समझना गलत होगा। उसका हृदय भीतरसे वस्तुतः पूर्वकी भाँति ही दुरंगा और कुचाली बना रहा, जैसा कि उसके समझौतेके बादके और आजके कारनामोंसे प्रत्यक्ष ही है। वह इस समय असलमें सत्याग्रहियोंके पौरुषको दबानेमें असमर्थ हो उठा था, और इसीलिए भय और नीति वश समझौतेके लिए तैयार हुआ था, बदला कदापि नहीं।

अस्तु जिस किसी तरहसे इस बार गांधीजी और जनरल स्मट्स मिले और उनमें बहुत-सा पत्रव्यवहार भी चला! गांधी-जीने अन्तमें स्मट्सके सामने निम्न शर्तें पेश कीं,—भारतीयोंसे उनके मामलेमें सलाह ली जायेगी, कमीशनके काममें भारतीय रोड़ा न अटकायेंगे, सत्याग्रह स्थगित कर दिया जावेगा और सत्याग्रही कैदी रिहा होंगे; ३ पौंड का टैक्स हटा दिया जावेगा; हिन्दू और मुस्लिम तथा पारसी धर्मके नियमानुसार हुए व्याह कानूनन् करार दिये जायेंगे; शिक्षित भारतीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश दिया जायगा आदि।

इन शर्तोंके उत्तरमें स्मट्सने गांधीजीको सूचित किया कि सत्याग्रही कैदी तो रिहा कर दिये जा चुके हैं; और बाकी का फैसला 'कमीशन की रिपोर्ट' आने पर कर दिया जायगा। गांधीजी इस उत्तरसे संतुष्ट हो गये और फलतः कमीशनकी रिपोर्ट तैयार होने तकके लिए उन्होंने सरकारके साथ एक अस्थायी समझौता कर लिया। इस समझौतेके करानेमें एन्ड्रूजने गांधी और स्मट्सके बीच एक मध्यस्थ और साक्षीका काम किया था।[1] लार्ड हार्डिंजने भी इस अवसर पर भारतीयों और यूनियन सर-कारके बीच समझौता करानेमें सहयोग देनेके लिए भारत सर-कारकी तरफ़से वेनजमिन रॉबर्टसनको दक्षिण अफ्रिका भेजा था। अतः रॉबर्टसन भी इस समय प्रिटोरियामें मौजूद थे!

उक्त कमीशनकी रिपोर्ट, जिसपर शेप फैसला रोक दिया गया था, जल्दी ही तैयार होकर प्रकाशित कर दी गयी। रिपोर्ट पक्षपात रहित थी, और उसमें भारतीयोंकी उन सब मांगोंको सही और

1. Ibid. pp. 501-502.

उचित बतलाया गया था, जो गांधीजीने स्मट्सके सामने पेशकी थीं। कमीशनने जोरदार शब्दोंमें खूनी कानून, ३ पौंडके टैक्स, और भारतीय विवाह संबंधी कानूनको जिनकी वजहसे सत्याग्रहका भीषण तूफान उठा था, यूनियन सरकारसे रद्द करने की सिफारिश की थी। इसके साथ ही कमीशनने भारतीयोंकी अन्य तमाम छोटी मोटी मांगोंको भी मंजूर करनेकी सलाह दी थी। कमीशनकी इन सिफारिशोंसे भारतीय मामले का शांति दायक हल अब निश्चित सा हो गया था। अतः इस रिपोर्टके निकलने पर ऐन्ड्रूज और बेनजमिन दक्षिण अफ्रीका के भारतीयोंकी चिन्तासे मुक्त होकर अपने निर्दिष्ट स्थानों— क्रमशः इंगलैण्ड और भारतको चल दिये।

कमीशनकी सिफारिशके बाद जैसाकि स्मट्सने वचन दिया था, यूनियन सरकारने भी बिना समय लगाये यूनियन पार्लिमेंट (केप टॉउन) में इंडियन रिलीफ बिल (Indian Relief Bill) पास करके भारतीयोंकी सारी मांगोंको स्वीकार कर लिया। इसके साथही स्मट्सने ३० जून, १९१४ को एक पत्र लिखकर गांधीजीको यह भी आश्वासन दिया कि शासन संबंधी मौजूदा कानूनोंका प्रयोग भी भारतीय हित और अधिकारोंको दृष्टिमें रखकर किया जायेगा।[1]

सफल संग्राम और गांधीजीका भारतको प्रस्थान—

इस प्रकार रिलीफ बिलके पास हो जानेसे सत्याग्रहका वह प्रगल्भ और महान सत्य-संग्राम, जो १९०६ में गांधीजीके विशाल और दृढ़ नेतृत्वमें आरम्भ हुआ था, १९१४ में आकर सफलता-

1. Ibid. pp. 505-506.

पूर्वक समाप्त हो गया। सत्याग्रह—सत्य और अहिंसा, की यह अनुपम और अलौकिक विजय थी। भारतीय सत्याग्रहियों—स्त्री, बच्चे, और पुरुषोंने, अपने आत्मत्याग, आत्म-बलिदान और आत्म-पीड़न द्वारा, अन्ततः पाश्चात्य भौतिकवादी नृशंसता और पशुताको अपनी हार स्वीकार करनेको मजबूर करके ही छोड़ा। अतः इस सत्याग्रहसंग्रामको हम भारतकी आध्यात्मिक संस्कृति और पश्चिमकी भौतिकवादी अथवा रावणीय संस्कृतिके बीचका एक युद्ध भी कह सकते हैं—जिसमें एक ओर भौतिकवादी हिंसा से परिपूर्ण गोरोंकी आसुरी शक्ति थी और दूसरी ओर भारतीयों की आध्यात्ममूलक अहिंसाकी विमल देव शक्ति थी! दूसरे शब्दोंमें यह युद्ध दो परस्पर विरोधी भावनाओं, सिद्धान्तों और संस्कृतियोंके बीचका एक विकट और असामान्य युद्ध था!

निःसन्देह इस युद्धके प्रारम्भमें भौतिकता और पशुबलमें विश्वास करनेवाले संसारने यही सोचा होगा कि निहत्थे और शस्त्र एवं ताकत विहीन भारतीय सत्याग्रही स्मट्सके शस्त्रों और पल्टनोंके सामने क्या टिक सकेंगे; किन्तु उसे (संसार) तब जरूर अमित आश्चर्य हुआ होगा, जब उसने देखा कि आठ वर्षोंके अविरल पीड़न और बलिदानके पश्चात् हिंसा नतमस्तक होकर अहिंसाके सामने घुटने टेके हुए है, और जनरल स्मट्स निहत्थे और दरिद्र भारतीयोंके साथ सम्मानपूर्वक समझौता कर रहे हैं। अतः हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रिकाका यह संग्राम 'सत्य' और 'अहिंसा'की एक अपूर्व और सफल लड़ाई थी।

अस्तु सत्याग्रह संग्रामके इस प्रकार सफलता पूर्वक समाप्त हो

[सन् १९१४] दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय [पृष्ठ २८९.]

जानेसे गांधीजीका दक्षिण अफ्रीकाका कार्य भी अब समाप्त हो चला था! इसलिए अब वहां रुकना आवश्यक न समझ कर गांधीजी भारत लौटनेके लिए तत्पर हो उठे! वे आरम्भ ही से इस अवसरकी ताकमें थे कि कब दक्षिण अफ्रीकाके कार्योंसे छुट्टी मिले और वे मातृभूमिकी सेवाके लिए हिन्दुस्तान लौट जावें। अब उन्हें यह सुअवसर मिला था, इसलिए वे समझौतेके कुछ ही महीने बाद १८ जुलाई १९१४ को इंगलैंडके मार्गसे, क्योंकि उन्हें वहाँ अपने गुरु गोखलेसे भेंट करना था,[1] भारतके लिए रवाना होगये।

उपसंहार——

जिस समय गांधीजी भारतको लौटे, उस समय उनका ख्याल था कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंके अब सारे दुःख-दर्द खतम हो जायेंगे, और यूनियन सरकार भविष्य में, जैसा कि उसके मंत्री स्मट्सने आश्वासन दिया था, भारतीयोंके हितका ख्याल रखकर ही कानूनोंका निर्माण और प्रयोग किया करेगी। किन्तु खेद, ये सब वायदे झूठे और सारहीन निकले। कूटनीतिज्ञ स्मट्सने अपने उन वायदोंको कभी पूरा न किया, और आज भी वह भारतीयोंके विरुद्ध नये-नये कानून और बिल बनाने पर लगा हुआ है। स्मट्सने असलमें उस वक्त जो कुछ किया था, वह सब गांधीजीके भय ही से किया था, इसलिए उनके पीठ फेरते ही भारतीयोंको फिर उसी पुराने तरीकेसे तंग किया जाने लगा; और निर्भय होकर गोरे पुनः दक्षिण अफ्रीकासे भारतीयोंको निकालने के लिए शोर मचाने लगे। १९२१ की इम्पीरियल कान्फरेन्समें ब्रिटिश गवर्नमेंटने तक यूनियन सरकारसे भारतीयोंके नागरिक

[1] गोखले उस वक्त इंगलैण्ड में थे।

हकोंको कबूल करनेकी सिफारिस की, किन्तु रंग-द्वेषी जनरल स्मट्सने भारतीयोंको किसी भी तरह बराबरीका हक देनेसे इनकार कर दिया। बल्कि इसके विपरीत उसकी यूनियन सरकारने उसी साल तीन ऐसे आर्डिनेन्स पास किये, जिनके द्वारा भारतीयोंके व्यापारिक अधिकार बिलकुल घटा दिये गये, म्यूनिस्पल फ्रेन्चाईज छीन लिया गया, और उन्हें यूरोपियन एरियामें बसनेसे कतई रोक दिया गया! १९३२में फिर भारतीयोंके अधिकारोंका अपहरण करनेके लिए मलान ऐक्ट पास हुआ। यह बहुत ही विषाक्त ऐक्ट था, अतः उसकी जगह १९३६ में सरकारने स्वयं कुछ सुधारोंके साथ 'ट्रान्सवाल ऐशियाटिक लंड टिन्योर ऐक्ट' पास किया। इस ऐक्टके अनुसार भारतीयोंको यूरोपियन एरियासे अलग तो किया गया, लेकिन उन्हें अफ्रीकामें बसने और जायदाद बनानेके हक जो मलान ऐक्टमें नहीं दिये गये थे, दे दिये गये! १९३९ में भारतीयोंको और कसकर बांधनेके लिए ट्रान्सवाल लैंड और ट्रेडिंग बिल पास किया गया। १९४३ में पेगिंग ऐक्ट पास हुआ और भारतीयोंके तिजारत, बसने और जमीन लेनेके हकों पर और कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये!

और आज १९४६ में घिटो बिल पास करके जनरल स्मट्सने भारतीयोंके हकोंपर पूर्ण आघात कर दिया है। इस बिलके अनुसार भारतीयोंको यूरोपियनोंसे अलग हिस्सोंमें रहनेको मजबूर किया गया है। रंग-द्वेषका यह नग्नरूप है। इसकी प्रतिक्रियामें भारतीयोंने आज फिर वहाँ 'सत्याग्रह संग्राम' छेड़ रखा है। दूसरी तरफ गोरी फासिस्ट शाही भी भारतीय सत्याग्रहियोंका पूरी तरह कठोरता और भीषणताके साथ

बा और बापू

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते समय—इङ्गलैण्ड में

ान् १९१४]

[पृष्ठ २९०

दमन करती जा रही है। किन्तु भारतको आशा है कि यदि उसकी प्रवासी जनता गांधीजीके सत्य और अहिंसाके मार्गपर युद्धको चलाती रही तो स्मट्सको अन्तमें फिर झुकना पड़ेगा और गोरे आतंकवादको भारतीयोंसे क्षमा माँगनी पड़ेगी।

महात्मा गांधीके शब्दोंमें यह गोरी अत्याचारी राजसत्ता असलमें अपनी पशुता, स्वार्थपरता और रंगके अभिमानमें पड़कर, दक्षिण अफ्रीकामें पाश्चात्य सभ्यता की कब्र खोद रही है। महात्मा गांधीका विश्वास है, जैसा कि उन्होंने पूनाकी प्रार्थना सभामें १० जुलाई १९४६ को कहा था, कि "यदि हमारे लोग दृढ़निष्ठ होकर अन्त तक अहिंसा पर कायम रहे" तो उनका प्रबल पौरुष "पश्चिमी सभ्यता, जिसका सच्चा और नंगा रूप दक्षिण अफ्रीकामें प्रकट हुआ है, के कफन के सन्दूक पर अन्तिम पेरक ठोक देगा।" गांधीजीको यह भी आशा है कि स्मट्स जल्दी ही अपनी इस भूलको मालूम करके कि केवल अत्याचार और दंडके भयसे भारतीयोंको दबाना असम्भव है, उनके साथ सम्मानप्रद समझौता करनेको राजी हो जायगा।

निःसन्देह, सम्पूर्ण प्रजातंत्रवादी संसारकी निगाहें आज दक्षिण अफ्रीकाकी इस अमानुषिक फासिस्टवादी अनीतिको देखकर बहुत ही क्षुब्ध और त्रस्त हैं। देखना है दक्षिण अफ्रीका के इस फासिस्टवादका किस तरह अन्त होता है।[1]

---

१ दक्षिण अफ्रिकाकी आजकी स्थितिपर, वक्तव्य देते हुए २३ दिसम्बर ४७ को रायटर के प्रतिनिधिसे वहाँ की नेशनल भारतीय कांग्रेसके प्रधान श्री मोरने कहा था—"दक्षिण अफ्रीकाके जीवनमें वर्ण विद्वेषकी भावना का प्राबल्य है। उस स्थानपर रहकर कोई भी वहां की स्थिति देखनेपर